पुस्तकालय

गुरूकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

वर्ग संख्या .... आगत संख्या..............

पुस्तक विवरण की तिथि नीचे अंकित है। इस तिथि सहित 30 वें दिन यह पुस्तक पुस्तकालय में वापस आ जानी चाहिए अन्यथा 50 पैसे प्रति दिन के हिसाब से विलम्ब दण्ड लगेगा।


530.3,1
32182

श्रीआनन्दारयमखी प्रणीत

जीवानन्दनम्

आयुर्वेदशास्त्र के तत्त्व को प्रकट करने वाला प्राचीन
नाटक—'शान्ता' नामक हिन्दी व्याख्या सहित

इसमें आपको मिलेगा

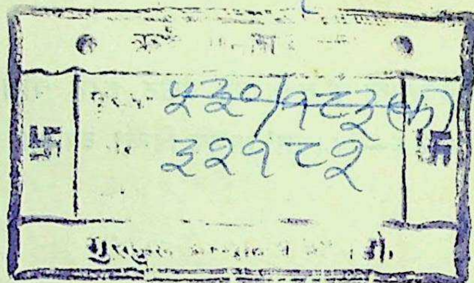
मुख्यत: आयुर्वेद और साथ में साहित्य, नाटक वस्तु, कामशास्त्र, प्राचीन आख्यायिकायें, श्रुतिवचन, योगदर्शन, उपनिषद्ज्ञान, गीताशास्त्र और अन्त में शिव-भक्ति से मोक्ष ज्ञान

अनुवादक

अत्रिदेव, विद्यालंकार

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय—बनारस

प्रकाशक
मुकुन्ददास गुप्त, 'प्रभाकर'
अध्यक्ष—पुस्तक-भवन
बनारस



अधिक भाद्रपद—२०१२ [सितम्बर १९५५];
मूल्य—चार रुपया

मुद्रक
टाइम टेबुल प्रेस,
बनारस।

श्रीआनन्दरायमखिना प्रणीतम्

जीवानन्दनम्



आयुर्वेद-शास्त्र-तत्त्व-प्रकाशन परं प्राचीनं नाटकम्

विद्यालंकार विरुदभाजा

अत्रिदेवेन

कृतया शान्ताख्यया हिन्दी व्याख्यया समेतम्



काश्यां पुस्तकभवनाधिकारिवर्गैः सम्मुद्रय प्रकाशितम्

नाटक के पात्र

सूत्रधार-पारिपार्श्विक

नायक के पक्ष में

जीव-राजा—कथा नायक
बुद्धि—जीवपत्नी-राज्ञी
विज्ञानशर्मा—त्रैवर्गिक-मंत्री
ज्ञानशर्मा—अपवर्ग मंत्री
धारणा—बुद्धि की सहचरी
गार्गी—धारणा का ही नामान्तर
प्राण—प्रतिहारी
विचार—नागरिक (नगरपारिपालक)
किंकर—विचार सहचर
वैतालिक—वन्दना करने वाले
विदूषक—राजा का नर्म सचिव

शिवभक्ति, स्मृति, श्रद्धा, चेरी, काल, कर्म, परमेश्वर, परमेश्वरी, तथा जीव की सहायक दूसरी रसौषधियाँ-राजमृगाङ्क आदि।

प्रति नायक के पक्ष में

राजयक्ष्मा—जीव का प्रतिद्वन्द्वी
विषूची—राजयक्ष्मा की पत्नी
पाण्डू—युवराज, यक्ष्मा का मंत्री
सन्निपात—यक्ष्मा का सेनापति

यक्ष्मा का परिवार-सहायक

श्वास, कास—नौकर
छर्दि—कास की पत्नी, ज्वर, गुल्म, अतिसार, ग्रहणी
कण्ठकण्डूति—छर्दि की सपत्नी
गलगण्ड—यक्ष्मा का चोवदार
कुष्ठ, उन्माद, प्रमेह, व्रण, अर्श, अश्मरी, कर्णमूल, कामला, शूल
गद—(हृद्रोग)—यक्ष्मा का चर, अपथ्यता, अति बुभुक्षा, वात-पित्त कफ दोष
व्याक्षेप—भक्ति विघातक, पाण्डु का सेवक, गुप्तचर
मत्सर, काम, क्रोध, तथा दूसरे रोग

पुर—मानव शरीर—जीव की राजधानी

प्राक्कथन

सम्पूर्ण संस्कृत वाङ्मयमें प्रायः करके तीन प्रकारके नाटक दिखाई देते हैं; एक—अभिनय प्रधान—जिनका कि अभिनय करके रसका स्पष्टीकरण किया जाता है। इन नाटकोंका सम्पूर्णरूपमें या कुछ अंश बदलकर अथवा कुछ भाग छोड़कर रंगमंच पर अभिनय कर सकते हैं। दूसरे विषय विशेषको बताने के लिये बनाये गये नाटक, इनमें चेतन या अचेतन पात्रोंकी अलीक कल्पना करके किसी भी आध्यात्मिक या व्यावहारिक रहस्य का ज्ञान कराया जाता है। इस प्रकारके नाटकोंमें विषयके अति कठिन रहनेसे दृष्टान्तविधि से वस्तुको दृश्यकाव्यमें लाकर रसकी अभिव्यक्ति की जाती है। तीसरे—कवि कर्म प्रधान—जिनमें श्राव्यकाव्योंकी भाँति केवल शब्दार्थ सामग्रीका विशेष रूपमें स्पष्टीकरण होता है; इनमें दृश्यकाव्यताका अभाव रहता है, आँखोंको बन्द करके केवल मनमें ही निदिध्यासन-मनन करना होता है।

इनमें शाकुन्तल, उत्तररामचरित आदि प्रथम श्रेणीके हैं; प्रबोध चन्द्रोदय आदि नाटक दूसरी श्रेणीके हैं; अनर्घराघव आदि नाटक तृतीय श्रेणीमें आते हैं। प्रस्तुत नाटक जीवानन्दनम् नाटक इस दृष्टिसे द्वितीय श्रेणीमें आता है; तथापि विविधशास्त्रोंमें; लोक व्यवहारमें प्राप्त प्रावीण्य-प्रगल्भ-कविश्रेष्ठ आनन्दरायमखीने अति सुन्दर पात्र कल्पनासे; कमनीय कविकर्म कौशलसे; हृदयहारि शब्द संदर्भसे, साहित्य-आयुर्वेद-कामशास्त्र-वेदान्त-योगशास्त्र-गीताशास्त्र आदि विविध शास्त्रोंके रहस्यको स्पष्ट करनेमें अपना नैपुण्य दिखाया है; जिससे कि सब तरहके विद्वानोंको सन्तोष हो सके।

प्रस्तुत नाटकमें सम्पूर्ण वैद्य समुदायसे असाध्य-प्रसिद्ध राजयक्ष्मा रोगकी सुगम चिकित्सा दिखाई है। असाध्यरोग भी शिवकी आराधनासे सुखसाध्य हो जाते हैं; यक्ष्माके प्रबल होनेपर भी भगवान श्रीचन्द्रमौलि

साम्बकी उपासनासे पारद गन्धक आदि रसायनोंको प्राप्तकरके नवजीवन-आरोग्य, बल-पुष्टि प्राप्त हो सकती है, यह नाट्यकला कौशलसे कविने स्पष्ट कर दिया है।

सदुपदेशसे पूर्ण आयुर्वेद विद्याको बतानेवाले; धर्मके उपदेशसे आस्तिक बुद्धिको दृढ़ बनानेवाले; इस नाटकके विषयमें 'कवित्व चमत्कार शून्य' कहना, विशेषतः भारतीय विद्वानोंका बहुत, चिन्तनीय है। प्रायः करके पाश्चात्य विद्वानोंकी सम्मतिके ऊपर ही इस देशके विद्वान अपनी सम्मति बनाते हैं; यही धारा सम्भवतः यहाँपर भी बरती गई है। 'कीथ' महाशयने अपनी पुस्तक 'संस्कृत नाटकानि' में जीवानन्दनम्‌के लिये लिखा है कि 'They have no merits' इसी सम्मतिको देखकर या कार्यकी अधिकतासे, अथवा विषयके गम्भीर होनेसे महामहोपाध्याय श्रीदुर्गाप्रसाद पण्डितजीने इस नाटकके विषयमें लिख दिया कि यह रचना कवितासे शून्य है। * फिर भी; इसकी रचना; प्रस्तुत करनेकी प्रणाली नवीन होनेसे तथा चिकित्साशास्त्रसे सहमत होनेके कारण उन्होंने इस रचनाको काव्यमालामें स्थान दिया है। कीथ महोदयने इस नाटकके विषयमें जो लिखा है, वह महत्त्वपूर्ण नहीं है।

इस नाटकमें सामान्यतः शान्त रस ही स्वीकृत है [श्रीहरिशास्त्री दाधीचजीने इसमें वीररस प्रधान माना है]। रूपक गुणको पुष्ट करनेके लिये स्थान स्थानपर अन्य रसोंको भी स्थान दिया गया है। श्रीदाधीच-जीने वीर रसकी प्रधानतामें साहित्यकी यह उक्ति 'एक एव भवेदङ्गी शृंगारो वीर एव वा' इसको ही आधार माना है।

---

* Two saiva dramas are the Vidya parina-yana and jivanandana written in the end of the seventeenth and the begining of the eighteenth century they have no merits.

—Keith, the sanskrit dramas.

कथानक

प्रथम अङ्कमें—जीवका मन्त्री विज्ञानशर्मा धारणा नामकी स्त्री परिजनको गुप्तचरके रूपमें अपने शत्रु यक्ष्मा राजाकी प्रवृत्ति जाननेके लिये जीवराजाकी आज्ञासे भेजता है। और वह अपनेको गार्गी नामसे तापसी वेशमें छिपाकर शत्रुसैन्यमें घुसकर; चुपचाप शत्रुके वृत्तान्तको जानकर वापिस आती है और अपने जाने हुए वृत्तसे मंत्रीको परिचित कराती है। प्रबल जड़ और तीक्ष्ण प्रकृतिरूपमें कुपित वात-पित्त और कफ एवं मानसिक काम आदिकी सहायता लेकर राजयक्ष्मा देह नामक पुरमें आक्रमण करके प्रतिकूल करना चाहता है; यह कहनेके लिये बुद्धिमान मन्त्री स्वयं राजाके पास जाता है। रस-गन्धक आदिके प्रयोगसे ही राजयक्ष्मा पराजित किया जा सकता है; इस प्रकारकी औषधियोंकी सिद्धि और प्राप्ति शिव और उमाकी उपासनासे ही सम्भव है; ऐसा मन्त्री निर्णय करके राजाको निवेदन करता है। जीवराजा भी इसी प्रकारसे उमा सहित शिवकी उपासनाके लिये पुण्डरीकपुरमें प्रविष्ट होता है। **द्वितीय अंकमें**—जीवराजा हमारा कुछ अनिष्ट करना चाहता है; यह बात गुप्तचरों द्वारा जानकर यक्ष्मा राजासे भेजे हुए भृत्य कासको युवराज पाण्डुके पास जाते हुए रास्तेमें अपनी पत्नी छर्दिसे अचानक भेंट हो जाती है। इन दोनोंका नम्रसंलाप इस प्रवेशकमें आता है। इसके पीछे राजयक्ष्माका मन्त्री पाण्डु जब यह सुनता है कि अपने शत्रु जीवके पाससे हमारा संकट आ रहा है; उसके प्रतिकारका और जीवराजा को जीतनेका उपाय अपने सैनिक सन्निपात, कुष्ठ आदिके साथ विचारता है। कर्णमूल नामक गुप्तचर अपनी जानी हुई बातको एकान्तमें पाण्डु को बताता है। पाण्डु भी जीवराजाके मन्त्री ज्ञानशर्मा और विज्ञानशर्मामें परस्पर भेद समझकर, जीवराजाके लिये कठिनाई उत्पन्न करनेका उपाय सोचता है। कास, गलगण्ड आदि भी इस भेदको उत्पन्न करनेमें पाण्डुका साथ देते हैं। जीवराजाके पुर को घेरकर उसको जीतनेके लिये अपने रोग सैनिकों को पांडु भेजता है। **तीसरे अंकमें**—यक्ष्माका गुप्तचर हृद्रोग नामका रोग जीवराजपुरमें

रात्रिके समय विचरता हुआ विचार नाम नगराध्यक्ष और किङ्करसे पकड़ लिया जाता है। इन दोनोंकी परस्पर सरस बातचीत शुद्ध विष्कम्भक रूपमें प्रवृत्त होती है। विचार नामक नगराध्यक्ष को विज्ञानशर्मा मन्त्रीने नगरकी रक्षाकेलिये नियुक्त किया है। पाण्डुसे भेजे हुए बहुतसे रोग रूप सैनिक जीवपुरपर आक्रमण करनेका प्रयत्न करते हैं। इसी बीचमें जीव-राजा इच्छितफलको प्राप्तकरके पौरजनोंसे सजाये पुरमें प्रवेश करता है। इसमें परमेश्वरकी कृपासे प्राप्त रस-गन्धक आदिका प्रभाव विशेष रूपमें वर्णित है। जीवराजा अपनेसे की हुई शिवोपासनाकी विधिका वर्णन करता है। निदिध्यासन से साक्षात्कृत परमेश्वरका स्वरूप वर्णन करता है। परमेश्वरकी आज्ञासे औषधियोंका स्वामी चन्द्रमा दिव्य औष-धियों को रसादिके संस्कारके लिये देता है। मन्त्री इन रस आदि को शत्रुवों-के नाशमें समर्थ औषधियोंके साथ मिलाता है। **चतुर्थ अंकमें**—यक्ष्माके पक्षवाले शत्रुवोंने जीवराजाके ऊपर कूट रचनाका प्रयोग किया है; ऐसा विज्ञानशर्माने सुना है, इस वृत्तको राजाके पास पेटू ब्राह्मण विदूषकके द्वारा कविने प्रकट किया है। विदूषक भी असावधानीसे रसोईघरमें घुस जाता है। वहाँपर उसे नानाप्रकारके भक्ष्य सहसा दिखाई पड़ते हैं, उनको देख-कर विदूषकके मुखमें पानी भर आता है। महानसमें पौरगवकी विचित्र स्थितिका वर्णन कविने बहुत ही सुन्दरतासे किया है। इसके पीछे मध्याह्नका वर्णन है, सामन्तों द्वारा राजाके लिये उपहारों का उल्लेख है, जीवराजासे की शिवभक्ति का स्मरण, श्रद्धा आदि की राजा से बात-चीत, परमानन्द के लिये जीव का शिवभक्ति करने का वचन, मध्याह्न की स्नान पूजाके पीछे राजाका महिषी बुद्धि देवीके साथ उद्यानमें जाना, उद्यानमें सब ऋतुओंका समयानुकूल वर्णन, परमेश्वरकी कृपा-से छः ऋतुओंका एक साथ वर्णन कविने वैद्य शास्त्र मतसे सुन्दर रूपमें वर्णित किया है। राजाका देवीके साथ झूला झूलना, सायंकाल सन्ध्याका वर्णन है। **पाँचवें अंकमें**—जीवराजा पशुपतिके ध्यानमें लगते हैं, इसमें विघ्न डालनेकेलिये पाण्डु काम आदिको भेजता है। इनमेंसे मत्सर नाम का गुप्तचर जीवराजाके सेवकोंसे पकड़ा

जाता है और छोड़ दिया जाता है। मत्सर अतिशय खिन्न हुआ रास्तेमें ही यक्ष्माके नौकर कुष्ठ और नौकरको देख लेता है। इन तीनोंकी बातचीत बहुत आनन्ददायक और हास्यमय है। जीवराजाके नौकरोंसे तथा विचार आदिसे किये अपने अपमानको मत्सर कुष्ठ आदिको सुनाता है। इसको सुनकर अब क्या करना चाहिये, यह मंत्रणा पाण्डु कुष्ठ आदि करते हैं। इसके पीछे जीवराजाको अपथ्यमें प्रवृत्त करनेकेलिये पाण्डु अपथ्यताको भेजता है। इसके पीछे राजयक्ष्मा पाण्डु और मत्सरके साथ एकान्त प्रासादमें स्थित होकर मत्सरसे कहे हुए अपने शत्रुओंका वृत्त और उसका किया अपमान सुनता है। जीवने अपने पुरमें यक्ष्मा शत्रुको रोकनेके लिये कौन कौन यंत्र, कैसे कैसे शस्त्र तैयार किए हैं, यह सब मत्सर सुनाता है। यक्ष्मा भी अपने नाशकेलिये किए विज्ञानशर्माके उपायोंको सुनकर, अपने आप भी क्रोधसे प्रदीप्त होकर अपने शत्रुको नष्ट करनेके लिए तैय्यारी करता है। **छठे अंकमें**—राजयक्ष्माके मन्त्री पांडुसे नियुक्त रोग समूह जीवराजाके पुरपर आक्रमण करते हैं। दोनों पक्षोंमें रोग समूह और औषध समूहके तुमुल युद्धको कर्म और काल (अधिदैवता) आकाशमें चुपचाप बैठकर देखते हुए वर्णन करते हैं। इसी बीचमें मोक्षसे सम्बन्धित ज्ञानशर्मा सचिव जीवराजाके पास जाकर त्रैवर्गिक (धर्म-अर्थ-काम) कार्योंसे उसे हटाकर मोक्ष पक्षकी साधनाके लिये प्रेरित करता है। इस कारण जीवराजाकी भौतिक देहमें विरक्ति हो जाती है। इसके पीछे विज्ञानशर्मा राजाके पास आकर उसमें हुए सहसा परिवर्त्तनको देखता है। यह परिवर्त्तन ज्ञानशर्माके कारणसे ही हुआ है, यह निश्चय करके, विज्ञानशर्मा राजाको अपनी अवश्य होनेवाली विजयमें प्रोत्साहित करता है और उसे बहुत उपायोंसे प्रकृतिमें लाता है। इसी बीचमें पांडुसे भेजे भस्मक रोगसे जीवराजा पीड़ित हो जाता है। राजाकी इस अवस्थासे लाभ लेकर पेटू ब्राह्मण विदूषक अपना पेट भरना चाहता है। समझा हुआ विज्ञानशर्मा राजाको प्रासादके ऊपर ले जाकर राजाकी मनोवृत्तिको अन्यत्र लगाकर उसका भूखकी ओरसे ध्यान हटाता

है। जीवराजाके और यक्ष्माराजाके पक्षवालों का परस्पर युद्ध, काल और कर्म वर्णन करते हैं। वसन्त कुसुमाकर आदि औषधियोंके रूपमें अति प्रबल सैनिकोंसे व्याधि रूप बलवान सैनिक युद्धभूमिमें मारे जाते हैं। दुःखी हृदयवाला राजयक्ष्मा इसपर भी मत्सरकी सलाहसे शत्रुवोंको जीतनेके लिये कूट युद्ध करनेका निश्चय करके विषूची और मत्सरके साथ बाहर चला जाता है। **सातवें अंक में**—अन्त में कुछ बचे हुए तथा औषधियों से अपराजित कुछ रोगों को, कुटुम्ब के सहित राजयक्ष्मा को शिवकी असाधारण कृपासे जीवराजा नष्ट कर देता है। इसके पीछे स्वयं प्रमथगणोंसे घिरे परमेश्वर-शिव और परमेश्वरी जीवराजाके पासमें आते हैं; इसे योग शक्तिका उपदेश देकर जोवन्मुक्त पर्यन्त श्रेयसे युक्त कर देते हैं। इस प्रकारसे सब रोग रूप अनिष्टोंका नाश करके, प्रिय जीवमें शाश्वत-आनन्ददायक शांकरभक्तिको उत्पन्न करते हैं।

कथा वस्तुका सारसंग्रह इस प्रकार है—

जीवात्मा नाटकेऽस्मिन् भवति नरपतिर्नायकश्चास्य पत्नी
बुद्धिर्विज्ञानशर्मा भवति सुसचिवः पत्तनं मर्त्यदेहः।
श्रद्धाभक्तिश्च शैवी स्मृतिरपि सततं धारणा सत्त्वयुक्ता
प्राध्वं राजानमन्वेत्यथ भयमुपयात्यस्य यक्ष्माख्यशत्रोः॥
यक्ष्माणं तं विषूची स्वयमनुविदधे गेहिनी यस्य पाण्डु-
र्मन्त्री तद्यौवराज्ये ऽप्यधिकृत पुरुषः सज्वरश्चातीसारः।
मन्थुन्माद प्रमेह प्रभृति गदगणाश्चापरे यक्ष्मपक्षे
स्थित्वा जीवस्य राज्ञः पुरमनवरतं क्लेशयन्ति प्रसह्य॥

विज्ञानमंत्रिबलतः शिवयोश्च भक्त्या
योगैश्च जीवनृपतिः समवाप्य सिद्धिम्।
सिद्धौषधानि च तयोर्दययाधिगत्य
निर्धूतवैरिनिवहः सुखमश्नुतेऽन्ते॥ श्री मे० दुरैस्वामी

पक्षमें—	प्रतिपक्षमें—
राजा—जीव	राजा —राजयक्ष्मा
महिषी—बुद्धि	महिषी—विषूचि
मन्त्री—विज्ञानशर्मा और ज्ञानशर्मा	मन्त्री-पांडु (युवराज भी)
सेनापति—राजमृगाङ्क—पूर्णचन्द्रोदय	सेनापति—सन्निपात
सैनिक—औषधियाँ	सैनिक—रोग

नाटकका कर्त्ता

प्रस्तुत नाटकसे पूर्व भी इस प्रकारके नाटकोंकी रचना होती थी; इस प्रकारके अलौकिक आरोप्य और आरोपक भाव वाले नाटकोंको काल्पिक (Allegorical Plays) कहते हैं। इस नाटकके कर्त्ताके दो ही नाटक मिलते हैं;— विद्या परिणय और दूसरा जीवानन्दनम्। दोनों ही नाटक एक ही शैलीका अनुसरण करते हैं। प्रथम नाटकमें सब विद्याओंका सम्मेलन किया है; इसमें भी मुख्यतः अध्यात्म विद्याकी ओर लोगोंका ध्यान खींचा है। जीवानन्दनम्में शिवभक्तिकी ओर लोगोंको प्रवृत्त किया है। दोनोंकी रचना परस्पर बहुत मिलती है। प्रस्तावना तो समान ही है। इन दोनों नाटकोंका कीथने अपने ग्रन्थ संस्कृत नाटकमें "शैवनाटक" नामसे उल्लेख किया है।

इन नाटकोंसे भी पूर्वभी इस प्रकारके काल्पनिक नाटक बने थे; उनमें श्रीकृष्णमिश्रने **प्रबोध चन्द्रोदय** और वेदान्तदीक्षितका **संकल्प सूर्योदय** इसी प्रकारके हैं। संकल्प सूर्योदयमें विष्णुभक्तिका उपदेश है। प्रस्तुत नाटक जीवानन्दनम्का कर्त्ता शिवभक्त था। उसने उपरोक्त दोनों नाटकोंका अनुसरण करके विद्यापरिणाय नाटक लिखा *। कृष्णमिश्र और वेदान्त दीक्षित दोनोंने मुक्तिका मार्ग 'विष्णुभक्ति' को चुना—यही रास्ता दूसरोंको भी बताया। इसके विपरीत प्रस्तुत नाटकमें शिवभक्तिको ही मोक्षका साधन बताया है। यथा—

---

* भाव। कृष्णमिश्र प्रभृतिभिरत्र 'प्रबोधचन्द्रोयम्' इति संकल्पसूर्योदयम् इति च न्यबन्धि नाम बहुधा प्राचीनैः किमनेनाभिनव संरम्भेण। विद्यापरिणय

१. तत्रास्ते शिवभक्तिरित्यनुपमा कापि प्रमोदास्पदम् (अ. १ श्लो. ४७)

२. तामद्वैतां स्वरूपेण भक्तिं हृदयरञ्जनीम् ।
स्वीकृत्याहं भविष्यामि प्राप्ताखिल मनोरथः ।। (अ० १ श्लोक ४८)

३. ततःप्रविशति शिवभक्तिः ।
शिवभक्तिः—आदिष्टोऽस्मि परमकारुणिकया परमेश्वर्या—
विद्यापरिणयम्

४. भूयादस्य कवेश्चिरायुरुजो भक्तिश्च शैवीदृढा (अ० ७ श्लो० ०५ में अन्तिम पंक्ति)

लोगोंको शिवभक्तिमें आकृष्ट करनेके लिये ही कविने दोनों नाटकोंकी रचना की है । विद्यापरिणय नाटकमें तो इस जगतको शिवका बनाया एक नाटक ही कहा है, यथा—

विलीय स्वाविद्याघन यवनिकायामथ वहन्
विचित्रं नैपथ्यं नटसि शिवनानात्मकतया ।
स्वयं जाग्रत्पश्यत्यपि च परमानन्द भरितो
जयत्यत्याश्चर्यं जगदिति भवन्नाटकमिदम् ।।

वि. अ. ७ श्लो. ३८

आनन्दरायमखीको विद्यापरिणय बनाकर उसमें शिवभक्ति और अद्वैत की चर्चा करके तृप्ति नहीं हुई । इस कविका आयुर्वेदशास्त्रमें भी अच्छा प्रवेश था; इसीलिये आयुर्वेदके मुख्य सिद्धान्त—आधार भूत वचनोंसे सामान्य जनताको परिचित करानेके लिये, उसने इस प्रस्तुत नाटककी रचना की । साथमें शिवभक्तिका भी उपदेश दिया; जो कि इस नाटकका अन्तिम उद्देश्य था । बिना नाटकका रूप दिये यह कार्य सम्भव नहीं था । क्योंकि—

नतच्छास्त्रं न सा विद्या न तच्छिल्पं न ताः कलाः ।
नासौ योगो न तद्ज्ञानं नाटके यन्न दृश्यते ।।

परिषदके मनको खींचनेके लिये—जिस परिषद्में सब प्रकारकी भिन्न भिन्न रुचिवाले मनुष्य होते हैं; उसमें प्रत्येक वस्तु रुचिकी दृष्टिसे उपस्थित

करनी आवश्यक होती है इसीलिए कालिदास ने कहा है "नाट्यं भिन्न-रुचेर्जनस्य बहुधाप्येकं समाराधनम् ।" इसीलिये नाटकमें प्रत्येक शास्त्र,प्रत्येक विद्या, शिल्प, कला, योग, ज्ञानका समावेश करना पड़ता है । इसीलिये प्रस्तुत नाटकमें आयुर्वेदके साथ साथ साहित्य, कामशास्त्र, योगदर्शन, वेदान्त दर्शन, गीता, श्रुतिके वचन मिलते हैं; और अन्तमे शिवभक्तिमें सबका समावेश किया गया है । जिस प्रकार कि विष्णुशर्माने कथा-कहानीके रूपमें राजपुत्रोंको नीतिशास्त्रका उपदेश दिया था उसी प्रकार आनन्दराय मखीने इस नाटकके द्वारा आयुर्वेदका परिचय सामान्य जनताको कराते हुए शिवभक्तिमें झुकानेका प्रयत्न किया है । क्योंकि शरीर ही कर्मका साधन है (शरीरमाद्यं खलु धर्म साधनम्—कालिदास) । इसीलिये कविने जीवको नायक और बुद्धिको उसकी पत्नी, ज्ञान और विज्ञानको मन्त्री बनाया है । श्रद्धा, धारणा, भक्ति जो कि मनुष्यके अच्छे गुण हैं; वे, तथा अन्य औषधयोग जो कि सेना रूपमें चित्रित किये हैं; ये सब प्रबोधचन्द्रोदय और संकल्पसूर्योदयसे भिन्न हैं । इसमें प्रतिपक्षि नायक राजयक्ष्मा है । प्रबोधचन्द्रोदयमें नाटककी समाप्ति विवेक उत्पन्न होनेपर हो जाती है । परन्तु इसमें जीवन्मुक्ति—जीते हुए मुक्त बननेपर समाप्ति है । गीता तथा रसशास्त्रका उद्देश्य भी मनुष्यको जीवन्मुक्त बनानेमें ही है ।*

जीवानन्दनम् नाटकका कर्त्ता आनन्दराममखी एक बहुत ही धार्मिक (यज्व) कुलसे सम्बन्धित है । जिस कुल में बड़े बड़े यज्ञ होते थे, उसने स्वयं बहुत यज्ञ किये थे । (येनाकारिसहस्त्र दक्षिण मखीः–अ० १ श्लोक ७) उसके चाचा, त्र्यम्बकराय यज्व थे । शिव भक्त तथा धर्माधिकारी होने पर भी राजनीति तथा प्रसिद्ध सेनानी था । जैसा इसने स्वयं लिखा है—

विद्वत्कविकल्पतरुः आनन्दरायमखी । स एष इह गुरुदेवद्विजभक्तो ......विहरति च समरे विक्रमार्क इव ।

---

* रसशास्त्रमें—तस्माद् जीवन्मुक्त समीहमानेन ।
दिव्य तनुर्विधेय हरगौरी सृष्टिसंयोगात् ॥
गीतामें—ब्रह्मण्याधाय कर्माणि संगंत्यक्त्वा करोति यः ।
लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा ॥

कवि कालिदास, भवभूति, विशाखदत्त, शूद्रक, कृष्णमिश्र और वेदान्त दीक्षितके विचारों से अच्छी प्रकार परिचित था, इसीसे इन सबकी झलक स्थान स्थान पर मिलती है । आनन्दरायमखीकी शिवमें अनन्य भक्ति थी। इसीमें वह संसारको झुकाना चाहते थे, इसीके लिये इस नाटक का सर्जन हुआ।

कविने इस नाटकमें साहित्य, वेदान्तके साथ साथ औषध ज्ञान, आयुर्वेद ज्ञानको भी पूर्णतः स्पष्ट किया है। आजसे दो सौ वर्ष पूर्व तंजौर आयुर्वेद चिकित्साका अच्छा क्षेत्र था। वहाँ पर लोह तथा धातुका उपयोग चिकित्सामें प्रचुर होता रहा। तंजौरके प्रसिद्ध पुस्तकालय सरस्वती महलके पासमें ही धन्वन्तरी महल है। जहाँ पर बहुतसे उपयोगी ग्रन्थ सुरक्षित हैं। यह कहा जाता है कि इसको प्रारम्भ करने वाले और बढ़ाने वाले, इसमें रस लेने वाले आनन्दरायमखी थे और पीछे इनके शिष्य थे। तंजौरमें भी आनन्दरायमखी धर्माधिकारी थे, इनके समय में गद्दी पर महाराष्ट्र राजा शाहजी और सरोफ़जी थे, यह समय ईसाकी १७ वीं शतीका था। इस समय विद्वानोंका युग था, विद्वानों को बहुत सम्मान मिलता था।

महाराष्ट्र राजाओंका परिचय

तंजौर की गद्दी नायक राजाओंसे महाराष्ट्र राजाओंके हाथमें आई थी। महाराष्ट्र राजा साहित्य और कलाके बहुत अधिक प्रेमी थे। विशेष करके बड़े महाराजा सरोफ़जी प्रथम (१८००–१८३२) ने न केवल अपने राज्योंके लिये अपितु सम्पूर्ण भारतवर्षके लिये तंजौर में पुस्तकोंका अमूल्य संग्रह बनाया था।

यह जनश्रुति है कि जब ये बनारस में तीर्थयात्राके लिए गये थे, तब वहाँसे बहुतसी दुर्लभ पुस्तकें क्रय करके लाये और जो पुस्तकें-ग्रन्थ मूल्य से प्राप्त नहीं हो सके, उनकी प्रतिलिपी कराके उनको अपने पुस्तकालय में रक्खा था।

मरहठोंने तंजौरको जीता और १६७६ से १८५५ तक राज्य किया। यह समय बहुत सुख और शान्तिका था। तीन सौ पचास सालके बीचमें (नायकोंके समयको मिलाकर) एक सौ बीस से अधिक लेखकोंने उत्तम श्रेणीकी रचना की थी। इन सब राजाओं में महाराजा सरोफ़जी ने इस कार्यमें सबसे अधिक रस लिया था, जिन्होंने तंजौरमें महाराजा सरस्वती महल पुस्तकालयकी स्थापना की थी।

नायक और महाराष्ट्र राजाओंकी वंश परम्परा निम्नरूपमें है—

नायक राजा (१५३५-१६७३ ईस्वी पीछे)

१.	कवप्पस (सवप्पा)	१५३५–१५६१।
२.	अस्युतप्पा (अछूतप्पा)	१५६१–१६१४।
३.	रघुनाथ	१६१४–१६३३।
४.	विजयराघव	१६३३–१६७३।

मरहठा राजा (१६७६–१८५५ ईस्वी पीछे)

१.	ईकोजी १	१६७६–१६८३	६.	प्रतापसिंह	१७४१–१७६४
२.	शाहजी	१६८४–१७१०	७.	तुकाजी २	१७६५–१७८७
३.	सरोफ़जी १	१७११–१७२०	८.	अमरसिंह	१७८८–१७९९
४.	तुकाजी १	१७२९–१७३५	९.	सरोफ़जी महाराज २	१८००–१८३२
५.	ईकोजी २ या भावा साहिब	१७३५–१७३६	१०.	शिवाजी	१८३२–१८५५

इनमें शाहजी, सरोफजी १, तुकाजी १, ईकोजी २, स्वयं अच्छे कवि थे।

शाहजी दूसरे मरहठा राजा थे। इनके नाम के विषयमें कहा जाता है कि इनके पिता के जब कोई पुत्र नहीं हुआ, तब शाह शरीफ़ नामक फकीर के आशीर्वाद से पुत्र का जन्म हुआथा। इसीके उपलक्ष में बड़े लड़केका नाम शाहजी रक्खा गया था। ये स्वयं अच्छे कवि थे। इन्होंने पण्डितों को एक ग्राम शाहजी पुरम् (तिरुविसनलोर) नामका

भेंटमें दिया था। इसमें छियालीस पण्डित परिवार रहते थे। ये स्वयं संस्कृत, मरहठी, तैलगु के अच्छे ज्ञाता थे। इनकी उपाधि 'अभिनवभोज' थी। संस्कृतमें इनकी रचना—चन्द्रशेखरविलास, शब्दावतार समन्वय, शब्दावतार संग्रह, शृंगार मंजरी कही जाती है।

सरोफजी १—ये तीसरे मरहठा राजा थे और शाहजीके भाई थे। इनके समयमें भी विद्या और साहित्यकी वृद्धि हुई थी, इन्होंने कुछ ग्रन्थ बनाये थे, जिनमें राघव चरित इनका बनाया कहा जाता है।

तुकाजी या तुलाजी महाराज १—ये चौथे मरहठा राजा थे, इन्होंने भी कुछ ग्रन्थोंकी रचना की थी, यथा—नाट्यवेदांगम, संगीत सारमृत, धन्वन्तरी विलास, धन्वन्तरिसारनिधि। इसके सिवाय आयुर्वेदिक साहित्यमें भी इन्होंने रस लिया था।

सरोफजी महाराजा २—ये तुकाजी द्वितीयके पुत्र थे। इन्होंनेही तंजोरके पुस्तकालयको वास्तवमें उन्नत किया। इन्होंने बहुतसे विद्वानोंको आश्रय दिया। इन्होंने धर्मसभा, न्याय सभा, मुद्रित सभा आदि बहुत सी संस्थायें चलाई थीं। इस सभामें बहुतसे विद्वान नियुक्त थे। धर्मज्ञ और धर्माधिकारी विद्वान इनकी सभामें रहते थे। निर्णयके पीछे वे लोग निम्न प्रकारसे अपनी सम्मति देते थे—

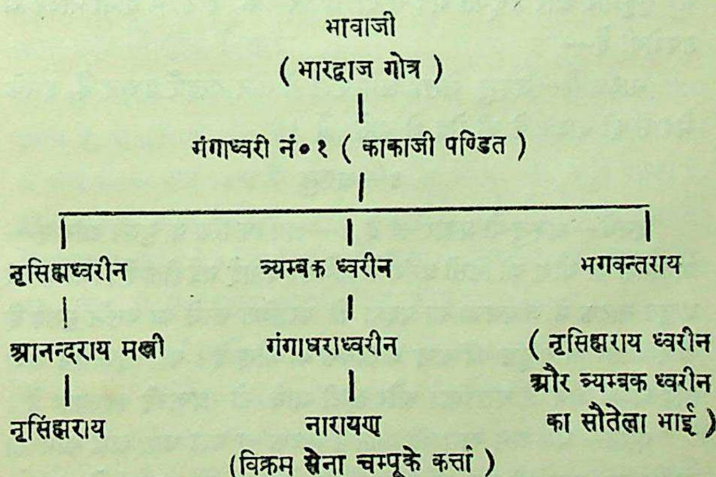
सम्मतिः प्रथमाध्यक्ष सुब्रह्मण्यविपश्चितः।
गोविन्दपुर वास्तव्यानन्तराम सुधी मतम्॥

इससे पण्डितके आवासका नाम ठीक ज्ञात हो जाता था। इन्होंने बहुतसे पण्डितोंको ग्रन्थ संग्रहके लिये दूर दूर भेजा था। इन्होंने कुमार सम्भव चम्पू, मुद्राराक्षस, छाया स्मृति संग्रह और स्मृति सारसमुच्चय ग्रन्थ बनाये थे।

ईकोंजी २—यह तुकाजीका पुत्र था—इनका दूसरा नाम भावजी या भावा साहिब था।

आनन्दरायमखी—इनके पिताका नाम नृसिंहराय मखी था, इनके पितामहका नाम गंगाधर मखी था। शाहजी और सरोफजीके राज्यकालमें

ये धर्माधिकारी थे। नृसिंहराय मखी भारद्वाज कुटुम्बके थे और ईकोजीके मंत्री थे। नृसिंहराय मखीके छोटे भाईका नाम त्र्यम्बक राय यज्वन् था, जो कि ईकोजी, शाहजी और सरोफजी १ के मन्त्री थे। इन्होंने धर्मकूट नामक पुस्तक लिखी थी। विद्यापरिणय नामसे प्रथम ग्रन्थ आनन्दराय मखि ने बनाया है। जिसकी रचना प्रबोध चन्द्रोदय, संकल्प सूर्योदय, भावना पुरुषोत्तमकी शैली पर हुई है। आनन्दराय मखीने आश्वलायन सूत्रवृत्ति भी लिखी थी। आनन्दराय मखी अपने पद पर शाहजी १ तथा तुकोजीके राज्यकालमें बने रहे थे। इनकी मृत्यु तुकोजी १ के राज्यकालके अन्तिम समयमें हुई। इनके पीछे यह पद घनश्याम पण्डितको मिला। यह जीवानन्दनम् नाटक शाहजीके राज्यकालमें लिखा गया था। आनन्दराय मखोकी पत्निका नाम जयन्ती था और पिता का नाम नृसिंहराय था, जिसने कि त्रिपुर विजय चम्पू लिखा था। आनन्दराय मखी के पिताके एक दूसरे भाई भगवन्तराय थे, जिनके नामके साथ राघवाभ्युदय ग्रन्थ जुड़ा है। इनकी वंशावली इस प्रकारसे है—



नाटक सम्बन्धी जानकारी

नाटक—'अवस्थानुकृतिर्नाट्यम्'—अवस्था का अनुकरण करना—नकल करना नाट्य है। अवस्था का अनुकरण **नृत्त** और **नृत्य** दो प्रकारसे होता है। नृत्त ताल और लय पर आश्रित रहता है-**नृत्तंताललयाश्रयम्**। जिस प्रकार महादेवजी का ताण्डव नृत्त कहा जाता है, यह ताल और लय के आश्रित रहता है। नृत्य में—ताल या लय रहता है, परन्तु मुख्य वस्तु भाव है, ताल या लय का विशेष महत्त्व नहीं, भाव ही प्रधान है, **अन्यद् भावाश्रयं नृत्यम्**। भाव को स्पष्ट करने के लिये अंगों का चालन विशेष रूप में करना होता है। इसमें पदार्थ का अभिनय किया जाता है। नृत्य और नृत के दो भेद हैं—सुकुमार और उद्धत, इसमें सुकुमार नृत को लास्य और उद्धत नृत को ताण्डव कहते हैं। नृत्य भी सुकुमार और उद्धत भेद से दो प्रकार के है। ये दोनों नाटक में उपयोगी हैं—

नाटक में—**वस्तु, नेता** और **रस** ये तीन वस्तुएँ प्रधान हैं, इनके भेद से ही नाटक के भी भेद हो जाते हैं।

१—वस्तु

इनमें—**वस्तु**-दो प्रकार की है, १—आधिकारिक या मुख्य और २—प्रासंगिक या गौण जो किसी प्रसंग के लिये ही चलाई गई होती है। जिस प्रकार प्रस्तुत नाटक में जीवराजा का यक्ष्मा को पराजित करने का वर्णन मुख्य है और मत्सर और कुष्ठ की कथा प्रासंगिक या गौण है। यही प्रासंगिक कथा यदि लम्बी जाये तो **पताका** और छोटी जाये तो **प्रकरी** कहलाती है।

फल—धर्म-अर्थ काम की प्राप्ति। नाटक का फल धर्म, अर्थ काम का ज्ञान होना, इनमें से एक का ज्ञान हो या दो का अथवा तीनों का ज्ञान हो, यही नाटक का फल है।

नाटक में वस्तु क्रमशः बढ़ती है, प्रथम प्रारम्भ में कथा-वस्तु बीज रूप में चलती है, इसी बीज का आगे आगे विस्तार होता है, इस बीज की प्राप्ति के लिये नायक यत्न भी करता है—ये सब बातें नाटक में वर्णित हैं। एक क्रिया को दूसरी क्रिया से जोड़ने के लिये जिससे कथा बीच में टूटी प्रतीत न हो—उसके लिये नाटक के अन्दर विन्दु को स्थान दिया जाता है। जिस प्रकार कि जल पर पड़ा तैल विन्दु फैल जाता है, उसी प्रकार नाटक का विन्दु फैलकर आगे और पीछे की कथा को जोड़ देता है।

अर्थप्रकृतियाँ—प्रयोजन की सिद्धि में पाँच कारण हैं-बीज, विन्दु, पताका, प्रकरी, और कार्य; ये पाँच वस्तुएँ प्रयोजन की सिद्धि में कारण है। **कार्य की अवस्थाएँ पाँच हैं**—१-आरम्भ कार्य प्रारम्भ करना, २—कार्य में यत्न करना, ३—यत्न से फलप्राप्ति की आशा का बंधना, ४—फल प्राप्ति का निश्चित होना, ५—फल का मिल जाना। जिस प्रकार कि प्रस्तुत नाटक में—विज्ञानशर्मा के कहने से जीवराजा का राजयक्ष्मा को परास्त करने का आरम्भ करना, उसके लिये यत्न करना, उसे फल की आशा बंधना, फल की निश्चित प्राप्ति और सातवें अंक में फल का मिल जाना यक्ष्मा से मुक्ति होना।

सन्धियां—पाँच अवस्थाओं से मिली पाँच अर्थ प्रकृतियों का नाम सन्धि है, ये सन्धियाँ पाँच हैं, इन सन्धियों में एक ही शृंखला और एक ही अर्थ बराबर बना रहता है, बीच बीच में जोड़ की कड़ी पड़ती है, इसी कड़ी को सन्धि कहते हैं, यथा—**अन्तरैकार्थ सम्बन्धः संधिरेकान्वये सति**। सन्धियाँ पाँच हैं, यथा—मुखसन्धि, प्रतिमुख सन्धि, गर्भ सन्धि, अवमर्श सन्धि और निर्वहण सन्धि। इनमें—

१-मुखसन्धि में-बीजों की उत्पत्ति नाना प्रकार के अर्थ प्रयोजनों के लिये की जाती है, "मुखं बीजसमुत्पत्तिर्नानार्थरससंभवा। **प्रतिमुख-सन्धि में**-सफलता और असफलता का कुछ स्पष्ट नहीं होता; मन में यह सन्देह रहता है कि सफलता मिल भी सकती है, और नहीं भी मिल सकती; यथा—लक्ष्या लक्ष्यतयोर्भेदस्तस्य प्रतिमुखं भवेत्। **३-गर्भ सन्धि**—

जो बीज नष्ट होता हुआ दीखता है, उसको फिर से ढूँढ़ना ; यथा—"गर्भस्तु दृष्टनष्टस्य बीजस्यान्वेषणं मुहुः।" ४–**अवमर्श सन्धि**—गर्भ सन्धि में जो बीज का अर्थ बाहर स्पष्ट आ जाता है, उसको क्रोध से, व्यसन से या लोभ के कारण विचार करना अवमर्श सन्धि है; क्रोधेनावमृशेद्यत्र व्यसानाद्वा विलोभनात्। गर्भनिर्भिन्न बीजार्थ सोऽवमर्श इति स्मृतः ॥ ५–**निर्वहण सन्धि**—बीज सन्धि से लेकर जो विषय इधर-उधर नाटक में बिखरे हुए थे, उन सब का एक विषय में मिलाना निर्वहण सन्धि होती है; यथा—बीजवन्तो मुखाद्यर्था विप्रकीर्णा यथायथम्। ऐकार्थ्यमुपनीयन्ते यत्र निर्वहणं हि तत्।

वस्तु का विभाग फिर दो प्रकार का है; **दृश्य और श्रव्य**। इनमें--नीरस, अनुचित वस्तु को नाटक का पात्र केवल वाणी से सुना देता है, श्रव्य है; दिखाता नहीं, इसका अभिनय नहीं करता। दृश्य वस्तु में मधुर उदात्त रस की भावना को स्पष्ट करता है। अभिनय सूचना—श्रव्य पाँच प्रकार से दी जाती है; विष्कम्भक, चूलिका, अंकास्य, अङ्कावतार और प्रवेशक के रूप में। इनमें—**विष्कम्भक**—दो प्रकार का है, शुद्ध और संकीर्ण। विष्कम्भक में–बीती हुई कथा तथा आगे आने वाली कथा का संक्षेप में दिग्दर्शन होता है। यह दिग्दर्शन मध्य पात्रों से किया जाता है। जिनमें एक या अनेक मध्यपात्र रहते हैं, वह शुद्ध विष्कम्भक और जिसमें नीच और मध्य पात्र रहते हैं वह मिश्रित विष्कम्भक है। यही विष्कम्भक जब नीच पात्रों से दो अंकों में बीच में वर्णित होता है; तब इसका नाम **प्रवेशक** हो जाता है। इसमें वाणी प्राकृत रहती है। **चूलिका**—परदे के पीछे से अर्थ की सूचना देना चूलिका है। इसमें पात्र रंगमञ्च पर नहीं आता। **अङ्कास्य**—अंक की समाप्ति में अगले अंक के प्रारम्भ (मुख) की सूचना देना–जिससे कि दोनों अंकों का टूटना ज्ञात होता है; अंकास्य है। **अङ्कावतार**—अक के अन्त में अगले अंक का अवतरण इस प्रकार से होना कि दोनों में विभाग दिखाई न दे; इसे अंकावतार कहते हैं।

प्रकाशनीय और स्वगत—सबके सुनाने योग्य वस्तु को प्रकाशनीय कहते हैं; सबके न सुनाने योग्य वस्तु को स्वगत कहते हैं। प्रकाशनीय वस्तु जोर से बोली जाती है; स्वगत को धीमे से कहते हैं। इसमें **जनान्तिक**—पास में खड़े आदमी को सुनाने के लिये ही अंगुलियों की ओट करके—अंगुलियों का पताका के रूप में मोड़कर-वस्तु का कहना जनान्तिक है। **अपवारित**—मुख को ढाँप कर दूसरे की बात को कहना अपवरित है। **आकाशभाषित**——बिना पात्र के ही आकाश की ओर देख कर कहना कि 'क्या कहते हो' बिना सुने ही बात करना आकाशभाषित है।

२—नेता

नेता कई प्रकार के होते हैं; यथा—विनीत, मधुर, (प्रियदर्शन) त्यागी, दक्ष, प्रिय बोलनेवाला. रक्तलोक, शुचि, वाग्मी, रूढ़वंश, स्थिर, युवा, बुद्धि उत्साह-स्मृति-प्रज्ञा-कला-मान से युक्त; शूर, दृढ़, तेजस्वी, शास्त्र चक्षु और धार्मिक। इन नायकों के चार भेद हैं,—१-**ललित**—२-**शान्त**-३-**धीरोदात्त**-४-**धीरोद्धत**—(प्रस्तुत नाटक में शान्त गुण वाला जीवराजा नायक है। इनके लक्षण—

निश्चिन्तो धीरललितः कलासक्तः सुखी मृदु।
सामान्य गुणयुक्तस्तु धीरशान्तोर्द्विजादिकः॥
महासत्त्वोऽतिगम्भीरः क्षमावानविकत्थनः।
स्थिरोनिगूढाहङ्कारो धीरोदात्तो दृढ़व्रतः॥
दर्पमात्सर्य भूयिष्ठो मायाच्छद्मपरायणः।
धीरोद्धतस्त्वहङ्कारी चलश्चण्डो विकत्थनः॥

नायक के सहायक—विट्, विदूषक और पीठमर्द होते हैं, इनमें विट्—एक विद्या को जानने वाला होता है। विदूषक—हास्य करने वाला तथा ब्राह्मण होता है। पीठमर्द—प्रधान इति वृत्त में नायक का सहायक उसका भृत्य और नायक के गुणों से कुछ हीन होता है।

प्रतिनायक—लुब्ध (लालची) धीरोद्धत, स्तब्ध, पाप करने

वाला, व्यसनी और शत्रु होता है। (प्रस्तुत नाटक में यक्ष्मा शत्रु रूप में प्रतिनायक है)।

नायिका—तीन प्रकार की है, स्वस्त्री, परस्त्री और साधारण स्त्री। इनमें स्वस्त्री, मुग्ध, मध्या और प्रगल्भा भेद से तीन प्रकार की है; इसमें शाली-नता और आर्जव रहता है।

वृत्ति—चार प्रकार की है, १—कैशिकी-शृंगार रस प्रधान नाटक में, २—सात्वती-वीर रस प्रधान नाटक में, ३—आरभटी—रौद्र और वीभत्स रस में, ४—भारती-अन्य सब स्थानों में रहती है।

संस्कृत में उच्चारण—उच्च, जितेन्द्रिय पुरुषों का उच्चारण संस्कृत में होता है, लिंगनी, महादेवी, वेश्या का भी उच्चारण कहीं कहीं सस्कृत में रहता है। **प्राकृत**—स्त्रियों का उच्चारण प्राय: प्राकृत में रहता है। **शौरसेनी**—नीच पुरुषों की बातचीत शौरसेनी में रहती है। **पैशाची**—अतिशय नीच पुरुषों में बरती जाती है।

आपस में सम्बोधन—विद्वान्, देवर्षि, लिङ्गी (संन्यासी), विप्र, अमात्य और अपने से बड़े भाई को भगवन् कहकर सम्बोधन करते हैं, सूत्रधार-नटी को आर्या कहकर सम्बोधित करता है। पूज्य-अपने से आदर-णीय व्यक्ति-शिष्य या पुत्र को या छोटे को आयुष्मन् कहकर सम्बोधित करते हैं। पिता या पूज्य-पुत्र को या छोटे को वत्स कहकर सम्बोधित करते हैं। सूत्रधार-पारिपार्श्विक का भाव कहकर सम्बोधित करता है, पारिपार्श्विक सूत्रधार को मार्ष कहता है। भृत्य स्वामि को देव, स्वामी, नृपति, राजन् नामों से पुकारते हैं, अधम पुरुष राजा को भट्ट नाम से कहते हैं। स्त्रियाँ परस्पर हला शब्द से पुकारती हैं, नौकरानी के लिये हञ्जा, वेश्या के लिये अज्जुका, कुट्टिनी शब्द आते हैं, विदूषक-रानीके लिये भवती या राज्ञी कहता है, नौकरानी के लिये चेरी सम्बोधित करता है।

३—रस

स्थायी भाव का नाम **रस** है। भाव से अभिप्राय-सुख-दुःख आदि

भावों की प्रतीति है। यह प्रतीति (भाव) विभाव, अनुभाव, सात्त्विक और व्यभिचारि रूप में मन में उदित होती है। इस रस से सामाजिक जनों को आनन्द मिलता है। काव्य-इस रस को देने के आनन्द को उत्पन्न करने का कारण है। (रसात्मकं काव्यम्)। ये रस नौ हैं, अथवा आठ हैं। इनमें जो शान्त रस को भी रस रूप में मानते हैं, उनकी गणना में नौ रस हैं। जो लोग शान्त रस को रस नहीं मानते, वे आठ रस मानते हैं। यथा—शृङ्गार, हास्य, करुण, अद्भुत, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स, कुछ आचार्यों के विचार से नव से भी अधिक रस हैं।

नाटक का अवतरण—सूत्रधार द्वारा पूर्वरंग की स्थापना करके चले जाने पर दूसरा नट आकर वस्तु, बीज, मुख या पात्र से नाटक की कथावस्तु की स्थापना प्रारम्भ करता है। प्रस्तुत नाटक में "अभिभवितुं जीवमिव यक्ष्मा" इस बीजसे नट ने नाटक की कथावस्तु की स्थापना की है। इसी को **कथोद्घात** कहते हैं, इसमें सूत्रधार से कहे वाक्य या वाक्यार्थ को लेकर नट उतरता है।

प्ररोचना—प्रस्तुत अर्थ की प्रशंसा करके श्रोताओं की प्रवृत्ती को बढ़ाना प्ररोचना है, यथा-"उन्मुखी करणं तत्र प्रशंसतः प्ररोचना," (प्रस्तुत नाटक में—प्रथम अंक में ६ से १३ श्लोक के मध्य में आया भाग)। प्ररोचना से पहिले-भारती वृत्ति-संस्कृत में किसी ऋतु का वर्णन करके उसके द्वारा काव्य का अर्थ कहना चाहिये। यथा—प्रस्तुत नाटक में—शरद् ऋतु के वर्णन से अन्धकार का वर्णन रोगों का नाश, चन्द्रोदय आदि-औषधियों से हुआ, यह सूचित कर दिया।

अनुवादके विषयमें

मुझे इस पुस्तकका नाम जर्मन डाक्टर श्री जिम्मर (Zimmer) की पुस्तक हिन्दू मैडिसिनसे ज्ञात हुआ। एक यूरोपीय विद्वानको हमारे घरके विषयमें अधिक अभिरुचि है। ढूँढ़नेपर पुस्तक मुझे मिल गई। मूल पुस्तक निर्णय सागर-प्रेसकी छपी थी; और इसकी नन्दिनी व्याख्या श्री दुरैस्वामीजीने की, जोकि अड्यारमें छपी है। श्री दुरैस्वामीजीकी व्याख्या और पाठशुद्धि बहुत अच्छी है। व्याख्या भी बहुत सरल तथा अतिविद्वतापूर्ण है। इससे मुझे बहुत सुभीता हुआ। मैंने इसके आधारपर ही काम करना आरम्भ किया।

नाटक सम्बन्धी अध्ययन मेरा गुरुकुल जीवन का था—जिसको छोड़े लगभग तीस साल हो गये थे। इसलिये अपने स्नेही श्री शालिग्रामजी उपाध्यायसे इसमें सहायता ली, उनके साथ बैठकर सारा पाठ विचारा। उसके पीछे मैंने अनुवादका कार्य आरम्भ किया। उन्होंने ही मेरा ध्यान इस नाटकके चतुर्थ अंकके २३वें श्लोककी ओर खींचा; यह श्लोक नैषध महाकाव्यके आठवें सर्गमें है। यह श्लोक निर्णयसागरकी पुस्तकमें एवं जयपुरकी पुस्तकमें नहीं है; केवल अड्यारवाली पुस्तकमें है। इसके साथ ही बीच बीचमें बराबर सहयोग दिया, उन्हींके सहयोगसे मैंने इसको पूर्ण किया। इसकेलिये मैं उनका आभारी हूँ।

अनुवाद करते समय बीचमें वैद्य श्री कन्हैयालालजी भेड़ा—बम्बई-वालोंसे साक्षात्कार होगया था। उनसे पता चला कि जयपुरमें भी यह नाटक टिप्पणी समेत छपा है। जयपुरमें स्वामी श्री जयरामदासजीने अपने पाससे एक प्रति इस नाटककी भेज दी—जिससे अनुवादमें तो विशेष लाभ मैं नहीं उठा सका, परन्तु प्राक्कथन तथा पाठमें उसका उपयोग किया। इसकेलिये स्वामीजीका मैं बहुत कृतज्ञ हूँ।

निर्णयसागरमें छपी पुस्तकका पाठ शुद्ध नहीं है; इसलिये पाठके लिये, अनुवादके लिये, अड्यारका संस्करण ही मैंने पसन्द किया है। अनुवाद करनेमें मैंने यथाशक्ति सन्दर्भको स्पष्ट करनेका अपनी तरफसे यत्न किया है। इसमें जहाँ जहाँ गीता, उपनिषद्, कामसूत्र, आयुर्वेदके वचन उद्धृत करनेकी जरूरत हुई मैंने उनको देनेका यत्न किया। जिससे कि पाठक—विद्यार्थिको किसी प्रकारकी कठिनाई न हो।

आयुर्वेदिक कौलेजोंमें संस्कृत सिखानेके लिये कोई भी आयुर्वेदिक ग्रन्थ नहीं था। सौभाग्यसे जयपुरकी आयुर्वेदाचार्य परीक्षामें यह पाठ्य ग्रन्थ है। परन्तु अन्य कौलेजोंमें साहित्य सिखानेके लिये अन्य ग्रन्थ बरते जाते हैं। इस ग्रन्थसे यह समस्या बहुत सुगमतासे सुलझ जाती है। इसमें आयुर्वेदका प्रारम्भिक ज्ञान साहित्यके साथ हो जाता है, (जिस प्रकार कि विष्णुशर्माने नीतिशास्त्रको कहानीके रूपमें कहकर पंचतंत्रकी रचना की)। विद्यार्थि आयुर्वेदके ज्ञानसे परिचित भी हो जाता है, और साहित्य भी सीख लेता है; साथमें गीता, उपनिषद्, वेदान्तका भी ज्ञान हो जाता है, और शिवभक्तिका महत्त्व समझ लेता है। इस प्रकारसे यह ग्रन्थ, धर्मग्रन्थ, साहित्यरचना, आयुर्वेदशास्त्रका बोध करा देता है। नाटकके विषयमें कहा निम्न श्लोक इसमें पूर्णरूपसे सार्थक होता है—

नतच्छास्त्रं न सा विद्या न तच्छिल्पं न ताः कलाः।
नासौ योगो न तद्ज्ञानं नाटके यन्नदृश्यते॥

ऐसे उपयोगी ग्रन्थ का आयुर्वेद के विद्यार्थियों के लिये पूर्णरूप में उपयोग किया जा सके—इसका प्रचार हो सके, इसी दृष्टि से हिन्दी में यह अनुवाद किया है। हिन्दी आज राष्ट्र की भाषा है; जिसकी सहायता द्वारा संस्कृत से अपरिचित व्यक्ति भी इसका रसास्वाद कर सकेगा; ऐसी मेरी मान्यता है।

अनुवाद में मूल वस्तु जैसा सौन्दर्य या लालित्य आना कठिन होता है, विशेष करके संस्कृत भाषा से, जिसमें कि समस्त शब्द रचना का गठन विशेष महत्त्वपूर्ण रहता है। फिर भी अर्थ और भाव को सुरक्षित रखते हुए अनुवाद करने का मैंने प्रयत्न किया है।

अड्यार लायब्रेरी से छपी पुस्तक का दाम तीस रुपया है, जो कि सामान्य जनता के लिये अधिक था। इसीलिये मैं ऐसे प्रकाशक की ढूँढ़ में था जो कि अधिक लाभ का विचार न करके उचित दामों पर इसका प्रकाशन कर सके, जिससे कि जनता में इसके द्वारा आयुर्वेद का प्रचार अधिक से अधिक हो, विद्यार्थी भी पूरा लाभ ले सकें। सौभाग्य से पुस्तक भवन काशी के संचालक श्री मुकुन्ददासजी गुप्त 'प्रभाकर' से बात चीत चली, और उन्होंने इसका प्रकाशन भी स्वीकार किया। उनका सदा ध्यान यही रहा कि संस्कृत की पुस्तकें सस्ते दामों में हिन्दी अनुवाद के साथ जनता में पहुँचाई जायें। इसके लिये उन्होंने वाल्मीकि रामायण, राजतरंगिणी आदि पुस्तकें भी निकाली हैं। इन्हीं के सहयोग से यह अनुवाद आज पाठकों के हाथ में पहुँच रहा है—इसके लिये मैं उनका बहुत आभारी हूँ, क्योंकि लेखक और प्रकाशक का परस्पर चोली दामन का साथ है, बिना इन दो पहियों के गाड़ी नहीं चल सकती।

अनुवाद को उपयोगी और महत्त्वपूर्ण बनाने का यथाशक्ति यत्न किया है, फिर भी इसमें सफलता तो तभी है, जब कि पाठक वृन्द इसे पसन्द करें। अन्त में कवि के रचना कौशल को भारवि के शब्दों में स्मरण करता हुआ विदा लेता हूँ।

स्फुटता न पदैरपाकृता न च न स्वीकृतमर्थगौरवम्।
रचिता पृथगर्थतागिरां न च सामर्थ्यमपोहितं क्वचित्॥

अध्यक्ष
आयुर्वेदिक फार्मेसी
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

अत्रिदेव

श्रीमदानन्दरायमखिप्रणीतं

जीवानन्दनम्

प्रथमोऽङ्कः

लक्ष्मीकैरवबन्धुकल्पकतरून् लब्ध्वाप्यलब्धेप्सिते
भूयो मथ्नति देवदानवगणे दुग्धाब्धिमृद्धश्रमे ।
तस्यानन्दथुना* समं समुदयन्कुम्भं सुधापूरितं
बिभ्राणः स्वकरे करोतु भवतां भद्राणि धन्वन्तरिः ॥१॥

वक्तव्य—प्रारम्भ किये ग्रन्थ की समाप्ति के लिये पूर्व कवि अभिष्ट देवता का स्मरण करके इसके पीछे रूपक के इष्ट विषय का निरूपण करते हैं। इसीलिये नाटकके कर्त्ता आनन्दरायमखि भी आठ पद वाली नान्दी का दो श्लोकों में निरूपण करते हैं।

१—भगवान् धन्वन्तरि आप सब का मङ्गल करें। भगवान् धन्वन्तरि के प्रादुर्भाव का कथानक—लक्ष्मी, कैरवबन्धु-चन्द्रमा और कल्पतरु इनको प्राप्त कर लेने पर भी इच्छित वस्तु के न प्राप्त होने के कारण देवता और राक्षसों द्वारा क्षीर समुद्र का अधिक श्रम पूर्वक मन्थन करने पर इन देवता और राक्षसों के आनन्द के साथ—अमृत से भरे कुम्भ घड़े को अपने हाथों में धारण किये जो धन्वन्तरि भगवान् उत्पन्न हुए वे आप सब का मङ्गल करें।†

---

* पाठान्तर—तस्यानन्दधुना ; आनन्दधुरा ।

† धन्वन्तरि का प्रादुर्भाव—

नारायणांशो भगवान् स्वयं धन्वन्तरिर्महान् ।
पुरासमुद्रमन्थने समुत्तस्थौ महोदधेः ।
सर्व वेदेषु निष्णातो वैद्यतन्त्रविशारदः ॥ –ब्रह्मवैवर्त्तः ५१ अध्याय

अपि च ।

प्राग्जन्मीयतपःफलं तनुभृतां* प्राप्येत मानुष्यकं
तच्च प्राप्तवता किमन्यदुचितं प्राप्तुं त्रिवर्गं विना ।
तत्प्राप्तेरपि साधनं प्रथमतो देहो रुजावर्जित-
स्तेनारोग्यमभीप्सितं दिशतु वो देवः पशूनां पतिः॥२॥

और भी—

वक्तव्य—मनुष्यों का इहलौकिक परम सुख आरोग्य ही है [जैसा अत्रिपुत्र ने कहा है—"सुखसंज्ञकमारोग्यम् विकारो दुःखमेव च]। इसी आरोग्यता के द्वारा पारलौकिक श्रेय मिल सकता है जैसा कि कवि कालिदास ने कहा है [शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्—कुमार सम्भव]; इसलिये पशुपति—शिव से इस आरोग्यता की माँग कवि ने की है [कवि शिव भक्ति में ही श्रद्धा रखता था; ऐसा इस श्लोक से तथा अन्तिम अङ्क में की गई शिवस्तुति से स्पष्ट है] ।

२—पूर्वजन्म में किये हुए तप के फल रूप में ही शरीर धारियों द्वारा मनुष्यत्व प्राप्त किया जाता है । इस मनुष्य शरीर को प्राप्त करके धर्म-अर्थ-काम इस त्रिवर्ग के बिना अन्य क्या वस्तु प्राप्त करना उचित हो सकती है ? मनुष्यत्व प्राप्त करके तो त्रिवर्ग ही प्राप्त करना चाहिये। इस त्रिवर्ग की प्राप्ति का प्रथम साधन शरीर का रोग रहित होना है। इसलिये पशुपति-महादेवजी आपको इच्छित आरोग्य प्रदान करें [नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः—श्रुति] ।

वक्तव्य—इस नाटक में ग्रन्थ के नाम के अनुसार जीव नायक है; इसकी पत्नि बुद्धि है; त्रिवर्ग साधक मन्त्री-विज्ञान शर्मा है; अपवर्ग का साधन मन्त्री ज्ञान शर्मा है; धारणा-स्मृति-भक्ति-श्रद्धा आदि इसका परिवार है । जीव का प्रतिपन्थि-यक्ष्मा प्रतिनायक है; विसूचि इसकी पत्नि है; पाण्डु-युवराज है तथा यही प्रधान अमात्य है । **कास,** इसकी पत्नि छर्दि, कर्णमूल, कुष्ट-गलगण्ड, उन्माद, आदि अनेक रोग

---

* तनुभृता ।

(नान्द्यन्ते)

सूत्रधारः—मारिष, इतस्तावत् ।

(प्रविश्य)

पारिपार्श्वकः—भाव, एषोऽस्मि ।

सूत्रधारः—

रीतिः सुखपदन्यासा शारदीया विजृम्भते ।
पूर्णचन्द्रोदयश्चायं निहन्ति ध्वान्तमामयम् ॥ ३ ॥

यक्ष्मा के परिवार के हैं । काम क्रोध आदि भी शत्रु पक्ष के सहायक हैं । इन पात्रों के चुनने में कवि ने प्रबोधचन्द्रोदय, सङ्कल्पसूर्योदय आदि रूपकों का अनुसरण किया है । इस प्रकार प्रथम पद्य में देव-गण शब्द से जीव और उसका परिवार और दानव-गण से यक्ष्मा और उसका परिवार सूचित किया है ।

[नान्दी के पीछे]

सूत्रधार—मारिष; इधर से आइये !

[प्रविष्ट होकर]

पारिपार्श्वक—मान्य ! यह मैं तैय्यार हूँ ।*

सूत्रधार—

३—शरत्काल का यह स्वभाव ही है कि इसमें सुख पूर्वक पैरों से चला जा सकता है । यह मेघों से अनाच्छादित पूर्ण चन्द्रोदय रोग के समान लोक को तिरस्कृत करते हुए अन्धकार को नष्ट करता है ।

वक्तव्य—पूर्णचन्द्रोदय रस के प्रयोग से यक्ष्मा आदि रोग समूह

---

* नान्दी— आशीर्वचनसंयुक्ता नित्यं यस्मात् प्रयुज्यते ।
देवद्विजनृपादीनां तस्मान्नान्दीति कीर्त्तिता ॥

पारिपार्श्वक— सूत्रधारस्य पार्श्वयः प्रकरोत्यमुना सह ।
काव्यार्थसूचनालापं स भवेत् पारिपार्श्वकः ॥

सूत्रधार—"सूत्र—व्यवस्था—को धारण करनेवाला सूत्रधार ।"
नाटकीय कथासूत्रं प्रथमं येन सूच्यते । रङ्गभूमिं समाक्रम्य सूत्रधारः सः उच्यते ॥

अपि च ।

क्रममाणेषु दिगन्तान् जलधरजालेषु शङ्खधवलेषु ।
शान्तिमुपयाति सहसा कालुष्यदशा भृशं पयसाम् ॥ ४ ॥

पारिपार्श्वकः—अतः किमाचरितव्यम् ।

सूत्रधारः—शृणु तावत् । अत्र तञ्जापुरे पौरजानपदा देशान्तरादागताश्च बृहदीश्वररथोत्सवदिदृक्षया संघीभूताः ।

सरसकवितानाम्नो हेम्नः कषोपलतां गताः
विरहणभुवः षड्दर्शिन्या विवेकधनाकराः ।

नष्ट हो जाता है ; यह अर्थ इससे सूचित है । शारदीया रीति से—मुख पदन्यास; वाग्विलास वैखरी—सुललित पद प्रयोग वाली लेखन शैली की सूचना भी मिलती है [स्फुटता न पदैरपाकृता भारवि] ।

और भी—

४—शङ्ख के समान श्वेत शरत्कालीन मेघ समूहों के दिशाओं के कोणों में चले जाने पर, मल का अतिशय गदलापन शान्त हो जाता है; जल निर्मल हो जाता है। अत्रिपुत्रने कहा है—"दिवासूर्यांशुसन्तप्तं निशि चन्द्रांशु शीतलम् । कालेन पक्वं निर्दोषमगस्त्येनाविषीकृतम् ॥ हंसोदकमिति ख्यातं शारदं विमलं शुचि । स्नानपानावगाहेषु हितमम्बु यथामृतम् ॥"

वक्तव्य—प्रकृत प्रबन्ध के अर्थ को सूचित करने के लिये किसी ऋतु के वर्णन रूप में नाटक के अङ्गभूत विषय का वर्णन किया जाता है।

रङ्गं प्रसाद्य मधुरैः श्लोकैः काव्यार्थ सूचकैः ।
ऋतुं कञ्चिदुपादद्यात् भारतीं वृत्तिमाश्रयन् ॥

परिपार्श्वक—शरत्काल आ गया, इससे क्या करना चाहिये ।

सूत्रधार—सुनो ! इस तंजौर नगर में पुरनिवासी-प्रादेशिक और जनपद निवासी बृहदीश्वर नामक रथोत्सव (रथ यात्रा) को देखने की इच्छा से एकत्रित हुए हैं—

५—सरस-हृदयङ्गम, कविता-काव्य रूपी स्वर्ण के गुण-अगुण की परीक्षा के लिए कसौटी के रूप में छ दर्शनों की क्रीड़ास्थली रूप में, विवेक ही अमूल्य धन जिनका है, ऐसे; तप द्वारा प्राप्त हुए ये सभासद

विदधति तपोलभ्याः सभ्या इमे मम कौतुकं
तदिह हृदयं नाट्येनैतानुपासितुमीहते ॥ ५ ॥

पारिपार्श्वकः—(सशिरःकम्पम् ।) कं पुनः प्रबन्धमवलम्ब्य ।

सूत्रधारः—नन्वस्ति मम वशे सहृदयजनहृदयचन्दनं जीवानन्दनं नाम नवीनं नाटकमिति ।

पारिपार्श्वकः—कस्तस्य प्रबन्धस्य कविः ।

सूत्रधारः—विद्वत्कविकल्पतरुरानन्दरायमखी । य एष इह

गुरुदेवद्विजभक्तो नैमित्तिकनित्यकाम्यकर्मपरः ।

मेरे मन में कुतूहल पैदा कर रहे हैं; इसलिये इस प्रसङ्ग में इन उपस्थित सभासदों के मन को नाटक के प्रयोग द्वारा प्रसन्न करने की मेरी इच्छा है। [छः दर्शन—न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा, वेदान्त]। कालिदास ने भी कहा है—

"तं सन्तः श्रोतुमर्हन्ति सदसद् व्यक्ति हेतवः ।
हेम्नः संलक्ष्यते ह्यग्नौ विशुद्धिः श्यामिकापि वा ॥" —रघुवंश*

पारिपार्श्वक—(शिर को हिलाकर) किस नाटक का अभिनय करके आप मन प्रसन्न करना चाहते हैं ।

सूत्रधार—मेरे हाथ में सहृदयजनों के हृदय के लिए चन्दन रूप जीवानन्दन नामक नवीन नाटक है ।

पारिपार्श्वक—उस नाटक का कवि कौन है ?

सूत्रधार—विद्वान कवियों का कल्पवृक्ष-आदृत आनन्दराय मखी है; वह—

६—आचार्य, देवता, ब्राह्मणों में भक्ति रखता है; नित्य-नैमित्तिक और काम्य कर्मों में तत्पर रहता है; दीन प्रजाजनों में सदा दया बरतने वाला तथा संग्राम में उज्जयिनीपति विक्रमादित्य के समान विचरता है ।

---

* पुरोचना का लक्षण—"उन्मुखीकरणं तत्र प्रशंसातः पुरोचना"—प्रस्तुत अर्थ की प्रशंसा के द्वारा सुनने वालों की प्रवृत्ति को बढ़ाना पुरोचना है । इस श्लोक से कवि ने सभासदों में उत्सुकता उत्पन्न की है ।

दीनजनाधीनदयो विहरति समरे च विक्रमार्क इव ॥ ६ ॥
अपि च ।

य: स्नातोऽजनि दिव्यसिन्धुसलिले यश्चात्मविद्याश्रितो
येनाकारि सहस्रदक्षिणमखो यः सद्भिराश्रीयते ।
सोऽयं त्र्यम्बकराययज्वतिलको विद्वत्कवीनां प्रभो-
र्यत्तातस्य नृसिंहरायमखिनस्तुल्यप्रभावोऽनुजः ॥ ७ ॥

पारिपार्श्वकः—(सबहुमानम्) आः, ज्ञायत एवायम् । किं त्वस्य सर्वलोकविदिता अप्येते गुणाः प्रबन्धनिर्वाहधूर्वहत्वमवबोधयितुं नेशते । यतः—

आराध्नोति यदेष भक्तिभरितो देवान्द्विजातीन्गुरू-

[नित्यकर्म—स्नान, सन्ध्या, वन्दनाग्निहोत्रादि; नैमित्तिक—पुत्रजन्म-उपनयन-विवाहादि; काम्य कर्म—इच्छित फल के उद्देश्य से किये यज्ञ, दान, जप आदि—ये तीन प्रकार के कर्म हैं] । और भी—

७—जिस त्र्यम्बकराय ने गङ्गा के पानी में स्नान किया था; और जो अध्यात्म विद्या के अध्ययन और प्रवचन में सदा लगा रहता है; जिसने हजारों स्वर्ण-दान वाले यज्ञ किये, जिसका सज्जन विद्वान आश्रय करते हैं; वह यह त्र्यम्बकराय विधि पूर्वक यज्ञ करने वालों में श्रेष्ठ तथा विद्वान कवियों का आश्रय स्थान है । यह त्र्यम्बकराय, इस ग्रन्थ-कर्त्ता आनन्दराय के पिता नृसिंहराय मखि के समान प्रभाव वाला उसका छोटा भाई है [अर्थात् ग्रन्थकर्त्ता का पितृव्य—चाचा है] । [प्राचीन काल में वेगवान यात्रा साधनों के अभाव से; वन और पर्वतों के कारण मार्ग के बीहड़ होने से दक्षिण से आकर गङ्गा में स्नान करना कठिन होता था, इसलिये गङ्गा स्नान रूपी महान कार्य का उल्लेख किया है ।]

पारिपार्श्वक—(बहुत मान के साथ)—हाँ ठीक है; कवि के विषय में तो यह बात जानी हुई है । परन्तु सम्पूर्ण लोक में जाने हुए भी कवि के ये गुण ग्रन्थ रचना के सामर्थ्य को उत्पन्न नहीं करते । क्योंकि—

८—यह आनन्दरायमखि भक्ति से देवता-ब्राह्मण और गुरुओं की पूजा करता है और श्रद्धा के साथ समय पर नित्य, नैमित्तिक और काम्य

न्यच्च श्रद्धधदातनोति समये नित्यादिकर्मत्रिकम् ।
यद्दीनेषु दयां करोति समरे शौर्यं यदालम्बते
तत्सर्वं नरसिंह्लयज्वसुततालाभस्य लीलायितम् ॥ ८ ॥

इदं तु श्रोतव्यम् ।

आनन्दरायमखिनो वाल्मीकेरिव योगिनः ।
इतरापेक्षणात्सारः स्वतः सारस्वतोदयः ॥ ९ ॥

सूत्रधारः—(विहस्य) मारिष, तत्त्वं न जानासि* यत एवं ब्रवीषि । शृणु तावत् ।

इन तीनों कर्मों को जो करता है तथा दीन प्रजाजनों पर जो दया विखेरता है; लड़ाई में जो शूरता दिखाता है, यह सब तो नरसिंह यज्वा के पुत्र होने के कारण से ही होते हैं । †

यह भी जानना चाहिये कि—

९—निदिध्यासन निष्ठा में श्रद्धा वाले योगि आनन्दरायमखि को वाल्मीकि की भाँति किसी दूसरे की सहायता से ही स्वतः वाक् प्रवृत्ति हुई।

जिस प्रकार से ब्रह्मा के कहने से वाल्मीकी मुनि में वाक् प्रवृत्ति हुई थी, उसी प्रकार वेद कवि नामक किसी विद्वान की सहायता से आनन्द-रायमखि ने यह रचना की—ऐसा सुना जाता है ।

सूत्रधार—(हँसकर) मारिष ! वास्तविक बात को नहीं जानते, इसी से ऐसा कहते हो; तब सुनो—

---

* 'तत्त्वं न जानासि' के स्थान पर 'त्वं न जानासि' भी पाठ है ।

† कवि के पिता का असाधारण प्रभाव विद्यापरिणय नाटक में वर्णित है, यथा—

नाना पूर्व महक्रतु प्रणयनैरध्यात्मसंमर्शनै :
कर्मब्रह्मपथ प्रचार सविता षड्दर्शनी वल्लभाः ।
तातौ यस्य किलैकराजवसुधा धौरन्धरी गीष्पति :
क्षोणिपालकिरीटललित पद ! ख्यातोनृसिह्माध्वरि ।

वहीं पर इनके अनुज के लिये भी—

यस्य तातानुजन्मापि यशः पावितदृङ्मुखः ।
त्रिवर्ग फल सम्पन्नस्त्र्यम्बकामात्यैदीक्षितः ।।

आबाल्यादपि पोषितोऽजनि मया प्रेम्णा तथा लालित-
स्तेनासौ सरसामुपैतु कवितामानन्दरायाध्वरी ।
इत्येकक्षितिपालवंशजलधेर्देव्या गिरां जातया
श्रीशाहावनिनायकाकृतिभृता नूनं प्रसादः कृतः ॥१०॥

अत एव ।

कवीनां पूर्वेषां कथमपि च चित्तैरवहितै-
र्गृहीता या नासीत्सरसकवितासारपदवी ।
असौ तामाक्रामन्हरति नरसिंह्माध्वरिकुल-
प्रदीपः सूरीणां श्रवणयुगजाड्यान्धतमसम् ॥ ११ ॥

पारिपार्श्वकः—श्रीशाहराज इति नाम दधत्याः सरस्वत्याः किया नानन्दरायमखिनि दयाविशेषः । यतः—

१०—इस आनन्दरायमखि का शाह भूपतिरूप मुझ शारदा देवी ने बचपन से ही पोषण किया है; इसलिए इस आनन्दराय मखि की कविता आह्लादकारी होती है । एक नामक राजवंश रूपी समुद्र से उत्पन्न श्री शाहजि नामक राजा के स्वरूप को धारण करके सरस्वती देवी ने निश्चय रूप से इस पर अनुग्रह किया है ।

वक्तव्य—**तञ्जौरपुर राज्य में शाहजि नामक दो-तीन मराठे राजा हुए हैं; उनमें से प्रथम शाहजि नामक राजा के आनन्दरायमखि मन्त्री थे, ऐसा सुना जाता है। यह राजा स्वयं बड़ा पण्डित था, और पंडितों का आदर करता था ।**

और भी—

११—सरस कवितासार की शैली जो कि प्राक्तन कवियों के एक विषय में नियमित चित्तों द्वारा ग्रहण नहीं की जा सकी थी, उसी सरस कवितासार शैली को नृसिह्मराय मखि के वंश के प्रदीप रूप इस आनन्द-रायमखि ने बल पूर्वक अपने वश में करके उसके द्वारा विद्वानों के कानों का जड़तारूप अन्धकार हटाया ।

पारिपार्श्वक—श्रीशाहजि नाम धारण करती हुई सरस्वती देवी की आनन्दरायमखि पर कितनी अधिक दया है । क्योंकि—

पुष्यत्कौतुकपद्मसंभूतकरद्वन्द्वाङ्गुलीवेल्लन-
द्राङ्निष्पीडितचन्द्रमण्डलगलत्पीयूषधारासखैः।
वाग्गुम्फैर्बलवैरिधारितशचीधम्मिल्लमल्लीसर-
स्फारामोदमदापहैश्च कवयत्यानन्दरायाध्वरी॥ १२॥

युक्तमुक्तं च भावेन 'शाहभूपतिरूपेण गिरां देवी जाता' इति। कथमन्यथानन्यसाधारणमस्य प्रागल्भ्यम्। तदिदानीमिदमुत्प्रेक्ष्यते—

भर्तुं लालयितुं भुवि प्रथयितुं विद्वज्जनानाश्रिता-
न्श्रीशाहक्षितिपात्मना क्षितिगतां मत्वा गिरां देवताम्
आसिञ्चन्नसकृत्कमण्डलुजलैरङ्गानि पर्याकुलो
धाता वाहनहंसपक्षपवनैस्तापं किलापोहति॥ १३॥

सूत्रधारः—तन्नियोजय भूमिकापरिग्रहायास्मद्वर्ग्यं शैलूषगणम्।

१२—बढ़ते हुए कौतुक वाले ब्रह्मा के दोनों हाथों की अँगुलियों के ऐंठने से जल्दी से दबाया गया जो चन्द्र-मण्डल, उससे निकलती हुई जो अमृत की धारा, उसके समान तथा इन्द्र द्वारा पकड़े हुए इन्द्राणि के केशपाशों में लगी जो कल्पतरु के फूलों की माला, उनकी अतिशय गन्ध के भी गर्व को तोड़ने वाले वाग् समूहों से आनन्दरायमखि कविता प्रबन्ध को बनाता है।

भाव ने ठीक ही कहा है कि वाक् देवी इस भूमि पर शाहजि नामक राजा के रूप में अवतरित हुई है। नहीं तो फिर किस प्रकार दूसरों से असाधारण प्रगल्भता इसमें होती। ऐसा मालूम पड़ता है कि—

१३—पृथ्वी पर आश्रित विद्वज्जनों का पोषण, लालन और प्रसिद्धि करने के लिये शाहजि रूप से सरस्वती को भूमि पर अवतरित मान कर विह्वल हुए ब्रह्मा ने अपने कमण्डलु के शीतल जल से इसके अङ्गों का बार-बार अभिषिञ्चन किया तथा अपने वाहनभूत राजहंस के पंखों से हवा करके इसके ताप को दूर किया।

सूत्रधार—यदि ऐसी बात है तो अपनी मण्डली के नटसमुदाय को पात्रोचित वेश धारण के लिए तैयार करिए।

पारिपार्श्वकः—बाढम् । किंतु सन्ति कथानायकस्य जीवस्य परिजना विज्ञानशर्मप्रभृतयः, प्रतिनायकस्य च यक्ष्मणः परिजनाः पाण्डु-श्वासकासज्वरगुल्मातिसारप्रभृतयः । तेषां यद्यपि भूमिकाग्रहण पटवो नट-बटवः पुण्डरीककेयूरकमयूरकसारङ्गकतरङ्गकप्रभृतयः संनह्यन्ति; तथापि प्रयोगस्य बहुत्वेन दुरवगाहतया कथमभीप्सितार्थसिद्धिर्भविष्यतीति विचारेण व्याकृष्यत इव मे हृदयम् ।

सूत्रधारः—यत्किंचिदेतत् । महतामेषां सामाजिकानामनुग्रह एवा-स्माकमभीप्सितमर्थं समग्रयिष्यति । यतः—

जाड्यं भिनत्ति जनयत्यधिकं पटुत्वं
सार्वज्ञमावहति संमदमातनोति ।
विद्वेषिवर्गविजयाय धृतिं विधत्ते
किं किं करोति न महद्भजनं जनस्य ॥ १४ ॥

पारिपार्श्वक—ठीक है । किन्तु कथानायक जीव के परिजन विज्ञानशर्मा आदि हैं। प्रतिनायक यक्ष्मा के परिजन पाण्डु, श्वास, कास, ज्वर, गुल्म, अतिसार आदि हैं । यद्यपि इनकी भूमिका करने में पुंड-रीक, कलहंसक, केयूरक, मयूरक, सारंगक, तरंगक आदि बहुत चतुर नट बटु तैयार हैं; तथापि इस नाटक के अत्यधिक कठिन होने के कारण किस प्रकार इच्छित सफलता मिलेगी, यह सोच कर मेरा हृदय खिंच रहा है—हिचक रहा है। [सभासदों का मनोरंजन होगा या नहीं; यह शंका मन में होती है] ।

सूत्रधार—जो कुछ भी है, इन बड़े सामाजिक जनों की कृपा ही हमारे इच्छित अर्थ को पूरा करेगी । क्योंकि—

१४—बड़े आदमी का सेवन मन और बुद्धि की जड़ता को दूर करता है; पटुत्व को अधिक उत्पन्न करता है, सर्वतोमुखी ज्ञान को उत्पन्न करता है, हर्ष को उत्पन्न करता है, शत्रु वर्ग को जीतने के लिये धैर्य प्रदान करता है; और क्या क्या नहीं करता—सब कुछ करता है ।

पारिपार्श्वकः—एवं च मन्ये त्वया सह स्पर्धमानोऽपि विकटनामा नटबटुरभिनयविद्यायां महदनुग्रहात्त्वयैव विजेष्यत इति ।

सूत्रधारः—विकटो नाम नटबटुर्मया सह स्पर्धत इत्यतत्त्वविदो वचनम् । शृणु तावत् ।

अभिनयविद्याविषये दुरहंकाराकुलीकृतो विकटः ।
स नटबटुर्मां वाञ्छत्यभिभवितुं जीवमिव यक्ष्मा ॥ १५ ॥

(नेपथ्ये)

अरे रे शैलूषापसद, 'अभिभवितुं जीवमिव यक्ष्मा' इति किमसम्भावितमर्थं दृष्टान्तयसि ।

पारिपार्श्वक—मैं ऐसा मानता हूँ कि तुम्हारे साथ स्पर्धा करता हुआ विकट नाम का नट वटु, नाटक विद्या में बड़े अनुग्रह से तुमको जीतना चाहेगा [इस वाक्य से महादेव के अनुग्रह से शत्रु यक्ष्मा का परिभव करके जीव की विजय सूचित की है; यक्ष्मा के लक्षण विकट होते हैं] ।

सूत्रधार—विकट नाम का नटवटु मेरे साथ स्पर्धा करता है; यह वास्तविकता को न जानने वालों का ही कहना है ।

और भी सुनो—

१५—झूठे अहंकार से विह्वल हुआ विकट नाम का नटवटु नाट्यशास्त्र में मुझको पराजित करना चाहता है; यक्ष्मा जिस प्रकार जीव को पराजित करना चाहता है ।*

[नेपथ्य में]

अरे रे नीच नट! यक्ष्मा जिस प्रकार जीव को पराजित करना चाहता है; यह क्या असम्भव दृष्टान्त दे रहे हो—

---

* यहाँ पर विद्धक नाम का नाटकाङ्ग है—

नाटकीय फल हेतु भूतस्याध्यक्ष कीर्त्तनम् ।
आफलोदयमुत्साहावसानाभ्यां हि विद्धकम् ॥

मयि जीवति जीवस्य स्वामिनो मन्त्रिणि प्रिये ।
दुर्बलो यक्ष्महतकः कथं वाभिबुभूषति ॥ १६ ॥

सूत्रधारः—(आकर्ण्य) मारिष, जीवराजमन्त्रिणो विज्ञानशर्मणो भूमिकामादाय मम कनीयान्कलहंसो रङ्गभुवमवतरति । तदावामप्यनन्तर-करणीयाय सज्जीभवावः ।

(इति निष्क्रान्तौ)

प्रस्तावना

(ततः प्रविशति जीवमन्त्री विज्ञानशर्मा)

१६—स्वामि जीव के सुभ हितैषी मंत्री के जीवित रहते हुए हीन सत्व वाला दुरात्मा यक्ष्मा किस प्रकार तिरस्कार करना चाहता है ।*

सूत्रधार—(सुनकर) मारिष ! जीवराज के मंत्री विज्ञानशर्मा की भूमिका को लेकर मेरा छोटा भाई कलहंसक रंगमंच पर आ रहा है । इसलिये हम दोनों भी इसमें करणीय करने के लिये तैयार हो जायें ।

[यह कहकर निकल गये]

प्रस्तावना†

[इसके पीछे जीव के मन्त्री विज्ञानशर्मा आते हैं]

---

* यहाँ पर प्रवर्त्तक नाटकाङ्ग है—

प्रवृत्त कालमाश्रित्य प्रस्तावो यो विधीयते ।
तदाश्रयस्य पात्रस्य प्रवेशने प्रवर्त्तकम् ॥

इसी को कथोद्घात भी कहते हैं—

वाक्यं वाक्यार्थमथवा प्रस्तुतं यत्र सूरिणः ।
गृहीत्वा प्रविशेत्पात्रं कथोद्घातो द्विधैव सः ॥

प्रस्तावना— सूत्रधारेण सहिताः संलापं यत्र कुर्वते ।
नटी विदूषको वापि पारिपार्श्वक एव वा ॥
चित्रवाक्यैः स्वकार्योत्थैः प्रस्तुता क्षेपिभिर्मिथः ।
आमुखं नाम तस्यैव सैव प्रस्तावना मता ॥

विज्ञानशर्मा—('अरेरे शैलूषापसद'—इत्यादि पठित्वा विचिन्त्य) सर्वथा राजसमीपं गत्वा तदनुज्ञया यक्ष्मणः प्रवृत्तिमुपलब्धुं चारान्प्रेषयिष्यामि। अथवा 'तत्प्रवृत्त्युपलम्भाय प्रेषय धारणाम्' इति मयोक्तो राजा तथा कुर्यात्। (श्रुतिमभिनीय।)

> दिक्षूदञ्चति ताम्रचूडरसितं यद्ध्रस्वदीर्घप्लुत-
> प्रायोवर्णनिभं ब्रवीति तदिदं व्युष्टा निशाभूदिति।
> स्त्रीणां निर्गमनं विहृत्य पतिभिर्वृते विनैवाक्षरैः
> क्रीडावेश्मकपाटिकाविघटनक्रेंकारपारम्परी ॥ १७ ॥

तदिदानीं देव्या प्रसन्नया बुद्धया सह राजा प्रतिबुध्य निवसेत्। तदुपसर्पामि। (इति पुरो दृष्टिक्षेपमभिनयन्)।

विज्ञानशर्मा—[अरे रे नीच नट ! आदि को दोहरा कर; सोच कर] सब रूप से राजा के समीप जाकर उसकी आज्ञा से यक्ष्मा की प्रवृत्ति को जानने के लिए गुप्तचरों को भेजता हूँ। अथवा उस यक्ष्मा की प्रवृत्ति को गमनागमन-बलाबलादि रूप प्रवृत्ति को जानने के लिये धारणा को भेजें—इस प्रकार मुझसे कहा राजा वैसा करे [कुछ सुनाई पड़ा—ऐसा अभिनय करके]।

१७—ह्रस्व-दीर्घ और प्लुत वर्णों के समान कुक्कुट का एक-दो-तीन मात्रा रूप में क्रमशः बढ़ता हुआ कूजना दिशाओं में फैल रहा है। यह कूजना यह कह रहा है कि रात्रि बीत गई है। क्रीड़ा गृह के कपाटों के खोलने से उत्पन्न क्रेंकर शब्द की परम्परा पतियों के साथ में खेल कर स्त्रियों का क्रीड़ागृहों से निकलना बिना अक्षरों के ही रात बीतने को स्पष्ट कह रही है।

तो अब जागी हुई महारानी बुद्धि के साथ राजा भी जाग गये होंगे, मैं भी उनके पास जाता हूँ [इसके पीछे सामने की ओर दृष्टि लगाने का नाट्य करके]*

---

* विज्ञानशर्मा—शिल्पादि रूप कलाओं में जो बुद्धि-ज्ञान होता है, वह विज्ञान है [मोक्षे धीः ज्ञानमन्यत्र विज्ञानं शिल्पशास्त्रयोः]। इसी नाटक में ज्ञानशर्मा मंत्री भी दूसरा है। इस प्रकार से कवि ने उपनिषद में वर्णित श्रेय और प्रेय एवं विद्या अविद्या इन दोनों को सूचित किया है।

चञ्चत्खेटकृपाणकञ्चुकशिरस्त्राकल्पदर्प्यद्भटा
सादिव्यञ्जितवक्रमण्डलगतित्वङ्गत्तुरङ्गव्रजा ।
गण्डद्वन्द्वगलन्मदाम्बुमुखरीभूतद्विरेफद्विपा
दृष्ट्योर्मे कुतुकाय राजभवनद्वारोपकण्ठस्थली ॥१८॥

अपि च ।

प्रौढामात्यनिरुक्तमन्त्रपदवीविस्रम्भसंचारिणो
राज्ञो दुःसहतेजसो निशमने यद्वद्धृतिं द्वेषिणः ।
प्रासादप्रतिहारवेदिषु तथा स्नेहाङ्कपात्रस्थिताः
प्रत्यूषोपगमे प्रदीपमुकुलाः कान्तिं त्यजन्त्यञ्जसा ॥१९॥

(पुरो विलोक्य) का पुनरियं तपश्चरणजनितप्रभुत्वगौरवेव मामभिवर्तते ।

गाढोन्नद्धजटाकलापकपिल श्रीधूतबालातपा
बिभ्राणा भसितानुलेपधवलच्छायां तनुं पावनीम् ।

१८—चंचल खेट-तलवार-कञ्चुक-शिरस्त्राण के वेश से अभिमानित (शौर्यधैर्यबल से गर्वित योद्धाओंवाली; घुड़सवारों के बनाये टेढ़े मण्डल वाले) चञ्चल घोड़ों के समूह वाली; जहाँ पर हाथियों के दोनों गण्डस्थलों से बहने वाली मदधारा के कारण भ्रमर समूह खिंच रहा है; ऐसी राज-भवन के पास की भूमि मेरी आँखों में कुतूहल उत्पन्न करती है ।

और भी—

१९—प्रधान मंत्री से सन्दिष्ट गुप्तराज तंत्र प्रयोग द्वारा विश्वास पूर्वक प्रवृत्त होने वाले, जिसके तेज का सहन नहीं हो सकता ऐसे राजा का नाम सुनने से जिस प्रकार शत्रुओं का धैर्य नष्ट हो जाता है; उसी प्रकार राजमहल की बाहर की वेदि में रक्खे दीपकों की लौ प्रातःकाल के आ जाने से जल्दी से कान्ति को छोड़ रही हैं ।

[सामने की ओर देखकर]

यह कौन है ? जो कि तपश्चर्या करने के कारण उत्पन्न प्रभुत्व गौरत्व की भाँति मेरे सामने आ रही है ।

२०—दृढ़ता से ऊँचे उठा कर बाँधे हुए जो जटासमूह, उनकी पिङ्गलवर्ण शोभा से, उत्पन्न होते हुए सूर्य को तिरस्कृत करते हुए;

भिक्षापात्रमयूरपिच्छचयभृत्पाणिद्वया मेऽधुना
काषायाम्बरधारिणी कलयति स्वान्ते धृतिं तापसी ॥२०॥
(निपुणं निरूप्य) ।

अस्यामक्षिभ्रुवं नासा रदपंक्ती रदच्छदः ।
चुबुकं मन्दहासश्च धारणायामिवेक्ष्यते ॥ २१ ॥

(ततः प्रविशति तापसीवेषा धारणा)

धारणा—अहं खु पच्चत्थिराआभिसेणणसंणाहं कस्स वि पुरिसस्स मुहादो सुदवन्तेण रण्णा 'इमं उत्तन्तं पुरं पविसिअ जाणीहि' त्ति पेसिदम्हि । मए वि तावसीवेसाए तह जाणिअ रण्णो समीवे समागमीअदि । (अग्रतो दत्तदृष्टिः स्वगतम् ,) एसो विण्णाणसम्मा अमच्चो आअच्छदि। होदु । वेसेण पदारेमि णम् । जज्जवि सव्वस्सिं वि कज्जे इमस्स अणु-

---

भस्म के लगाने के कारण शुभ्रवर्ण वाले पवित्र शरीर को धारण किये; एक हाथ में भिक्षा पात्र और दूसरे हाथ में मोर पिच्छा समूह को लिए; काषाय वस्त्र को धारण किए, यह तापसी-साधुनि मेरे मन में अब धृति को उत्पन्न करती है ।

[बारीकी से देखकर]

२१—इसकी आँखें, भ्रुएँ, नासा, दान्तों की पंक्ति, ओठ, चिबुक और मुस्कराहट ये धारणा-जीव की परिजन-भूत परिचित स्त्री की भाँति दिखाई देते हैं ।

[इसके पीछे तापसी वेश को धारण किए धारणा आती है]*

धारणा—शत्रु नृपति की लड़ाई के लिये तैयार की हुई सेना की तैय्यारी को किसी पुरुष के मुख से सुन कर राजा ने मुझे इस वृत्तान्त को नगर में जा कर जानने के लिये भेजा था । मैं भी साधुनी के वेश में वैसा जानकर राजा के समीप जा रही हूँ । यह विज्ञानशर्मा मंत्री आ रहा है ।

---

* धारणा— यमादि गुण संयुक्ते मनसः स्थितिरात्मनि ।
धारणा प्रोच्यते सद्भिः योगशास्त्रविशारदैः ॥ वशिष्ठ०
ध्येये चित्तस्य स्थिरबन्धनम् धारणा— हेमचन्द्र०

मदिं विणा रात्रा ण पवट्टइ तहवि जं मह संसत्रो वट्टइ ता एअकस्स पत्रासो ण भवे। (क) (इति परिक्रामति)।

मन्त्री—(दृष्ट्वा स्वगतम्) इयं तापसी राजप्रहिता प्रच्छन्ना किं धारणा भवेत्। भवतु। पृच्छामि (प्रकाशम्) अये तापसि, का त्वम्। कुत आगच्छसि।

धारणा—(स्वगतम्) इमस्स पडिवअणं भासन्तरेण भणेमि। अण्णहा कहं वि जाणिस्सदि इअं सेति। (ख) (प्रकाशम्) अहं खलु गार्गी यद्मणो राज्ञो वयस्या; देव्या गृहिण्याः स्नेहसर्वस्वभाजनं तदन्तःपुरादेवागच्छामि।

भले आये। वेश से इसको ठगूँगी। यद्यपि सब कार्यों में इसकी अनुमति के बिना राजा प्रवृत्त नहीं होता तथापि जो मेरे मन में संशय है, वह किसी एक पर भी प्रकट नहीं होना चाहिए [इस प्रकार सोच कर घूमती है]।

मंत्री—[देखकर अपने आप ही] यह साधुनि राजा से भेजी हुई गुप्त रूप में क्या धारणा तो नहीं है; हो सकती है; पूछता हूँ (स्पष्ट रूप में) अयि तापसि ! आप कौन हैं; कहाँ से आ रही हैं ?

धारणा—(अपने आप ही) इसको उत्तर भाषा द्वारा देती हूँ। नहीं तो यह मुझे जान जायेगा कि यह तो वही धारणा है। (स्पष्ट रूप में) मैं तो गार्गी हूँ, यद्मा राजा की युवती देवी पत्नी की प्रिय पात्री हूँ, उनके अन्तःपुर से ही आ रही हूँ।

(क) अहं खलु प्रत्यर्थिराजाभिषेणनसंनाहं कस्यापि पुरुषस्य मुखाच्छ्रुतवता राज्ञा 'इमं वृत्तान्तं पुरं प्रविश्य जानीहि' इति प्रेषितास्मि। मयापि तापसीवेषया तथा ज्ञात्वा राज्ञः समीपे समागम्यते। एष विज्ञानशर्मा अमात्य आगच्छति। भवतु। वेषेण प्रतारयाम्येनम्। यद्यपि सर्वस्मिन्नपि कार्येऽस्यानुमतिं विना राजा न प्रवर्तते तथापि यन्मम संशयो वर्तते तदेककस्य प्रकाशो न भवेत्।

(ख) अस्य प्रतिवचनं भाषान्तरेण भणामि। अन्यथा कथमपि ज्ञास्यति इयं सेति।

मन्त्री—(स्वगतम्) भवेदेवेयं धारणा । तापसीवेषेण रिपुप्रवृत्तिमुपलभ्यागतवती । अयं स्वनामानुगुणमभिज्ञो वा न वेति मां परीक्षितुं संस्कृतभाषया वेषानुगुणमपलपते । प्रतिपक्षकुले च पक्षपातमात्मनः सूचयति । भवतु । अहमप्यजानन्निवानुनयन्पृच्छाम्येनाम् । (प्रकाशम्) अये तापसि !

निखिलं जगतश्चरितं विज्ञातं ते समाधिनैव भवेत् ।
तन्मे महाप्रभावा भाग्येनासादिता भवती ॥ २२ ॥

धारणा—(स्वगतम्) मं तावसि एव्व जाणिअ मह मुहादो पच्चत्थिराअप्पउत्तिं सुणिदुं अणुणअप्पआरो एसो । होदु । अहं वि अजाणन्तीव पुच्छामि । **[मां तापसीमेव ज्ञात्वा मम मुखात्प्रत्यर्थिराजप्रवृत्तिं श्रोतुमनुनयप्रकार एषः । भवतु । अहमप्यजानतीव पृच्छामि ।]** (प्रकाशम्) **कस्त्वम् । क्व गच्छसि । सूनृतेन ते वचनेन साधुर्भवानिति पृच्छामि ।**

मंत्री—(अपने आप ही) यह धारणा ही हो सकती है । तापसी के वेश में शत्रु की प्रवृत्ति को जान कर आई होगी । यह अपने नाम के अनुकूल ही यह (मंत्री) मुझे पहिचानता है या नहीं, यह जानने के लिये ही अपने वेश के अनुसार संस्कृत भाषा में बात कर रही है । शत्रु पक्ष में अपना महत्त्व दिखा रही है । अच्छा यही सही । मैं भी अनजान की भाँति नम्रतापूर्वक इससे पूछता हूँ (स्पष्ट रूप में) अयि तापसि !

२२—ध्यान के द्वारा ही संसार का सम्पूर्ण वृत्तान्त तुमको ज्ञात हो सकता है; इसलिये महाप्रभाव वाली आप श्रीमती मुझे बड़े भाग्य से प्राप्त हुई हैं । [समाधि—मनसा ध्यान निष्पाद्यं समाधिः सोऽभिधीयते ।]

धारणा—(अपने आप ही) मुझे साधुनि ही समझ कर मेरे मुख से शत्रु राज्य की प्रवृत्ति को सुनने की इच्छा से यह अनुनय बरत रहा है । अच्छा ऐसा ही सही । मैं भी इसको न पहिचानती हुई की भाँति पूछती हूँ (स्पष्ट रूप में) आप कौन हैं, कहाँ जा रहे हो; प्रियवचनों से आपको सज्जन समझ कर पूछ रही हूँ ।

मन्त्री—(स्वगतम्) इयमात्मानं गोपयति । अहमपि तथैवोत्तरयामि । (प्रकाशम्) कार्यविशेषेऽधिकृतं जानीहि येनैवमधिकृतस्तन्निकटे गच्छामि ।

धारणा—(स्वगतम्) एसा विपक्खजणपक्खवादिणित्ति गोपणप्पआरो एसो । [**एषाविपक्षजनपक्षपातिनीति गोपनप्रकार एषः ।**] (प्रकाशम्) **केनाधिकृतोऽसि ।**

मन्त्री—भगवति, त्वमेव जानासि । यतः प्रणिधानेन योगिनः सकलमपि प्रत्यक्षयन्ति ।

धारणा—(स्वगतम्) कहं एदं आपडिदम् । होदु । जोइणो विअ आसिअं करिअ अमच्चं वञ्चेमि । (इति ध्यानारूढा तिष्ठति) [**कथमेतदापतितम् । भवतु । योगिन इवासिकां कृत्वा अमात्यं वञ्चयामि ।**]

मन्त्री—(स्वगतम्) एषा खलु ।

कृत्वा स्वस्तिकमासनं करयुगं विन्यस्य जानुद्वये

मंत्री—(अपने आप ही) यह अपने को छिपा रही है । मैं भी इसी प्रकार उत्तर देता हूँ । (स्पष्ट रूप में) विशेष राजकार्य में नियुक्त मुझको आप जानें । जिसने मुझे इसमें नियुक्त किया है; उसी के समीप जा रहा हूँ ।

धारणा—(अपने आप ही) यह शत्रु पक्ष में पक्षपात रखती है, इसी से छिपाने का यह ढङ्ग है (स्पष्ट रूप में) किसने नियुक्त किया है ?

मंत्री—भगवति-आप ही जानती हैं । क्योंकि ध्यान से योगी लोग सम्पूर्ण वस्तु को प्रत्यक्ष कर लेते हैं ।

धारणा—(अपने आप ही) यह तो मुझ पर ही आ पड़ी; अच्छा ऐसा ही सही, योगी-रूप में बैठ कर मंत्री को ठगती हूँ (इस प्रकार ध्यान में बैठ जाती है) ।

मंत्री—यह तो ।

२३—स्वस्तिक आसन को लगा कर; दोनों हाथों को दोनों घुटनों

नासाग्रार्पिततारका नतमृजूकृत्यावलग्नं दृढम् ।
निःश्वासोच्छ्वसितोपरोधघटितस्तैमित्यपीनस्तनी
चित्ते मे कृतसंयमेव कुरुते धूर्ता महत्कौतुकम् ॥ २३ ॥

(प्रकाशम्) परिनिष्ठितं योगाभासनं भवत्याः ।

धारणा—(ध्यानाद्विरम्य सस्मितम्) जीवस्य राज्ञो मन्त्री विज्ञान-शर्मा भवान् ।

पर रख कर, नासा के अग्रभागमें दृष्टि को बाँध कर, झुके हुए मध्य भाग को दृढ़ता से सीधा करके, निश्वास बाहर निकलने वाला श्वास-रेचक और उच्छ्वास अन्दर जाने वाला श्वास-पूरण इन दोनों को रोकने से उत्पन्न स्तब्धता के कारण पीन स्तनों वाली यह धूर्ता धारणा, ठीक प्रकार से समाधि का ढोंग करके मेरे मन में हँसी को उत्पन्न कर रही है ।

(स्पष्ट रूप में)—विषयों से चित्तवृत्ति को हटाकर ध्यान द्वारा योग को ठीक प्रकार से प्रगट किया है । [गीता में भी—

तत्रैकाग्रं मनःकृत्वा यतचित्तेन्द्रिय क्रियः ।
उपविश्यासने युञ्ज्याद्योगमात्मविशुद्धये ॥ ६।१२।]

वक्तव्य—समाधि के लिये पाँच आसन बताये हैं; यथा—पद्मासन, स्वस्तिकासन, भद्रासन, वज्रासन और वीरासन । इनमें से इसने स्वस्तिक आसन लगाया है; इसका लक्षण—

जानूर्वोरन्तरे सम्यक् कृत्वा पादतले उभे ।
ऋजुकायो विशेद्योगी स्वस्तिकं तत् प्रकीर्त्यते ॥

भगवद्गीता में इसी स्थिति का उल्लेख है—

समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलंस्थितः ।
संप्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन् ॥ ६।१३।

कुमारसम्भव में—"पर्यङ्कबन्ध स्थिर पूर्वकायम् ।"

धारणा—[ध्यान से रुक कर मुस्कराते हुए]—जीव राजा के मंत्री विज्ञानशर्मा आप हैं ।

मन्त्री—महाप्रभावा योगसिद्धिमती भवती। तथाहि--

बुद्ध्या महत्या कृतसाहचर्या देवे निजे दर्शितभूरिभक्तिः।
परप्रवृत्तिं विदती महिम्ना साधारणा त्वं त्वहिते हिते च ॥२४॥

धारणा—(स्वगतम्) किं जाणिदं म्हि अमच्चेण जहत्थणामधेएण जं तावसीवण्णणव्वाजेण अहं जेव्व वण्णिदा। होदु। एव्वं भणामि। [**किं ज्ञातास्म्यमात्येन यथार्थनामधेयेन यत्तापसीवर्णनव्याजेनाहमेव वर्णिता। भवतु। एवं भणामि। (प्रकाशम्) महान्खलु योगप्रभावः।**

मंत्री—बहुत अधिक प्रभाव वाली योगसिद्धि आपको प्राप्त है। क्योंकि—

२४—आप ने प्रबल बुद्धि के साथ साहचर्य किया है, अपने इच्छित देव में बहुत भक्ति दिखाई है, तप के प्रभाव से ईश्वर की प्रवृत्ति को जानने वाली आप शत्रुवर्ग और मित्रवर्ग में समान रूप हैं [समःशत्रौ च मित्रे च—गीता]।

धारणा के पक्ष में—जीव की पत्नी महादेवी बुद्धि के साथ आप का साहचर्य हैं; अपने देव-जीव राजा में अतिशय भक्ति दिखाई है। अपनी शक्ति से शत्रु पक्ष-यक्ष्मा की प्रवृत्ति को जानने वाली, शत्रुवर्ग के अहित के लिये और मित्रवर्ग के हित के लिये यत्न करने वाली वह तुम धारणा हो।

वक्तव्य—अत्रिपुत्र ने बुद्धि और धृति सम्बन्ध स्पष्ट कर दिया है, यथा—जायते विषये तत्र या बुद्धिर्निश्चयात्मिका।
व्यवस्यति तया वक्तुं कर्तुं वा बुद्धिपूर्वकम्॥
विषय-प्रवणं सत्त्वं धृति भ्रंशान्न शक्यते।
नियन्तुमहितादर्थाद् धृतिर्हि नियतात्मिका॥ चरक

धारणा—(अपने आप ही) क्या मंत्री ने मुझे पहिचान लिया, जो कि वास्तविक मेरे नाम से मुझको ही तापसी वेश के बहाने से वर्णन किया है। ऐसा ही सही; इस प्रकार कहती हूँ (स्पष्ट रूप में) योग का प्रभाव बहुत अधिक है।

मन्त्री—भगवति, तव न किंचित्प्राणिनामन्तर्गतमविदितमस्ति । अतस्त्वां प्रार्थये । कथमस्माकं राजनि यक्ष्मा मन्यते । योगिन्यास्तव दुःखितेषु कथमेषां दुःखविमुक्तिः स्यादिति चित्तपरिकर्मविशेषः करुणा भवत्येव । योगाङ्गेषु यमेषु वाङ्मनसयोर्यथार्थत्वरूपः सत्यं नाम द्वितीयो यमोऽपि तथा । अत इदं निर्विशंकं प्रार्थनापूर्वं पृच्छामि ।

मंत्री—भगवति ! प्राणियों के मन में स्थित कुछ भी आप से अज्ञात नहीं है । इसीलिये आप से प्रार्थना करता हूँ कि हमारे राजा में यक्ष्मा कैसा वर्त्ताव करता है, आप तो योगिनी हैं—इन दुःखियों का दुःख से छुटकारा किस प्रकार होगा । आप में चित्त का विशेष कर्म करुणा होता ही है । योग के जो आठ अङ्ग हैं उनमें यमों के अन्दर वाणी और मन का यथार्थ रूप जो सत्य है, वह दूसरा यम है । इसलिये यह बात बिना शंका के प्रार्थना पूर्वक पूछ रहा हूँ ।

वक्तव्य—मन की चार प्रवृत्ति हैं—मैत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षा; जैसा अत्रिपुत्र ने कहा है—

मैत्री कारुण्यमार्त्तेषु शक्ये प्रीतिरुपेक्षणम् ।
प्रकृतिस्थेषु भावेषु वैद्यबुद्धिश्चतुर्विधः इति ॥

योग दर्शन में भी यही चार वृत्तियाँ हैं—मैत्री करुणामुदितोपेक्षाणां सुखदुःख पुण्यापुण्यविषयाणां भावनाश्चित्तप्रसादनम्—समाधि पाद ३३ । वृद्ध वाग्भट में भी इनको ही गिना है—

सर्वत्र मैत्री करुणाऽऽतुरेषु निरामदेहेषु नृषुप्रमोदः ।
मनस्युपेक्षा प्रकृतिं व्रजत्सु वैद्यस्य सद्वृत्तमलङ्करोति ॥ उत्तर ५० अ० ।

योग के आठ अङ्ग—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि । इनमें यम—शरीर साधनापेक्षं नित्यं यत् कर्म तद्यमः ; दस प्रकार का है, यथा—



धारणा—(स्वगतम्) जक्खराजपक्खवादविसेसे वि जोइणीए पुच्छिदस्स जहत्थुत्तरं अभणिअ असक्कं ठादुं त्ति मण्णइ अमच्चो। [यक्ष्मराजपक्षपातविशेषेऽपि योगिन्या पृष्टस्य यथार्थोत्तरमभणित्वा न शक्यं स्थातुमिति मन्यतेऽमात्यः ।] (प्रकाशम्) किमन्यत् । पुरान्निष्क्रमयितव्योऽयमिति मन्यते ।

मन्त्री—कथमेतदेतस्य संघटते सामादिषु चतुर्ष्पायेष्वेकैकस्यापि प्रयोगेण सुसाधो हि रिपुमनोरथभङ्गः ।

धारणा—नन्विमं दुष्करं पश्यामि ।

यक्ष्मणि विभौ प्रयोगं घटयन्ति न सामभेददानानि ।

अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यं क्षमा धृतिः ।
दयार्जवं मिताहारः शौचं चैते यमा दश ॥

मन को निर्मल करने में करुणा जैसे दूसरी है, उसी प्रकार यमों में सत्य भी दूसरा है । योगियों में दया और सत्य होता है; यह इससे स्पष्ट किया है ।

धारणा—(अपने आप ही) अमात्य समझते हैं कि यक्ष्मा राजा में पक्षपात विशेष रहने पर भी पूछी जाने पर ठीक उत्तर दिये बिना योगिनी का छुटकारा नहीं हो सकता । (स्पष्ट रूप में) और क्या, इस जीवराजा को पुर से (नगर से-शरीर से) निकालना ही चाहिये ऐसा यह मानता है ।

वक्तव्य— शरीरके लिए पुर शब्द वेद और गीतामें आता है, वेदमें—
"अष्टचक्रा नवद्वारा देवानां पुरयोध्या ।"
गीता में—"नवद्वारे पुरे देही नैव कुर्वन्नकारयन् ॥" ५।१३

मंत्री—इस यक्ष्मा राजा का मनोरथ कैसे पूरा हो सकता है । साम-दाम-भेद और दण्ड इन चार उपायों में से एक-एक के प्रयोग से शत्रु का मनोरथ सुगमता से तोड़ा जा सकता है ।

धारणा—मनोरथ को तोड़ना मैं कठिन समझती हूँ ।

२५—सब प्रकार से समर्थ यक्ष्मा में साम, दाम और भेद ये तीन

दण्डः प्रभवेन्नु कथं प्रबलतरे रिपुजने स्वस्मात् ॥ २५ ॥

मन्त्री—यथार्थमाह भवती । किं त्विदं पक्षपातवचनम् । केनेम-मस्मत्प्रबलतरं मन्यसे ।

धारणा—(स्वगतम्) एसो अत्तकेरअस्स पहुणो अमच्चो । ता पहुजणविसअणीए मन्तविचारसिद्धीए परपक्खबलट्ठिदिं एदस्स जेव्व कहइस्सम् । [**एष आत्मीयस्य प्रभोरमात्यः तत्प्रभुजनविषयिण्या मन्त्र विचारसिद्धेः परपक्षबलस्थितिमेतस्यैव कथयिष्यामि ।**] (प्रकाशम्) सर्वरोगराजो यक्ष्मा निष्प्रतीकार इति सर्वजनविदितमेतत् । शृणु तावत् । परीवारा एतस्य रोगविशेषा भीमरूपा बहवः । तथाहि—

ज्वरपाण्डुप्रमेहार्शश्शूलगुल्मभगंदराः ।
कासश्वासावतीसारसंनिपाताश्मरीव्रणाः ॥ २६ ॥

उपाय तो सफल नहीं हो सकते । और अपने से अधिक प्रबल शत्रु में चौथा उपाय दण्ड वह कैसे सफल हो सकता है (वह तो असम्भव है ।)

मन्त्री—आपने ठीक ही कहा है । परन्तु आपने जो यह कहा कि अपने से प्रबल (यक्ष्मा) शत्रु में यह वचन पक्षपात पूर्ण हैं, किस कारण से आप उसे हम से प्रबल मानती हैं ।

धारणा—(अपने आप ही) यह अपने ही स्वामी का मन्त्री है । इसलिए राजा-मन्त्री से सम्बन्धित राजनीति सम्बन्धी गुप्त अर्थ की सफ-लता को देनेवाली शत्रु सैन्य बल की स्थिति को इसे कहूँगी । (स्पष्ट रूप में) सब रोगों के राजा यक्ष्मा का प्रतिकार नहीं हो सकता, यह बात सब मनुष्यों को विदित है । [१–सर्व रोगाग्रजो बली । २–अनेक रोगा-नुगतो बहुरोग पुरोगमः । दुर्विज्ञेयो दुर्निवारः शोषोव्याधिर्महाबलः ।। सुश्रुत] । और भी सुनो भयानक एवं बहुत बड़ा रोग रूप इसका परि-वार है ; जैसे—

२६—ज्वर, पाण्डु, प्रमेह, अर्श, शूल, गुल्म, भगन्दर, कास, श्वास, अतिसार, सन्निपात, अश्मरी और व्रण इसके परिवार में हैं ।

किं च ।

रोगा मूर्ध्नि शतं चतुर्नवतिरेवाक्ष्णोस्तथा नासिकां
प्रत्याष्टादश कर्णयोरपि तथा वक्त्रे चतुःसप्ततिः ।
पञ्चैवं हृदि किं च सन्ति बहवः सर्वेऽप्यमी दुस्तराः
प्राप्तौ कल्ककषायलेह्यवटकप्रायौषधानामपि ॥२७॥
तस्माद् दुर्जयो यक्ष्मा युष्माभिः ।

इनके सिवाय और भी हैं, यथा—

२७—शिरोरोग एक सौ, आँखों के ६४ रोग हैं ; नासिका के रोग १८, कान के रोग भी १८, मुख के रोग ७४ और हृदय के ५ रोग हैं, इतने ही रोग नहीं हैं, अपितु और भी बहुत से रोग हैं, जो कि यक्ष्मा का साथ देते हैं, ये सब रोग कल्क, कषाय, लेह्य, वटक आदि औषधियों के प्राप्त होने पर भी कष्टसाध्य हैं । इसलिए तुम लोगों से यक्ष्मा दुर्जय है ।

वक्तव्य—यक्ष्मा के ग्यारह उपद्रव—"प्रतिश्यायं स्वरं कासमङ्गमर्द शिरोरुजम् । श्वास विड्भेदमरुचिं पार्श्वशूलं स्वरक्षयम् ॥
करोति चांससन्तापमेकादशमिहाङ्गहृत् ॥

इसके सिवाय मधुमेह, शूनोदर, शूनमुष्क, पाण्डु आदि रोगों का भी यक्ष्मा के साथ सम्बन्ध बताया है—"पाण्डु देहो यथा पूर्वं क्षीयन्ते चास्य धातवः ॥"

रोगों की संख्या—शिर के रोग एक सौ कहीं देखने में नहीं आये ; चरक में शिरो रोग पाँच हैं । सुश्रुत में—ग्यारह; अष्टाङ्ग संग्रह में—शिरोरोग दस और कपाल रोग नौ कहे हैं । आँखों के रोग चरक में चार, सुश्रुत में ७६, अष्टाङ्ग संग्रह में ९४ हैं । नासिका के रोग चरक में ४, सुश्रुत में ३१, अष्टाङ्ग संग्रह में १८ हैं । कर्णरोग चरक में ४, सुश्रुत में २८, अष्टाङ्ग संग्रह में २५, माधव निदान में २१ हैं । मुखरोग चरक में ४, सुश्रुत में ६५, अष्टाङ्गसंग्रह में ७५ हैं । नेत्र,

मन्त्री—(स्वगतम्) इयं किल भीत्या निसर्गकातरा प्रबलपर-बलप्रवेशहृदया मदीयप्रभावमजानती स्वबुद्ध्यनुरूपं किमपि प्रलपति । भवतु । किमनया वृथा संवादकदर्थनया । प्रस्तुतकार्यसाधनार्थमिमां तावदन्तरयामि । (प्रकाशं सोपहासम्)

आलोक्य शात्रवबलं बहुधारणे त्वं
भीतासि संप्रति नसंप्रतिपन्नधैर्या ।
जीवस्य जीवितसमे मयि सत्यमात्ये
भूयात्कथं बत विरोधिशिरोधिरोहः ॥ २८ ॥

धारणा—(विहस्य) कधं जाणिदम्हि अमच्चेण । ता कहेमि विस्सद्धं जहत्थं सुणादु अमच्चो । अहं खु देईए बुद्धीए सहअरी रण्णा जीवेण तावसीवेसं करिअ रत्तिम्मि पुरं पविसिअ जक्खराअस्स विआर-

---

नासिका, कर्ण, मुख रोगों की संख्या के विषय में कवि ने शार्ङ्गधर का अनुसरण किया है । कल्क—दृषादि पेषितः-द्रव्य को पानी के साथ या बिना पानी के शिला पर पीसना कल्क है । कषाय—क्वथित द्रव्य को कषाय कहते हैं । लेह्य-आवलेहन-चाटन, वटक-गोली ।

मन्त्री—(अपने आप ही) यह जन्म से ही (स्वभाव से ही) डरपोक है, इसके हृदय में शत्रु का बल दृढ़ता से बैठ गया है; जिससे कि मेरे प्रभाव को न जानती हुई अपनी बुद्धि के अनुरूप कुछ का कुछ कह रही है । ऐसा ही हो । इस व्यर्थ की बातचीत से क्या लाभ । प्रस्तुत कार्य को सिद्ध करने के लिये इससे बात करता हूँ । [स्पष्ट रूप में—हँस के] ।

२८—हे धारणा ! शत्रुके बल को देखकर तुम बहुत डर गई हो इस समय तुमको धैर्य नहीं रहा । जीवराज के प्राणों के समान मेरे अमात्य होने पर शत्रुओं के सिर किस प्रकार उठ सकते हैं ? यह आश्चर्य है ।

धारणा—क्या मन्त्री ने मुझे पहिचान लिया है । इसलिये विश्वास के साथ सही-सही कहती हूँ, मन्त्री सुनें । मैं राजमहिषी बुद्धि की सहचरी हूँ, मुझे जीवराजा ने तापसी का वेश धारण करके यक्ष्मा राजा के नगर

णीश्रो ववसाश्रो त्ति पेसिदम्हि । तह जेव विचारिश्र श्रज्जं पदारेदुं पच्छण्णो व ठिदम्हि । [कथं ज्ञातास्म्यमात्येन । तत्कथयामि विश्रब्धं यथार्थं शृणोत्वमात्यः । अहं खलु देव्या बुद्धेः सहचरी, राज्ञा जीवेन तापसीवेषं कृत्वा रात्रौ पुरं प्रविश्य यक्ष्मराजस्य विचारणीयो व्यवसाय इति प्रेषितास्मि । तथैव विचार्यार्यं प्रतारयितुं प्रच्छन्नेव स्थितास्मि ।]

मन्त्री—युज्यत एतत् । अतो राजसमीपमेव गच्छावः ।

धारणा—तुमं जेव्व गदुश्र इमं वुत्तन्तं भणाहि । रण्णो णिवेदणादो वि तुह पुरदो कज्जणिवेदणं अब्भहिदम् । अहं उण दुज्जणसंसग्गकिदं कलुसं पक्खालेदुं महाणदिं ण्हादुं गच्छेमि । [त्वमेव गत्वा इमं वृत्तान्तं भण । राज्ञो निवेदनादपि तव पुरतः कार्यनिवेदनमभ्यहितम् । अहं पुनर्दुर्जनसंसर्गकृतं कलुषं प्रक्षालयितुं महानदीं स्नातुं गच्छामि ।] (इति निष्क्रान्ता ।)

मन्त्री—(सविचारम् ।) यद्यपि कुटिलप्रकृतयः स्वामिनि निबद्धदृढभक्तयो दुर्जया एव परसैनिकास्तथापि किमसाध्यं बुद्धिविभवस्य । यतः—

में रात्रि के समय प्रविष्ट होकर उनका भेद जानने के लिए भेजा था। इस प्रकार से सोच कर आर्य को ठगने के लिए छिपे रूप में स्थित हूँ ।

मन्त्री—यह ठीक ही है । इसलिये हम दोनों राजा के पास ही चलें ।

धारणा—आप ही जाकर यह समाचार दें, राजा को सूचित करने से आपके सामने निवेदन करना प्रशंसनीय है। दुर्जन के संसर्ग से उत्पन्न पाप को धोने के लिये मैं भी महानदी में स्नान के लिए जाती हूँ ।

मन्त्री—[सोचते हुए] यद्यपि कुटिल प्रकृति (स्वभाव से कुटिल) होने पर भी अपने स्वामी यक्ष्मा में दृढ़ भक्ति वाले शत्रु सैनिक दुर्जय जैसे ही हैं, तथापि बुद्धि ऐश्वर्य के लिये क्या असाध्य—असम्भव है । क्योंकि—

दुर्जाते सुमहत्यपि क्षितिपतेः शालीनतां संत्यज-
ञ्शत्रूञ्जेतुमथेप्सितं घटयितुं शक्नोत्युपायेन यः ।
प्रायो मन्त्रिपदं महोन्नतमतिः प्राप्तुं स एवार्हति
स्वोत्सेकी न तु परिडतो भुवि जनो वाचा वदन्पौरुषम्॥२६॥

अत इदानीम् ।

संचिन्तयामि कंचन संप्रति समयोचितं जयोपायम् ।
येनास्माकं श्रेयो भविता सहसा पराजयो द्विषताम् ॥३०॥

(इति ध्यानं नाटयति ।) आः, चिन्तितोऽयमबाधितोपायः । तथाहि—

प्रथन्ते यास्तिस्रः प्रबलजडतीक्ष्णाः प्रकृतयो
वशीकारे तासां जगति सदुपायाः परमसी ।

२६—जो परिडत राजा के अति प्रबल कष्ट में भी अपनी शाली-नता को नहीं छोड़ता, शत्रुओं को जीतने के लिये तथा इच्छित कार्यों को उपाय के द्वारा जो पूरा कर सकता है, वही अति प्रौढ़ प्रज्ञावाला विद्वान मंत्री पद प्राप्त करने के योग्य है, जो अभिमानी मनुष्य वाणी से ही अपने पराक्रम को कहता है, वह मंत्री पद के योग्य नहीं है । *

इसलिये इस समय तो—

३०—अब समय के अनुकूल किसी जय के उपाय को सोचता हूँ, जिससे हमारा कल्याण हो और शत्रुओं का पराजय हो ।

[इस प्रकार से ध्यान कर अभिनय करता है]

ओ हो ! यह अवाधित उपाय सोच लिया, क्योंकि

३१—महाशक्ति सम्पन्न, मन्द स्वभाव और क्रूर गुणवाली तीन प्रकार की ये जो प्रकृतियाँ-प्रजाजन हैं, उनको वशमें करने के लिये

---

* मुद्राराक्षस में भी इसी तरह का वचन है—

अप्राज्ञेन च कातरेण च गुणः स्यादभक्तियुक्तेनकः,
प्रज्ञाविक्रमशालिनोऽपिहि भवेत् किं भक्तिहीनात्फलम् ।
प्रज्ञाविक्रमभक्तयः समुदिता येषां गुणा भूतये,
ते भृत्या नृपतेः कलत्रमितरे संपत्सु चापत्सु च ॥

क्रमात्स्नेहास्ते ते कुशलमतिभिः सद्भिरुदिता-
स्तथा तीक्ष्णोपाया नियतमुपचाराश्च मधुराः ॥३१॥

तस्मात्प्रबलजडतीक्ष्णप्रकृतीनां वातपित्तकफानां मध्ये प्रबलो यो वातः स तु बहुविधस्नेहविशेषप्रयोगेण वशीकार्यः । तदनुगतस्य पित्तस्य मधुरोपचारेणैव सुकरः वशीकारः । उभयविरुद्धो जडो यः कफस्तत्रे-

---

जगत में ये उपाय बताये हैं । ये उपाय—महान् शक्ति वालों के लिये—कुशल बुद्धिवाले सज्जनों ने स्नेह-मैत्रीदर्शन उपाय बताया है (उत्तमं-प्रणीपातेन); क्रूर प्रकृति वालों के तीक्ष्ण उपाय—त्रासजनक उपाय बताये हैं (शूरं भेदेन योजयेत्); जड़ प्रकृति वालों के लिये—मधुर उपचार—दान आदि उपाय नियत किये हैं (नीचमल्पप्रदानेन)। वैद्यक शास्त्र से प्रकृतियाँ तीन हैं, वात प्रकृति, पित्त प्रकृति और कफ प्रकृति—ये क्रम से प्रबल, तीक्ष्ण और जड़ हैं ।

पित्तं पंगु कफः पंगु पंगवो मल धातवः ।
वायुना यत्र नीयन्ते तत्र गच्छन्ति मेघवत् ॥

इन तीनों को शान्त करने के लिये—वायु के लिये स्नेह (वातस्यो-पक्रमः स्नेहः), पित्त के लिये—घृत का पान और मधुर-शीतल द्रव्यों से विरेचन (पित्तस्य सर्पिषः पानं स्वादुशीतैर्विरेचनम्) कफ के लिये तीक्ष्ण वमन (श्लेष्मणो विधिनायुक्तं तीक्ष्ण वमन रेचनम्) है ।*

---

* येन येन दोषेणाधिकतमेनैकेनानेकेन वा समनुबध्यन्ते, तेन तेन दोषेण गर्भोऽनुबध्यते । ततः सा सा दोषप्रकृतिरुच्यते मनुष्याणां गर्भादिप्रवृत्ता । तस्मात् श्लेष्मलाः प्रकृत्या केचित्, पित्तलाः केचित्, वातलाः; संसृष्टा केचित्, समधातवः प्रकृत्या केचिद् भवन्ति ।। चरक में वात प्रकृति, पित्तप्रकृति, कफ प्रकृति शब्दों का अनौचित्य स्पष्ट किया है; यथा—समवातपित्तश्लेष्माणं ह्यरोगभिच्छन्ति भिषजः। यतः प्रकृतिश्चारोग्यम्, आरोग्यार्था च भेषज प्रवृत्तिः सा चेष्टरूपा । तस्माद्भवन्ति समवातपित्तश्लेष्माणः। न तु खलु सन्ति वात प्रकृतयः पित्त प्रकृतयः, श्लेष्म प्रकृतयो वा; तस्य-तस्य किल दोषस्य हि आधिक्यभावात्सा सा दोषप्रकृतिरुच्यते मनुष्याणाम् ।। चरक.

तरोपायस्याप्रसरात्तीक्ष्णप्रयोगेणैव स वशमानेतव्यः । एवं च तत्तत्समुचितैरुपायैः सर्वामयनिदानेषु वातादिषु स्वाधीनेषु तज्जनितानामितरेषामुन्मेष एव दूरतोऽपास्तः । किं च

इसलिये प्रबल-जड़ और तीक्ष्ण इन तीन रूपवाली वात कफ और पित्त प्रकृतियों में प्रबल जो वात-वायु है; उसे नाना प्रकार के स्नेहों से (घृत-तैल-वसा-मज्जा आदि से) वश में करना चाहिए। इसके पीछे चलनेवाले पित्त को मधुर उपचारों के द्वारा सुख पूर्वक वश में कर सकते हैं। इन दोनों के विरुद्ध जो जड़ कफ है, उसमें उपरोक्त दोनों उपायों के चरितार्थ न होने से इसे तीक्ष्ण प्रयोग के द्वारा ही वश में लाना चाहिये। इस प्रकार से उन-उन उचित उपायों के द्वारा सब रोगों के निदानों में वात आदि को अपने अधीन कर लेने पर इनसे उत्पन्न ज्वर, कास, श्वास आदि सम्पूर्ण रोगों की उत्पत्ति दूर से हट जायेगी, इन रोगों की उत्पत्ति की सम्भावना नहीं रहती। †

वातस्योपक्रमः स्नेहः स्वेदो मृदुनिस्त्रिग्धोष्ण मधुराम्ल लवणानि ।

पित्तस्य सर्पिष्पानं सर्पिषा स्नेहनमधोदोषहरणम् मधुरतिक्तकषायाणामौषधाभ्यवहार्याणामुपयोगः । श्लेष्मणः पुनर्विधिविहितानितीक्ष्णानिसंशोधनानिरुक्षप्रायाण्यभ्यवहार्याणि । संग्रह—

† दोषों के शमन के लिये कई मत हैं। यहाँ पर जो मत दिया है, वह पराशर का है, यथा—(क) क्रमान्मरुत पित्त कफात् सर्वत्र सदृशं बले ।

वातादीनां यथापूर्वं यत-स्वाभाविकं बलम् ॥
ऊंचे पराशरोऽप्यर्थममुमेव प्रमाणयन् ।
यथोपन्यासतः प्राप्तमादौ दोषभिषग्जितम् ॥
नेतृभङ्गेन दृष्टं समं सैन्यपराजयः ॥

(ख) स्थानतः केचिदिच्छन्ति प्राक् तावच्छ्लेष्मणो वधम् ।
शिरस्युरसि कण्ठे च प्रलिप्तेऽन्नारुचि कुतः ॥
तस्मादादौ कफोघात्यः कायद्वारार्गलो हि सः ।
मध्यस्थायि यत; पित्तमाशुकारि च चिन्त्यते ॥

सर्वस्मिन्विषये निरङ्कुशतया यद्दुर्निरोधं मनः
प्रायो वायुरिव प्रकृष्टबलवत्सर्वात्मना चञ्चलम् ।
तत्कामादिभिरुद्धतैरुपहृतं संप्रेरितैर्यक्ष्मणा
तत्सौहार्दमुपेत्य यद्यपि पुनर्नः प्रातिकूल्यं चरेत् ॥३२॥

अतस्तदपि महाधिकारेण वशीकृत्य महति व्यापारे विनियोज्य तैरपि दुर्भेदं

३२—पाँचों ज्ञानेन्द्रियों के सब विषयों में अबाध गति से कठिनाई द्वारा वश में किया जाने वाला मन वायु की भाँति अतिशय बलवान एवं सम्पूर्णरूप से चंचल मन यक्ष्मा से भेजे हुए उद्धत काम-मोह-क्रोध-लोभ आदि के साथ मित्रता करके यद्यपि हमारा विरोध करे ।

वक्तव्य—मन चंचल है इसको वायु के समान वश में करना कठिन है, यह वचन गीता में भी आता है—

"चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद् दृढम् ।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम् ॥
असंशयं महाबाहो मनोदुर्निग्रहम् चलम् ॥६।३४।३५

इसलिये इस मन को भी विषय निवारण में निपुण विचित्र प्रभाव वाले विवेक आदि के द्वारा वश में करके बड़े भारी व्यापार में—यम नियम निदिध्यासन आदि बाह्येन्द्रियों के वश में करनेवाले कार्य में लगाकर काम-क्रोध आदि के लिये दुर्भेद्य करूँगा । यद्यपि मेरी इच्छा के प्रतिकूल चलने वाला ज्ञानशर्मा (मोक्ष साधक जीव मंत्री) मेरे

अतो वातसखस्यास्य कुर्यात्तदनु निग्रहम् ।
अत एव च पित्तादि कफान्तोऽन्यैः क्रमः स्मृतः ॥

(ग) सुश्रुतश्च न सर्वत्र मतमेतत् ब्रवीति तु ।
जयेज्ज्वरेऽतीसारे च क्रमात् पित्तकफानिलान् ॥

(घ) कफपित्तानिलानन्ये क्रममाहुस्तयोरपि ।
यस्मादामाशयोत्क्लेशात् भूयिष्टं तत्समुद्भवः ॥

(ङ) विज्ञाय कर्मभिः स्वैः स्वैः दोषोद्रेक्तं यथा बलम् ।
भेषजं योजयेत्तत्तत् तन्त्री कुर्यान्नतु क्रमम् ॥

करिष्यामि । यद्यपि मद्विरोधिचेष्टोऽज्ञानशर्मा मदसंनिधाने राज्ञ उपजापेन कार्यभेदमेव जनयेत् तथापि जाग्रति मयि स निष्फलकर्मैव ।

सर्वानर्थनिदाने यक्ष्मणि तस्मिन्समूलमेव मया ।
उन्मूलिते ततो नः कर्तव्यं नावशिष्यते किंचित् ॥ ३३ ॥

तथाकर्तुमेव तावद्राजनिकटमेव गच्छामि । (इति कतिचित्पदानि गत्वा पुरो विलोक्य) इदं तद्राजभवनम् । यावत्प्रविशामि। कः कोऽत्र भोः ।

(प्रविश्य ।)

प्रतीहारः—मन्त्रिन्, किमाज्ञापयसि ।

मन्त्री—प्राण दौवारिक, संप्राप्तं मां राज्ञे निवेदय ।

प्राणः—तथा । (इत्यन्तःपुरं प्रविष्टः) ।

मन्त्री—(परितो विलोक्य) इह खलु

संमृज्य शोधिनीभिश्चत्वरवेदीतलेषु रम्येषु ।

राजा के पास में न होने पर राजा में भेद उत्पन्न करके विपरीत प्रयत्न को करे, तो भी मेरे जागरुक रहने से उसका प्रयत्न निष्फल ही होगा ।

३३—शारीरिक और मानसिक सब प्रकार के रोगों के कारण भूत, प्रबल रोग परिवार से युक्त इस यक्ष्मा रोग के जड़ समेत मुझ द्वारा नष्ट कर दिये जाने पर हमारा कोई भी कार्य अवशिष्ट नहीं रहता । ऐसा करने के लिए ही मैं तब तक राजा के पास जाता हूँ (इस प्रकार से कुछ कदम जाकर सामने देखकर) यह तो राजभवन है, तब तक देखता हूँ, यहाँ पर कौन है ?

[सुनकर]

प्रतिहार—मन्त्री ! क्या आज्ञा है ?

मन्त्री—प्राण दौवारिक ! मैं आ गया हूँ, यह राजा को सूचित कर दो ।

प्राण—ऐसा ही (इस प्रकार अन्तःपुर में घुस गया ।]

मन्त्री—(चारों ओर देखकर) यहाँ पर तो······

३४—ये दासियाँ झाड़ुओं से साफ करके सुन्दर प्रांगणों की सीढ़ियों

रचयन्ति रङ्गवल्लीरन्तःपुरचारिका एताः ॥ ३४ ॥
गृह्णन्वेत्रलतां वसत्यवसरापेक्षो जरत्कञ्चुकी
राजा मामवलोकयेदिति समं वत्सेन गौस्तिष्ठति ।
वादित्रध्वनिमण्डलीकृतगरुद्बर्हो नटत्यङ्गणे
देव त्वं विजयीभवेति गुणयन्नास्ते शुकः पञ्जरे ॥३५॥

(प्रविश्य ।)

दौवारिकः—(मन्त्रिणं प्रति) स्वामिन्, भवन्तं द्रष्टुं बुद्ध्या देव्या सह भद्रासनमधिवसति राजा ।

मन्त्री—
अतिपरिचयेऽपि राज्ञो बिभेमि सहसोपगन्तुमभ्यर्णम् ।
येनाग्नेरिव तेजः स्फुरदस्याराग्निवर्तयति ॥ ३६ ॥

के फर्शों पर रंगोलियाँ बना रही हैं ।

३५—वृद्ध कंचुकी वेत्र (दण्ड) को लिए हुए अवसर-आज्ञा की प्रतीक्षा में खड़ा है, राजा मुझे देखे, इसलिये गाय बछड़े के साथ में खड़ी है । वादनों की ध्वनि से अपनी पिच्छा के भार को मण्डलाकार करके मोर आँगन में नाच रहा है; पिंजरे में बैठा तोता बार-बार यह कह रहा है कि हे देव ! तुम विजयी हो ।

वक्तव्य—कंचुकी का लक्षण—

"अन्तःपुरचरो वृद्धो विप्रो गुणगणान्वितः ।
सर्वकार्यार्थकुशलः कंचुकीत्यभिधीयते ॥

[प्रविष्ट होकर]

दौवारिक—(मंत्री को लक्ष कर के.) स्वामिन् ! आपको देखने के लिये राजा बुद्धि देवी के साथ भद्रासन पर बैठे हैं ।

३६—मन्त्री—अति परिचय होने पर भी राजा के समीप में सहसा जानेमें मैं डरता हूँ । क्योंकि इसका तेज अग्नि के समान फैलता हुआ दूर से ही रोकता है ।

(विचिन्त्य ।) परपक्ष प्रति प्रतिविचारणाय प्रेषितां धारणां प्रतीक्षमाण इव लक्ष्यते । भवतु तदेतदहं वक्ष्यामि ।

(ततः प्रविशति बुद्धया देव्या सह राजा जीवः ।)

मंत्री—(उपसृत्य ।) विजयतां महाराजः ।

राजा—इतो निषीदतु भवान् । (इति मन्त्रिणे आसनं निर्दिशति ।)

मंत्री—(आसने उपविश्य स्वगतम् ।) एष खलु—

गण्डूषोदकशोधितेऽपि वदने ताम्बूलरक्ताधरः ।
स्नानापोहितचन्दनेऽपि वपुषि प्रोद्दामतत्सौरभः ।
निर्णिक्ते सिचये धृतेऽपि कनकाकल्पेन पीताम्बरः
सोऽयं सत्यपि न प्रमाद्यति सदाचारादतिप्राभवे ॥३७॥

(प्रकाशम् ।) महाराजेन प्रहिताया धारणाया मुखात्तत्रत्यः सर्ववृत्तान्तो विदित एव । सा पुनर्दुर्जनसंसर्गदोषपरिहाराय नदीं स्नातुं गता । तथा च मयि संक्रामितस्तत्रत्यवृत्तान्तः ।

[सोचकर] शत्रु पक्ष में विमर्श पूर्वक वृत्तान्त को जानने के लिये भेजी हुई धारणा की प्रतीक्षा करते हुए दीखते हैं । ऐसा ही हो; वह वृत्तान्त मैं ही इसको कहूँगा ।

[इसके पीछे बुद्धि देवी के साथ जीवराजा प्रविष्ट होते हैं]

मंत्री—(पास में जाकर) महाराजा की जय हो ।

राजा—आप यहाँ बैठें [ऐसा कहकर मन्त्री को आसन देते हैं] ।

मंत्री—(आसन पर बैठकर—अपने मन में] यहाँ तो—

३७—मुख को गण्डूस के पानी से शोधन (धो लेने पर) कर लेने पर भी निचला ओठ ताम्बूल के खाने से लाल बना हुआ है; स्नान के द्वारा लगाया हुआ चन्दन साफ हो जाने पर भी उस शरीर में से तीव्र सुगन्ध आ रही है; अच्छी प्रकार धुले वस्त्र के पहिने होने पर भी स्वर्ण के आभूषणों से वस्त्र पीला दीख रहा है; ऐसा यह महाराज अति प्रभाव वाला होने पर भी सदाचार में कभी आलस्य नहीं करता ।

राजा—(सोत्कण्ठम् ।) कथमिव ।

देवी—अहं वि अवहिदह्मि । [अहमप्यवहितास्मि ।]

मंत्री—(स्वगतम् ।) इयं हि देवी ।

किमपि नियमिताग्रैः कुन्तलैः स्निग्धनीलैः
परिलसदपराङ्गा धारयन्ती दुकूलम् ।
धवलमुपरि भर्तुश्चामरं धूयमानं
विरमयति करेण व्यक्तमाकर्णनाय ॥ ३८ ॥

(प्रकाशम् ।) श्रोतव्यमिदं धारणावचनम् । यदमहतकः पुरान्निष्क्रामण-मेवास्माकमिच्छतीति ।

राजा—किमत्र प्रतिविधातव्यम् ।

देवी—(सोद्वेगम् ।) दाणिं किं कुम्मो । [इदानीं किं कुर्मः ।]

मंत्री—देवि, मा भैषीः । प्रतिविधानप्रकारोऽपि धारणया विदितः ।

[स्पष्ट रूप में] महाराज के द्वारा भेजी हुई धारणा के मुख से वहाँ का सम्पूर्ण वृत्तान्त मैंने जान लिया है । वह स्वयं दुर्जन के संसर्ग से उत्पन्न दोष का परिहार करने के लिये नदी में स्नान करने गई है । वहाँ का वृत्तान्त उसने मुझे पहुँचा दिया है ।

राजा—[उत्कण्ठा के साथ] किस प्रकार ।

देवी—मैं भी सुनने के लिये सावधान हूँ ।

मंत्री—(अपने आप ही) यह राजमहिषी—

३८—कुछ ढीले रूप में बांधे हुए स्निग्ध एवं काले बालों से शोभित होती हुई; पीठ पर रेशमी वस्त्र को धारण करती हुई; मुझसे कही बात स्पष्ट सुनने के लिये पति के ऊपर हिलते हुए चंवर को हाथ से रोक रही है ।

वक्तव्य—स्नान करने के पीछे स्त्रियाँ सिर के बालों को सामान्य रूप में बांध लेती हैं, और ग्रीवा के उपर एवंपीठ पर तौलिया या वस्त्र डाल लेती हैं; पीछे से इस पर बालों को शुष्क करती हैं—यह वर्णन है ।

राजा—कथमिव ।

मंत्री—(कर्णे) एवमेवम् ।

राजा—कथमिदं धारणाया निर्धारितम् ।

मंत्री—रसगन्धकप्रयोगमन्तरेण सपरिवारोऽहमजय इति यक्ष्मराजस्य हृदयं विश्वसनीयया तापसीवेषया धारणया गृहीतम् ।

देवी—(साश्वासम् ।) जइ एव्वं ता कहं अह्मेहिं रसगन्धआ संपादणिज्जेत्ति । [यद्येवं तत्कथमस्माकं रसगन्धकौ संपादनीयौ इति ।]

राजा—

शंभोर्वीर्यं रसो नाम शर्वाण्या नाम गन्धकः ।
ताभ्यामेव प्रसन्नाभ्यां तौ ग्राह्याविति मे मतिः ॥ ३६ ॥

[स्पष्ट रूप में]—धारणा का यह वचन सुनना चाहिए । दुष्ट यक्ष्मा हमको पुर से निकालना चाहता है ।

राजा—इसमें क्या करना चाहिए ।

देवी—[बेचैनी के साथ] अब क्या करें ।

मंत्री—हे देवी ! मत डरो; इसके प्रतिकार का उपाय भी धारणा को ज्ञात है ।

राजा—किस प्रकार ।

मंत्री—[कान में कहता है] इस प्रकार ।

राजा—धारणा ने किस प्रकार यह उपाय निश्चित किया है ।

मंत्री—रस (पारद) और गन्धक के प्रयोग के बिना मैं अजेय हूँ; यह बात तापसी वेश वाली धारणा ने यक्ष्मा राजा के हृदय में विश्वास उत्पन्न करके जान ली है ।

देवी—[शान्ति के साथ] यदि इस प्रकार है, तो हमको किस प्रकार से पारद और गन्धक प्राप्त करने चाहिएँ ।

३६ राजा—पारद महादेव का वीर्य है (सातवां धातु है); गन्धक पार्वती का रज है; इसलिये शिव और पार्वती की प्रसन्नता से पारद और

देवी—केण उण उवाएण ताणं पसादो संपादणिज्जो। [केन पुनरुपायेन तयोः प्रसादः संपादनीयः।]

मंत्री—उपासनयैव।

राजा—युक्तमुक्तं भवता। श्रूयते हि पुरा मृकण्डुरुमापतिमुपास्य-पुत्रं लेभे। तत्पुत्रोऽपि तदुपासनया मृत्युमुखान्मुक्तो दीर्घमायुरलभतेति।

मंत्री—सम्यगवगतं महाराजेन। यतः खल्वेषः—

पादाघातत्रुटितयमुनाभ्रातृवाह्वन्तरोद्य-
द्रक्तस्रोतःसमुपशमिताशेषशोकाश्रयाशम्।

गन्धक प्राप्त हो सकते हैं; यह मेरी बुद्धि है।*

देवी—किस उपाय से शिव और पार्वती को प्रसन्न करना चाहिए।

मंत्री—उपासना से ही।

राजा—आपने ठीक कहा है; क्योंकि सुना जाता है कि प्राचीन समय में भृगु के पुत्र मृकण्डु ने शिव की उपासना करके पुत्र प्राप्त किया था। इस मृकण्डु के पुत्र ने भी उसी शिव की उपासना द्वारा मृत्यु के मुख से मुक्त होकर दीर्घायु प्राप्त की थी।†

मंत्री—महाराज ने ठीक जाना है। क्योंकि ये महादेवजी—

४०—जिन्होंने पैर के आघात से यमुना के भाई यम के वक्षःस्थल को

---

* रसरत्नसमुच्चय में—

मूर्च्छयित्वा हरति रुजं बन्धनमनूभूय मुक्तिदो भवति।
अमरी करोति हि मृतः कोऽन्यः करुणाकरः सूतात्॥
तस्माज्जीवन्मुक्तिं समीहमानेन योगिना प्रथमम्।
दिव्या तनुर्विधेया हरगौरी सृष्टि संयोगात्॥

† पुराकल्पे मुनिश्रेष्ठो मकण्डुर्नाम विश्रुतः।
भृगो पुत्रो महाभागः सभार्यास्तप्तवांस्तपः॥
तस्य पुत्रस्तदा जातः शिवस्यानुग्रहाद्वने॥
नारसिंह पुराण में मार्कण्डेय मृत्युञ्जय अध्याय में यह कथानक वर्णित है।

मार्कण्डेयं व्यतनुत यदा सर्वभूतैस्तदादि-
स्तुत्यं मृत्युंजय इति यशः स्फारमीशः प्रपेदे ॥४०।

राजा—पुरा खलु देवदानवैरमृतार्थिभिर्महोरगयोक्त्रपरिवेष्टितविकृष्य-माणमन्दरमन्थानदण्डैर्मथ्यमाने दुग्धसागरे गरलमुद्भटमुत्थितमसहमानेषु भुवनेषु विनष्टप्रायेषु पलायनाभिमुखे चतुर्मुखे विगलितौजसि विडौजसि भगवानेवैष विषमश्नन् जगदनुचकम्पे । तथाहि ।

मेघाक्रान्तदिगन्तदर्शरजनीमूर्च्छत्तमोमेचकं
तापद्रावितदेवदानवनरं यः कालकूटं गरम् ।
जग्ध्वा जम्बिवव बालकस्त्रिभुवनत्राणं ततानाञ्जसा
तस्य द्राङ्महिमा न वाङ्मनसयोः पन्थानमारोहति ।४१॥

मंत्री—किमुच्यते महिमेति । श्रूयतां तावत् । त्रिपुरविजयप्रस-

तोड़ दिया था, उस वक्षःस्थल से निकलने वाले रक्त के स्रोत से मृकण्डु मुनि के पुत्र-मार्कण्डेय की सम्पूर्ण शोकाग्नि को जब शान्त कर दिया था; तब से लेकर सब लोकों में मृत्युंजय—जितमृत्यु ऐसा स्तुति योग्य महान यश प्राप्त किया ।

राजा--पहिले कभी अमृत के चाह वाले देवता और राक्षसों द्वारा वासुकी-शेषनाग को मथानी की रस्सी—नैति के रूप में लपेटकर मथानी के दण्डे रूप मन्दराचल द्वारा क्षीर सागर के मथने पर भयानक विष उत्पन्न हुआ; इस विष को सहन न करने के कारण भुवनों के प्रायः नष्ट होने पर तथा ब्रह्मा के भाग जाने की तैयारी करने पर और इन्द्र की शक्ति नष्ट हो जाने पर इसी शिव ने विष को खाकर संसार पर दया की थी । और भी—

४१—मेघों से आक्रान्त दिशाओं वाली अमावास्या की रात्रि में बढ़ता हुआ जो काला अन्धकार है उसके समान काला तथा जिसकी गरमी से देव, दानव और मनुष्य भाग गये हैं; ऐसे अति भयानक कालकूट विष को; बालक जैसे जामुन को खाता है; ऐसे जल्दी से खाकर तीनों लोकों की

क्तावसक्त इव स्वयं तदर्थं कतिचित्साधनानि संपाद्य तान्यपि त्रितथीकृत्य स भगवान्निजमेव महिमानमभिव्यक्तवान् । तथाहि ।

सूर्याचन्द्रमसौ रथाङ्गयुगलं सूतो विधाता स्वयं
रथ्याश्वा निगमाश्च यस्य रथमारूढेन भूमीमयम् ।
मेरुं धन्वविषक्तवासुकिगुणं कृत्वा शरं चाच्युतं
तिस्रस्तेन पुरः स्मितेन तु परं दग्धाः सुरद्वेषिणाम् ॥४२॥

राजा—एवमपरिमितान्याश्चर्यचरितानि देवस्य ।

देवी—किं अचरिअं । महेसरस्स जह जह जारिसो उपासनं

जिसने रक्षा की थी; उस महादेवजी की महिमा जल्दी से वाणी और मन द्वारा स्पष्ट नहीं होती ।

मंत्री—महिमा का क्या कहना । और भी आप सुनें । तीनों लोकों की विजय में लगे हुए भी स्वयं आसक्ति रहित की भाँति; जय के लिये रथ अश्व आदि साधनों को तैयार करके भी इन साधनों को व्यर्थ करते हुए उस भगवान ने अपनी महिमा को दिखाया था । जैसे कि

४२—जिस परमेश्वर के रथ के पहिये सूर्य और चन्द्रमा हैं, ब्रह्मा स्वयं सारथि हैं, चारों वेद जिसके घोड़े हैं, यह पृथ्वी जिसका स्वयं रथ है, मेरु धनुष है, जिस धनुष में वासुकी की प्रत्यञ्चा-डोरी लगी है और कृष्ण स्वयं जिसमें बाण बने हुए हैं, ऐसे परमेश्वर ने असुरों के तीनों पुर हंसते हुए ही जला दिये ।

वक्तव्य—**ऐसी कथा है कि कमलाक्ष-विद्युन्मालि और तारकाक्ष इन तीन परम मायावी राक्षसों को इनके तीनों नगरों के साथ हँसते हुए महादेवजी ने नाश कर दिया था । भागवत के दशम स्कन्ध में त्रिपुर दहन की कथा अन्य प्रकार से है ।**❀

राजा—इस प्रकार से महादेवजी के अगणनीय आश्चर्यकारक चरित हैं ।

देवी—इसमें आश्चर्य ही क्या है ? महेश्वर की जो जैसी जैसी

करेदि तह तह तारिसं सो तं तं फलं पावेदि । [किमाश्चर्यम् । महेश्वरस्य यथा यथा यादृश उपासनं करोति तथा तथा तादृशं फलं प्राप्नोति ।]

मंत्री—एवमेतत् ।

राजा—एवमनिर्धारणीयनानास्वरूपा भगवती परमेश्वरी । परंतु भगवतो दयारूपैवेयम् । अत एव लोकरक्षणार्था प्रवृत्तिरेतस्याः । श्रूयतां तावत् ।

भक्तिप्रह्वमहेन्द्रमुख्यमखभुक्प्रारब्धभूरिस्तव-
प्रादुर्भावितनिर्भरप्रमदया कारुण्यभाजा यया ।
निद्राभङ्गमवापितेन हरिणा दीप्तौजसा घातया-
मासाते मधुकैटभावतिबलौ सा केन वा वर्ण्यते ॥४३॥

मंत्री—राजन्, तथ्यमेवाह भवान् । अस्याः किल भक्तवात्सल्यमनन्यतुल्यं पश्यामि ।

स्तुति करता है, वह वैसा वैसा ही फल प्राप्त करता है ।

मंत्री—ऐसा ही है—

राजा—यह परमेवश्वरी भगवती-महिमा अनिर्वचनीय नाना स्वरूप वाली है । परन्तु भगवान शिव तो दया रूप ही हैं । इसीलिये लोक की रक्षा के लिये ही इनकी प्रवृत्ति है । और भी सुनिये—

४३—भक्ति के कारण सिर झुकाये हुए इन्द्रादि देवताओं द्वारा की जाने वाली अतिशय स्तुति से उत्पन्न जो न रुकने वाला प्रमोद, उससे उत्पन्न दया (देवताओं की दुःखी अवस्था देखकर जो दया उत्पन्न हुई) के कारण योग निद्रा में वाधा आने से अति तेजस्वी विष्णु भगवान ने अतिशय बलवान मधु और कैटभ को जिस परमेश्वरी शक्ति से मारा था, उस परमेश्वरी का कौन वर्णन कर सकता है ।

वक्तव्य—**महाप्रलयकाल में संसार के महासलिल में डूब जाने पर विष्णु भगवान शेषनाग की शय्या पर योगनिद्रा में पड़े थे । तब विष्णु भगवान के नाभि कमल से सृष्टि बनाने के लिये ब्रह्मा उत्पन्न हुए ।**

दूरोद्धूतविषाणकोटिघटनाचूर्णीकृताम्भोधरं
प्रेङ्खत्यादचतुष्टयीखुरपुटप्रक्षुण्णपृथ्वीतलम् ।
कल्पान्ताभ्रकठोरकण्ठनिनदत्रस्तत्रिलोकीजनं
विक्रान्तं महिषासुरं युधि पुरा चिच्छेद शूलेन या ॥४४॥

देवी—सा क्खु परमेसरी बहुविधदेवआसत्तिरूआवअवा पअण्ड-परक्कमखण्डिअचण्डमुण्डधुम्मलोअणरत्तबीजप्पहुदिदाणवमण्डला सुणीअदि चण्डिआणामधेएत्ति । [सा खलु परमेश्वरी बहुविधदेवताशक्तिरूपावयवा

इसी बीच में भगवान विष्णु के कर्ण के मैल से मधु और कैटभ दो भयानक राक्षस उत्पन्न हुए। ये दोनों तुरन्त ब्रह्मा को मारने के लिये तैयार हुए। ब्रह्मा ने अति चकित होकर स्तुति करके विष्णु को जगाया। विष्णु भगवान ने इनको जंघा पर गिरा कर मार दिया था।

मंत्री—राजन ! आपने ठीक ही कहा है। इसकी भक्ति प्रेम की तुलना किसी से भी नहीं की जा सकती।

४४—दूर से ही हिलाते हुए शृंगों के अग्र भाग के टकराने से बादलों के भी जिसने टुकड़े टुकड़े कर दिये, अतिशय चलाते हुए चारों पैरों की खुरीयों से पृथ्वी तल को जिसने चूर चूर कर दिया, जिसके प्रलय कालीन मेघ के समान कठोर गले के शब्द को सुनकर तीनों लोक के मनुष्य डर गये, ऐसे अतिशय पराक्रमी महिषासुर को जिसने शूल से टुकड़े टुकड़े किया था।

वक्तव्य—पहिले रम्भासुर नाम के राक्षस ने पुत्र प्राप्ति के लिए बहुत तप करके परमेश्वर को प्रसन्न किया था। उन्होंने वर दिया, इस असुर की पत्नी के पेट से महिषासुर उत्पन्न हुआ था। जब इसने सब लोकों को पीड़ित किया तब कात्यायन ऋषि ने शाप दिया था कि तुम्हारी मृत्यु स्त्री के हाथ से होगी। सज्जनों की रक्षाकरने वाली परमेश्वरी कालिका देवी ने असुर को शूल से मारा था।

देवी—अनेक देवताओं की शक्ति रूप अवयवों वाली, प्रचण्ड

प्रचण्डपराक्रमखण्डितचण्डमुण्डधूम्रलोचनरक्तबीजप्रभृतिदानवमण्डला श्रूयते चण्डिकानामधेयेति ।]

राजा—तदपि ज्ञायते । यथा खलु ।

शस्त्रच्छिन्नसुरारिसैन्यपिशितग्रासग्रहप्रीतिम-
स्त्कङ्कोष्ट्रि संगरे सुरवधूमुक्तप्रसूने स्थितम् ।
देव्या शुम्भनिशुम्भदानववधप्रक्लिन्नचित्तस्तुव-
द्रुद्रेन्द्राग्निकृतान्तनैर्ऋतजलाधीशानिलश्रीदया ॥४५॥

मंत्री—राजन्, एवं भक्तवत्सलयोरनादिदंपत्योरुपासनया संपादनीया सिद्धिः । किं च ।

पराक्रम से जिसने चण्ड, मुण्ड, धूम्रलोचन, रक्तबीज आदि राक्षस समूह को नष्ट कर दिया है, वही परमेश्वरी देवी चण्डिका नाम से कही जाती है ।

राजा—यह भी ज्ञात है कि—

४५—शस्त्रों से कटी हुई राक्षस सेना के मांस के खाने में प्रसन्न कंक (गीध) और शृगालों को देखकर जिस युद्ध में देवताओं की स्त्रियों ने फूल बिखेरे थे, देवी द्वारा शुम्भ और निशुम्भ राक्षसों के वध के कारण प्रसन्न हुए रुद्र, इन्द्र, अग्नि, यम, वरुण, नैऋत, वायु और कुबेर ने जिसकी स्तुति की थी ।

वक्तव्य—शुम्भ और निशुम्भ ये दोनों राक्षस हिरण्यकशिपु के वंश में उत्पन्न प्रह्लाद के प्रपौत्र थे, ये अतिशय बल से गर्वित थे । पुष्कराख्य पुण्य देश में देर तक महान तप करके ब्रह्मा की कृपा से सब देवताओं से अधिक बल को प्राप्त करके देवताओं को तथा दूसरों को कष्ट देने लगे । तब इस अवस्था को देखकर दुर्गा ने स्वयं शूल से इन दोनों को मारा था ।

मंत्री—राजन् ! इस प्रकार के भक्तों से प्रेम करने वाले अनादि दम्पति की उपासना द्वारा सफलता प्राप्त करनी चाहिये । और भी—

सामर्थ्यसिद्ध्यै रसगन्धकानां संयोजनार्थं सकलौषधीश्च ।
संपादयामोऽथ तदाश्रितस्य सर्वौषधीशस्य विधोः प्रसादात्॥४६॥

देवी—कदमं उण देसं पविसिअ उवासणिज्जा एदे । [कतमं पुनर्देशं प्रविश्योपासनीयावेतौ ।]

मंत्री—पुण्डरीकपुरं प्रविश्य ।

देवी—कहं तत्थ पवेसो । [कथं तत्र प्रवेशः ।]

मंत्री—देवि,

शक्यं तत्खलु पुण्डरीकनगरं गन्तुं मनोद्वारत-
स्तत्रास्ते शिवभक्तिरित्यनुपमा कापि प्रमोदास्पदम्।
दृष्ट्वा तां प्रथमं तथा परिचयस्तस्या विधेयस्त्वया
चत्वारोऽपि भवन्ति ते करतलं प्राप्ताः पुमर्था यथा।।४७॥

४६— रस और गन्धक में शक्ति की सिद्धि के लिये इनको परस्पर मिलाने के लिए; शिव के आश्रित, सब औषधियों के स्वामी चन्द्रमा की अनुकम्पा से सम्पूर्ण औषधियों को प्रयत्न पूर्वक प्राप्त करेंगे ।

वक्तव्य—रस से–रसेन्द्र, सूत, पारद, मिश्रक और रस यह पाँच प्रकार का पारद, या अभ्रक वैक्रान्त आदि आठ महारस लेने चाहियें । चन्द्रमा औषधियों का स्वामी है, यह उल्लेख गीता में भी है ; यथा— "पुष्णामि चौषधिः सर्वाः सोमोभूत्वा रसात्मकः" १५।१३—औषधि का लक्षण—"ओषो नाम रसः सोऽस्यां धीयते यत्तदोषधिः । ओसादारोग्यमाधत्ते तस्मादोषधिरोषधः ।।" काश्यप संहिता भेषज्योपक्रमणीय ३।३७ ।

देवी—कौन से देश में प्रवेश करके इनकी उपासना करनी चाहिए।

मंत्री—पुण्डरीकपुर में प्रविष्ट होकर ।

देवी—वहाँ प्रवेश किस प्रकार होगा ?

मंत्री—हे देवि !

४७—उस पुण्डरीक नगर में मन के द्वार से जाना शक्य है; वहाँ पुण्डरीकपुर में (हृदय में) जिसकी उपमा नहीं हो सकती ऐसी कोई

राजा—(सोत्कण्ठम् ।)

तामद्वैतां स्वरूपेण भक्तिं हृदयरञ्जिनीम् ।
स्वीकृत्याहं भविष्यामि प्राप्ताखिलमनोरथः ॥ ४८ ॥

अनिर्वचनीय अनुपम अतिशय आनन्ददायक शिवभक्ति है । उसको प्रथम देखकर उसके साथ तुमको ऐसा परिचय करना चाहिये, जिससे कि धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ये चारों पुरुषार्थ—आपके हाथ में आ जायें ।

वक्तव्य--पुण्डरीकपुर---उपनिषदों में हृदय के अन्दर रहने वाले आकाश को पुण्डरीकपुर कहा है । क्योंकि हृदय का आकार कमल की मुकुल (डोडी) से सम्पूर्णतः मिलता है; कमल की डोडी को यदि उल्टा कर दिया जाये जिससे इसका शिरो भाग नीचे आ जाये, तो यह हृदय का एपैक्स हो जाता है, इसी से सुश्रुत में कहा है "हृदयं चेतना स्थानमुक्तं सुश्रुत देहिनाम्" "पुण्डरीकेन सदृशं हृदयं स्यादधो मुखम्" । छान्दोग्योपनिषद में--दहर की उपासना का वर्णन है" अथयदिदमस्मिन् ब्रह्मपुरे दहरं पुण्डरीकं वेश्म दहरोऽस्मिन् अन्तर माकाशस्तस्मिन् यदन्तस्तदन्वेष्टव्यं तद्वावविजिज्ञासितव्यम् ।। छान्दोग्य ८।१। तैत्तरीयोपनिषद् में ऐसा ही उल्लेख है—"देह विपाप्मं परवेश्म भूतं हृत्पुण्डरीकं पुरमध्यसंस्थम् । तत्रापि देहं गगनं विशोक-स्तस्मिन् यदन्तः तदुपासितव्यम् ॥

मनोद्वार--मन अतीन्द्रिय होने से सर्वत्रगामी है; जैसा चरक में कहा है—अतीन्द्रियं पुनर्मनः सत्त्वसंज्ञकं चेत इत्याहुरेके; तदर्थात्म-संपदायत्तचेष्टं चेष्टाप्रत्ययभूतमिन्द्रियाणाम् ॥ २—मनः पुरःसराणि चेन्द्रियाण्यर्थग्रहणसमर्थानि भवन्ति ॥ चरक ८।४ ७ ।

राजा--[उत्कण्ठा से]

४८—उस महिमाशाली, अनुपम, स्वभाव से ही मन को प्रसन्न करने वाली भक्ति को अपने अधीन करके मैं सब मनोरथों-पुरुषार्थों को सम्पूर्ण कर लूँगा—मेरे सब मनोरथ इससे पूर्ण हो जायेंगे ।

देवी—(सासूयमिव स्वगतम् ।) कहं सव्वपुरुसत्थप्पसवित्तिआ सेत्ति सुणिअ सुदघणाघणगज्जिदो मोरो व्विअ उक्कण्ठिदो अज्जउत्तो। होदु। ता मए वि सह गन्तव्वम् । (प्रकाशम् ।) अज्जउत्त, अहं वि आगमिस्सम् । [कथं सर्वपुरुषार्थप्रसवित्रिका सेति श्रुत्वा श्रुतघनाघनगर्जितो मयूर इवोत्कण्ठित आर्यपुत्रः। भवतु। तन्मयापि सह गन्तव्यम्। आर्यपुत्र, अहमप्यागमिष्यामि ।

राजा—(स्वगतम् ।) कथमनयाप्यागन्तव्यम् । (विचिन्त्य ।) भवतु । (प्रकाशम् ।) अयि भद्रे, भक्तिपराधीनं साम्बमुपास्यावामभिलषितमर्थं साधयावः । (मन्त्रिणं प्रति ।)

राज्यं त्वयि समारोप्य योग्ये सर्वाङ्गसंहितम् ।
देव्या सह शिवं साम्बमुपास्तुं यामि तत्पुरम् ॥ ४९ ॥

देवी - [ईर्षा की भाँति अपने आप ही *]--वह सब पुरुषार्थों को पूर्ण करने वाली है, ऐसा सुनकर, वर्षोन्मुख मेघ की गर्जना को सुनकर जिस प्रकार मोर उत्कण्ठित होता है; वैसे आर्य पुत्र भी उत्कण्ठित हो गये। अच्छा ऐसा ही सही। तो मुझे भी साथ में जाना चाहिए। [स्पष्ट रूप में] आर्य पुत्र ! मैं भी आऊँगी।

राजा—(अपने आपही) क्या इसको भी आना चाहिए, (सोचकर) अच्छा सही (स्पष्ट रूप में) अयि भद्रे ! भक्ति के वश में जो पार्वती सहित शिव हैं, उनकी हम दोनों उपसना करेंगे, इच्छित अभिप्राय को पूर्ण करेंगे। (मंत्री के प्रति)

४९---सम्पूर्ण राज्यांगों के साथ यह राज्य तुझ योग्य मंत्री को सौंपकर, धर्मपत्नि के साथ उमा सहित शिव की उपासना के लिये पूर्वोक्त पुण्डरीकपुर जाता हूं।

---

* नायक को अन्य युवती में आसक्त समझ कर ईर्षा के साथ राजमहिषी यह कहती है। प्रबोध चन्द्रोदय में भी ऐसा उल्लेख है ; प्रिये ! सेर्ष्यं प्रायेण योषितां भवति हृदयम् ॥ २—मानिन्याश्चिरविप्रयोगजनितासूया कुलायाभवेच्छान्त्यादेरनुकूलदुपनिषद्देव्या ममसंगमः ।

मंत्री—यथा रोचते देवस्य ।

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे ।)

इति प्रथमोऽङ्कः ।

वक्तव्य—राज्य के अंग सात हैं, यथा—

"स्वाम्यमात्याश्च राष्ट्रं च दुर्गं कोशो बलं सुहृत् ।

परस्परोपकारीदं सप्ताङ्गं राज्यमुच्यते ।।

मंत्री—आप देव को जैसा अनुकूल लगे ।

[यह कहकर सब चले गये]

प्रथम अङ्क समाप्त हुआ ।*

---

* अंक का लक्षण—प्रत्यक्ष नेतृचरितो बीज विन्दु समन्वितः ।
अंको नाना प्रकारार्थ संविधानरसाश्रयः ॥
एकाहे वैकरात्रे वा चरित्रं यत्र वर्ण्यते ।
प्रयुक्तैः पञ्चषैः पात्रैः तेषामन्ते विनिर्गमः ॥

† प्रथम अंक में मुख सन्धि का निरूपण करके इस अंक में प्रतिमुख सन्धि का निरूपण करने के लिये प्रवेशक नामक सन्ध्यन्तराल का प्रतिपादन किया है । विन्दु और प्रयत्न की सन्धि का नाम प्रतिमुख सन्धि है । विन्दु का लक्षण—अवान्तरार्थ विच्छेदे विन्दुरच्छेद कारणम् ।" प्रयत्न कालक्षण—प्रयत्नस्तु तदप्राप्तौ व्यापारोऽति-त्वरान्वितः ॥ प्रतिमुख सन्धिका लक्षण—लक्ष्यालक्ष्यतयोद्भेदस्तस्य प्रतिमुखं भवेत् ।

द्वितीयोऽङ्कः

(ततः प्रविशति चेटः कासः ।)

कासः—अहं खलु स्वमन्त्रिहतकोपदिष्टं किमपि रहस्यं श्रुत्वा जीवो नाम प्रतिराजः स्वस्मिन् किमपि चेष्टितुमन्तर्मुखस्तिष्ठतीति चारमुखादवगतवता सम्भ्रान्तेन महाराजेन यक्ष्मणा किमय वृत्तान्तः श्रुतस्त्वया न वेति युवराजं पाण्डुं पृष्ट्वागच्छेति प्रेषितोऽस्मि । अतस्त्वरन्वितो युवराजसमीपं गच्छामि । अहो महाराजस्य युवराजे महती प्रीतिः । यतः ।

यद्यज्ज्ञातं स्वयं तत्तद्युवराजोऽपि वेत्ति चेत ।
तदा राज्याधिकारेऽस्य शक्तिः स्यादिति मन्यते ॥ १ ॥

(पार्श्वतो विलोक्य) कथमियं छर्दिः । यैषा

द्वितीय अंक

[इसके पीछे भृत्य कास आता है]

कास—अपने दुष्ट मंत्री विज्ञानशर्मा से कहे हुए किसी रहस्य को सुनकर हमारे राजा का विरोधि जीव नाम का राजा हमारे यक्ष्मा राजा में कुछ करने के लिये अन्तर्मुख [वाह्य विषयों से निवृत्त होकर] होकर [पुण्डरीकपुर में] बैठा है, ऐसा समाचार गुप्तचरों के मुख से सुनकर भयभीत हुए महाराज यक्ष्मा ने, क्या यह वृत्तान्त तुमने सुना है या नहीं; यह युवराज पाण्डु से पूछकर वापिस आने के लिये मुझे भेजा है। इसलिये जल्दी से युवराज के समीप जा रहा हूँ। अहो महाराज की युवराज में बहुत प्रीति है। क्योंकि—

१—राजतंत्र सम्बन्धि जो जो रहस्य यक्ष्मा राजा स्वयं जानता है; वह सब रहस्य यह युवा राजा (युवराज) भी यदि जाने, तब इस युवराज की राज्यशासन में विशेष विचक्षणता होगी, ऐसा महाराजा मानते हैं।

प्रवालमृदुलाधरप्रकरचारुबिम्बप्रभा-
हृताहृतविलोचनाञ्जनविशेषदृश्यानना।
मयूरपदकस्फुरत्कठिनतुङ्गपीनस्तनी
तरङ्गयति कौतुकं तरुणिमश्रिया चेतसि ॥ २ ॥

वक्तव्य—कास का लक्षण—"प्राणो ह्युदानानुगतः प्रदुष्टः संभिन्न-कांस्यस्वन तुल्यघोषः। निरेतिवक्त्रात् सहसा स दोषो मनीषिभिः कास इति प्रदिष्टः ॥ सुश्रुत । कसनात्-कास-उच्यते--चरक। कस-गति शातनयो—इस धातु से कास शब्द बनता है। कास की उपेक्षा से यक्ष्मा रोग होता है; यह पाँच प्रकार का है यथा—"पञ्चकासाः स्मृताः श्लेष्मवातपित्तक्षतक्षयैः। क्षयायोपेक्षिताः सर्वैः ॥; २—पञ्चैते स्युर्नृणां कासः वर्धमानाः क्षयप्रदाः—चरक ।

यहाँ पर दूतकृत्य नामक उपसन्धि है; यथा—प्रश्नो दूतश्च लेख्यं च नेपथ्योक्त स्तथैव च । आकाशभाषाणं चेति विज्ञेयाः उपसन्धयः । प्रथम अंक के साथ इस अंक का सम्बन्ध इस दूत कृत्य सान्धि से जोड़ा है।

[चारों ओर देखकर] क्या यह छर्दि है; यह तो—

२—आम आदि के कोमल पल्लवों की भाँति कोमल ओष्ठ से फैलती हुई जो विम्बीफल के समान सुन्दर कान्ति, कुछ मिट गया और कुछ रह गया है अंजन जिन आँखों में ऐसी सुन्दर आँखों वाले मुख की; मयूर पद नामक नखाघात चिह्न से लक्षित एवं कठिन-उन्नत और पीनस्तनों वाली यह युवती मन में कुतुहल बढ़ा रही है।

वक्तव्य—मयूर पदक "तथावकेरकेली च नखाघाते च मण्डनम्। मयूरपदकं व्याघ्र नखक्रोत्पलपत्रके। मोर के पैर के समान चिह्न नखों के आघात से बनाना; यथा—अंगुष्ठजनखमथो विनिवेश्य कृष्टैः, सर्वांगुलीकररुहैरुपरिस्तनस्य । तच्चूचकाभिमुखमेत्य भवन्ति रेखाःतज्ज्ञामयूरपदकं तदुदाहरन्ति ॥" (२)--"पंचभिरपि नखैर्लेखा चूचुकाभिःमुखी मयूरपदकम्"—कामसूत्र,

(स्मरणमभिनीय ।)

श्लथजलधरजालश्लिष्टशीतांशुबिम्बा-
नभिनवमुकुराविर्भूतमुक्ताकदम्बान् ।
दरतरलितचक्रद्वन्द्वखेलन्मृणाला-
न्विवशहृदयमस्या विभ्रमानन्वभूवम् ॥ ३ ॥

(सभयम् ।) तदियं मामवलोकयति चेदिदानीं विभ्रममूल्यमनुपयुञ्जाना मां निरुन्धीत ततो गमनविघ्नः स्यात् । (इत्युत्तरीयपटेन मस्तकमवगुण्ठ-यन् कटिं बध्वा त्वरितं गच्छति)

(प्रविश्य ।)

छर्दिः—अए सठ, रत्तिम्मि मुत्ताफल परिपणीकदुअ पुरुसाइदं

[कुछ याद आ गया—ऐसा अभिनय करके]—

३—इधर-उधर बिखरे हुए पानी से भरे नील वर्ण के बादलों से अवरुद्ध चन्द्र बिम्ब के समान [छर्दि रमणी का चन्द्रानन चारों ओर काले बालों से घिरा है]; नये-साफ दर्पण में से निकलते हुए मोती के गुच्छों के भाँति [छर्दि रमणी के मुख पर आये हुए स्वेद बिन्दु एवं खेलते हुए चक्रवाक युगलों से थोड़े से हिलाये मृणाल-कमल बालों के समान [छर्दि रमणी के दोनों स्तनों पर लटकते हुए हार के थोड़ा हिलने से] इस छर्दि के क्रीडा बिलासों को विवश हृदय से मैंने अनुभव किया ।

[भय के साथ] यदि यह मुझे देख लेगी तो रतिविलास का उचित मूल्य पूछती हुई रास्ते में रोक लेगी । इससे जाने में विघ्न होगा । [इस प्रकार सोचकर उत्तरीय-दुपट्टे से शिर को छिपाकर और कटि में बाँधकर जल्दी से जाता है] *

---

* हैंडे हञ्जे हला हण्ने लीचां चेटीं सखीं प्रति—ये शब्द औरतों के सम्बोधन के लिए बरते जाते हैं ।

मए कारविश्र दाणिं मं पेक्खिअ ओगुण्ठितसीसो बद्धकटी कुदो पलाएसि । [अये शठ, रतौ मुक्ताफलं परिपणीकृत्य पुरुषायितं मया कारयित्वा इदानीं मां प्रेक्ष्यावगुण्ठितशीर्षो बद्धकटिः कुतः पलायसे ।] (इति कासं हस्ते गृह्णाति ।)

कासः—मुञ्च मुञ्च । (इति हस्तं धुनोति ।)

छर्दिः—(दृढं हस्तमवलम्ब्य ।) हदास, मह पडिण्णादं दाऊण गच्छेहि । [हताश, मम प्रतिज्ञातं दत्त्वा गच्छ ।]

कासः—हञ्जे, यावदागत्य दास्यामि ।

छर्दिः—कुदो आगमिअ । [कुत आगत्य ।]

वक्तव्य—छर्दि को स्त्री रूप में कवि ने उपस्थित किया है; कास के पीछे छर्दि-वमन होती है [यथा—हूपिंग कफ में] छर्दि का लक्षण—छादयन्नाननं वेगैरर्दयन्नङ्ग भञ्जनैः । निरुच्यते छर्दिरिति दोषो वक्त्रादिनिश्चरन् ॥ दोषानुदीरयन् वृद्धानुदानोव्यान संगतः । ऊर्ध्वमागच्छति भृशं विरुद्धाहार सेवनात् ॥ कास में प्राण-उदान से मिलता है; छर्दि में उदान व्यान से मिलता है । उदान का सम्बन्ध कास और छर्दि दोनों से है ।

[प्रविष्ट होकर]

छर्दि—अये शठ ! रति काल में मुक्ताफल देने का वचन देकर मुझसे पुरुषायित कर्म करवाकर अब मुझे देखकर शिर को ढाँपकर वस्त्र को कटि में बाँधकर कहाँ भाग रहा है ; इस प्रकार कह कर कासको हाथ से पकड़ती है ।

वक्तव्य—पुरुषायित से अभिप्राय विपरीत रति से है, यथा—अनुमता तेन तमधोऽवपात्य पुरुषायितेनसाहाय्यंदद्यात् ।"—कामसूत्र

कास—छोड़ छोड़ [हाथ छुटाता है] ।

छर्दि—[दृढ़ता से हाथ को पकड़कर] दुष्ट—मुझे कहा हुआ देकर जा ।

कासः—धिङ्मूर्खे, नायमवसरः। पश्चात्कथयिष्यामि।

छर्दिः—जइ दाणिं ण कहेसि अहं वि ण मुञ्चेमि। [यदिदानीं न कथयसि अहमपि न मुञ्चामि।]

कासः—तर्हि गृहाण मुक्ताफलस्य प्रतिनिधिमिमामूर्मिकाम्। (इत्यंगुलीयकं निमुच्य प्रयच्छति।)

छर्दिः—इदं होदु। कुदो आगमिअ त्ति कहेहि। [इदं भवतु। कुत आगत्येति कथय।]

कासः—किं मम वधमिच्छसि। यतः।

कार्यं राज्ञां मन्त्रिभिर्मन्त्रितं यत्सर्वेषां तत्सर्वथा गोपनीयम्।
येऽभिव्यञ्जन्त्येतदुद्यत्प्रमादाः शीर्षच्छेद्यांस्तन्वते तान्नरेन्द्राः॥४॥

छर्दिः—जइ तहवा होदु। एदं दाव कहेहि। [यथा तथा भवतु। इदं तावत्कथय।

कास—हँजे! लौटकर दूँगा, आकर दूँगा।

छर्दि—कहाँ से आकर।

कास—धिक्, मूर्ख यह समय नहीं है, पीछे कहूँगा।

छर्दि—यदि अभी नहीं कहते तो मैं भी नहीं छोड़ती।

कास—तो ले, मोती के बदले इस अंगूठी को [अँगुली से अँगूठी को निकालकर देता है]।

छर्दि—ऐसा ही सही, कहाँ से आकर, यह तो कह।

कास—क्या मेरी मृत्यु चाहती है। क्योंकि

४—मंत्रियों द्वारा एकान्त में विचारे हुए राजकीय गुप्त कर्म को सब प्रकार से सब लोगों को गुप्त रखना चाहिए। जो मनुष्य असावधानी के कारण से इस गुप्त राजकार्य को प्रगट कर देते हैं, उन पुरुषों के शिरों को राजालोक काट देते हैं।

छर्दि—चाहे जो हो, यह तो कह।

कासः—(स्वगतम् ।) अहो दास्याः स्नेहपरिपाकः यः परमनर्थाय संपद्यते । तथा हि ।

स्त्रियः स्वार्थपराः प्रायः परदुःखं न जानते ।
अप्रष्टव्यं यदप्राक्षीद्गृहिणी कैकयाधिपम् ॥ ५ ॥

(प्रकाशम् ।) राजकौलीनमेतदिति न कथयामि । मुञ्च । (इति त्वरयति ।)

छर्दिः—मा भयाहि तुमं । जं मंजूसा क्खु अहं राजकज्जाणं । अदो ण पआसेमि । [मा बिभेहि त्वम् । यन्मंजूषा खल्वहं राजकार्याणाम् । अतो न प्रकाशयामि ।]

कास—[अपने आप ही]—अहो ! इस दासी के प्रणय का अन्तिम फल तो बड़े भारी अनिष्ट के लिये हो रहा है ।

५—प्रायः करके स्त्रियाँ अपनी इच्छा की पूर्ति में ही रहती हैं, इसलिये दूसरे के दु.ख को नहीं जानती । इसी से कैकय राजा से उसकी पत्नी ने न पूछने योग्य बात को पूछा था ।

वक्तव्य—कैकेय देश के राजा को देवता की कृपा से यह वर प्राप्त था कि वह सब प्राणियों की वाणी को समझ सकता था । एक बार पलंग के ऊपर चलती हुई चिउंटियों की बातों को सुन कर राजा को हंसी आ गई । रानी ने इस हंसने का कारण पूछा, राजा ने सूचित भी कर दिया कि यदि मैं यह कारण तुमको बता दूंगा तो मेरी मृत्यु हो जायेगी । यह जान लेने पर भी रानी ने अपना हट बनाये रक्खा । अन्त में राजा ने हंसने का कारण रानी को कहा और कहने के साथ ही वह मर गया । इसी राजा की पुत्री दशरथ की पत्नी कैकेयी थी ।

[स्पष्ट रुप में]—राज घराने का काम है, इसलिये नहीं कहता, छोड़, छोड़ (जल्दी करता है) ।

छर्दि—तुम डरो नहीं, क्योंकि राजकार्यों की मैं सन्दूकची हूँ, इस लिये मैं नहीं प्रकट करूँगी ।

कासः—(विहस्य ।) छर्दिका किल त्वं प्रकृत्या । तत्कुतो न प्रकाशयसि ।

छर्दिः—(विहस्य ।) भसणसीलस्स कुक्कुरस्स विअ तुह जाआ अहम् । होदु । एदं कहेहि पत्थुदम् । [भषणशीलस्य कुक्कुरस्येव तव जायाहम् । भवतु । एतत्कथय प्रस्तुतम् ।]

कासः—(स्वगतम् ।) इयं राजकार्यकथननिर्बन्धान्न मुञ्चति माम् । का गतिः । (प्रकाशम् ।) हञ्जे, कथयामि । शृणु तावत् ।

छर्दिः—ओहिदम्हि । [अवहितास्मि ।]

कासः—मया कटकप्रवेशः कर्तव्यो युवराजस्य पाण्डोर्दर्शनाय ।

छर्दिः—ता किं विचारीअदि । अम्हकेरभडक्कन्ते सुगमो सत्तुणो पुरे मग्गो तुज्झणभम्मि सान्दणक्खत्ते इन्दुणो विअ । [तत्किं विचार्यते । अस्मदीयभटाक्रान्ते सुगमः शत्रोः पुरे मार्गस्तव नभसि सान्द्रनक्षत्रे (इन्दोरिव ।]

कासः—त्वं पुरोपरोधमात्रं जानासि । तत एवं ब्रवीमि ।

कास—तुम तो स्वभाव से ही छर्दि हो [अन्दर की वस्तु को बाहर निकालने वाली], फिर किस लिए प्रकट नहीं करोगी ।

छर्दि—(हंसकर) भौंकने वाले कुत्ते की भाँति तेरी मैं पत्नी हूँ, ऐसा ही सही, मतलब की बात कहो ।

कास—[अपने आप ही] राज कार्य के कहे बिना यह मुझे नहीं छोड़ती । क्या रास्ता (स्पष्ट रुप में) हंजे ! कहता हूं—सुनो ।

छर्दि—सावधान हूँ ।

कास—युवराज पांडु को देखने के लिये मुझे सेना की छावनी में प्रवेश करना है ।

छर्दि—फिर क्या सोचते हो, हमारे सैनिकों से व्याप्त शत्रुपुर में तुम्हारा मार्ग सरल है, जिस प्रकार कि तारों से भरे आकाश में चन्द्रमा का मार्ग सुगम होता है ।

कास—तू तो केवल पुर-नगर के घेरे मात्र को ही जानती है, इसी

छर्दिः—किं अएणं वि तत्थ कडए पउत्तं जं मए ण जाणीआदि ।
[किमन्यदपि तत्र कटके प्रवृत्तं यन्मया न ज्ञायते ।]

कासः—श्रूयताम् —

अस्मत्सैन्यैर्निरोधं कृतमगणयता स्वे पुरे सूपदिष्टं
जीवोऽमात्येन योगं स किल निशमयन्प्रापदन्तर्मुखत्वम् ।
इत्यस्माकं निशम्य प्रभुरतिविशदं चारवक्त्रात्कुमारं
गत्वा पृच्छ त्वयेदं विदितमथ न वेत्याकुलः प्राहिणोन्माम् ॥६॥

छर्दिः—जुवराएण पण्डुणा विइदं ण वेत्ति णत्थि संदेहो । जेण एदं एव्व सुणिअ सअलसामन्तचक्केण सह सिद्धसेणिओ रहस्सागारे णिद्दाभङ्गकसाइदलोअणो चिन्तापज्जाउलो जुवराओ चिट्ठदि । तुए वि तत्थ गच्छीअदु । णाह, पञ्च वि तुह वअस्सा सासा सेवातप्परा तह

से ऐसा कहती है ।

छर्दि—क्या कुछ और भी उस सेना में हो गया है, जो कि मुझे ज्ञात नहीं ।

कास—सुनो ।

६—हमारे सैनिकों के आक्रमण की परवाह न करके विज्ञान शर्मा मंत्री द्वारा भली प्रकार बताये योग को (मनो नियोग को एवं शत्रु को निकालने के उपाय को) सुनकर वह जीव राजा अपने पुर में (नगर में एवं पुंडरीकपुर में) अन्तर्मुख (वाह्य विषयों से निवृत्ति एवं अन्दर की ओर) हो गया है । यह बात हमारे प्रभु-राजयक्ष्मा ने गुप्तचरों के मुख से स्पष्ट रुप में सुनकर, कुमार ने भी यह समाचार जाना है या नहीं, यह जाकर तुम पूछो, (यह जानने के लिये) व्याकुल मन से मुझे पांडु के पास भेजा है ।

छर्दि—युवराज पाण्डु ने जाना है या नहीं, इसमें सन्देह नहीं (उसने जाना ही है), जिससे कि ऐसा सुनाकर अपने अधीन सब राजाओं के साथ तैय्यार की हुई सेना के साथ एकान्त घर में चिन्ता से

ज्जेव्व वट्टन्दि । [युवराजेन पाण्डुना विदितं न वेति नास्ति संदेहः । येनैतदेव श्रुत्वा सकलसामन्तचक्रेण सह सिद्धसैनिको रहस्यागारे निद्राभङ्गकषायितलोचनश्चिन्तापर्याकुलो युवराजस्तिष्ठति । त्वयापि तत्र गम्यताम् । नाथ, पञ्चापि तव वयस्याः श्वासा सेवातत्परास्तत्रैव वर्तन्ते ।

कासः—कथमिदं ज्ञातं त्वया ।

छर्दिः—तुह पुव्वगिहिणीए कण्ठकण्डूए परिदेवणमुहेण देइए विसूचीए संणिहाणे सव्वं राजकज्जं णिवेदिदम् । तहिं संणिहिदथम्भन्तरिदाए मए सुदम् । [तव पूर्वगृहिण्याः कण्ठकण्डूत्याः परिदेवनमुखेन देव्या विषूचिकायाः संनिधाने सर्वं राजकार्यं निवेदितम् । तत्र संनिहितस्तम्भान्तरितया मया श्रुतम् ।]

कासः—कुतः कीदृशं च परिदेवनं तस्याः ।

व्याकुल हुआ एवं निद्रा के टूटने से अलसाईं आँखों वाला युवराज बैठा है । हे स्वामिन् ! तुम्हारे मित्र पाँच श्वास भी वहीं पर सेवा में तत्पर हैं, तुमको भी वहाँ पर जाना चाहिए ।

वक्तव्य—कास भी पाँच हैं, और श्वास भी पाँच हैं, यथा—पञ्च कासाःस्मृताः वात पित्त श्लेष्मक्षतक्षयैः ॥ महोर्ध्वछिन्नतमकक्षुद्रभेदैस्तु-पञ्चधा व्याधिः श्वास एकोविशेषतः ॥ कास और श्वास में आपस में मित्रता "कासाच्छ्वासक्षयछर्दिस्वरसादादयोगदाः । भवन्त्युपेक्षया यस्मात्तस्मा त्तं त्वरया जयेत् ॥ २—यदाऽग्निरिद्धः पवनानुविद्धो वज्रं यथा वा सुरराज मुक्तम् । रोगास्तथैते खलु दुर्निवाराः श्वासश्च कासश्च विलम्बिका च ॥ सुश्रुत । उक्ता ये हेतवो नृणां रोगयोः श्वासहिक्कयोः । कासस्यापि च विज्ञेयाः त एवोत्पत्तिहेतवः ॥

कास—यह तुमने कैसे जाना ।

छर्दि—तेरी पहिली पत्नी कंठकंडूति ने रोते हुए अपने दीन मुख से विसूचि राजमहीषि के पास सब राजकार्य कह दिया है । वहाँ पर थम्बे के पीछे छिपी हुई मैंने सब यह सुन लिया था ।

कास—उसका रोना, दुःख करना कैसा और क्यों है ।

छर्दिः—जं तुए मं कामअन्तेण पुव्वगिहिणीए ताए पणअभङ्गो किदो तेण कादव्वं परिदेवणं क्खु ताए। तह क्खु कण्ठकण्डू देवीए कहिदवदी जं किल भट्टिणि, एदं मह दुज्जादं पांडुगिहिणीए णिवेदिदुं गदम्हि। सा उण कालन्तरे एदं होदुत्ति जह तह मह अस्सुप्पमज्जणं किदवदी। तं जह—[यत्त्वया मां कामयमानेन पूर्वगृहिण्यास्तस्याः प्रणयभङ्गः कृतस्तेन कर्तव्यं परिदेवनं खलु कण्ठकण्डूर्देव्यै कथितवती यत्किल भट्टिनि, एतन्मम दुर्जातं पाण्डुगृहिण्यै निवेदितुं गतास्मि। सा पुनः कालान्तरे एतद्भवत्विति तथा यथा ममाश्रुप्रमार्जनं कृतवती। तद्यथा।] (स्मरणमभिनीय सभयम्, संस्कृतमाश्रित्य।)

अस्यात्याहितकर्मणो व्यपगमे कासेन भर्त्रा समं
संघ स्येतव भीं तु तत्प्रियसखान्संप्रेषयन्ती रहः।
इत्थं श्वासविलासिनीरुपगताः पश्चापि हिकाः मुखी-
कृत्य द्रागुपसान्त्व्य पाण्डुदयिता मां प्राहिणोत्कामला ॥७॥

छर्दि—क्योंकि मुझको चाहते हुए तुमने उस पहिली पत्नी का प्रणय भंग किया है, उसके कारण से उसका दुःख करना ठीक है। तब कंठकंडू ने देवी को कहा—हे राजज्ञि! अपने इस दुर्व्यवहार को पांडु की पत्नी (कामला) को कहने के लिए गई थी। उसने मुझे यह कहकर कि पीछे से सब देखा जायेगा, मेरे आँसुओं को पूंछा था, जैसे कि—(कुछ याद आने का अभिनय करके—संस्कृत का अनुसरण करके)।

७—इस आवश्यक कार्य के हो जाने पर कास के मित्र श्वासों को भेजकर एकान्त में कासपति के साथ तेरा मेल करा दूँगी; इस प्रकार से समीपवर्त्ति श्वास की पत्नी हिका के मुख द्वारा मुझे सान्त्वना देकर पाण्डु पत्नी कामला ने जल्दी से भेजा है।

इसमें भी मैं [कण्ठकण्डू] फूटे भाग्यों वाली एवं टूटी आशा वाली हो गई हूँ।

वक्तव्य—कास और कण्डू का आपस में बहुत निकट सम्बन्ध है;

तत्थ वि मन्दभाइणी अहं हदमणोरहा जादेत्ति । [तत्रापि मन्दभागिन्यहं हतमनोरथा जाता ।]

कासः—(विचिन्त्य ।) मा बिभिहि । ज्ञातस्तव भावः । त्वयि प्रणयस्य भंगे कंठकण्डवा यत्नः क्रियत इति गच्छामि तत्रैव तानपि वशीकुर्याम् । तेऽपि मद्बुद्धयै पुष्टाः कथं मह्यं द्रुह्येयुः ।

यथा—"पूर्वरूपं भवेत्तेषां शूकपूर्णं गलास्यता । कण्ठे कण्डूश्च भोज्यानामवरोधश्च जायते ।। इससे प्रथम पत्नी कण्ठकण्डू को छोड़ देने पर दूसरी स्त्री से (छर्दि से) प्रणय करने पर प्रथम पत्नी का मान भंग होने के कारण उसका दुःख करना, रोना स्वाभाविक ही है—इसी की झलक शाकुन्तल नाटक में भी है—

अभिनव मधु लोलुपस्त्वं तथा परिचुम्ब्य चूतमञ्जरीम् ।
कमलवसतिमात्रनिर्वृतो मधुकर विस्मृतोऽस्येनां कथम् ।।

श्वास और हिक्का का भी आपस में बहुत ही नजदीक का सम्बन्ध है; यथा—कामं प्राणहरा रोगा बहवो न तु ते तथा । यथा श्वासश्च हिक्का च प्राणानाशु निकृन्ततः ।। अन्यैरप्युपसृष्टस्य रोगैर्जन्तोः पृथग् विधैः । अन्ते संजायते हिक्का श्वासो वा तीव्रवेदनः ।।—चरक । हिक्का पाँच प्रकार की है—अन्नजां यमलांक्षुद्रां गम्भीरां महतीं तथा ।।" । कण्ठ कण्डू ने इस प्रकार का रोना यक्ष्मा की पत्नी विसूची के पास किया था । मैंने थम्बे के पीछे छिपकर यह सब वृतान्त सुना है । ऐसा छर्दि ने कास को कहा ।

कास—(सोचकर) डरो मत ! तुम्हारा अभिप्राय समझ लिया; तेरे प्रेम रस के भंग में कण्ठ कण्डु द्वारा यत्न किया जा रहा है । मैं भी जाता हूँ उनको (श्वासों और हिक्काओं को) वहीं पर वश में करने के लिये । वे श्वास मेरे ही कारण से बलशाली होकर मेरे साथ कैसे द्रोह करते हैं ।

छर्दिः—गच्छेहि कज्जसिद्धीए, अहं वि देईए सकासं गमिस्सम्।
[गच्छ कार्यसिद्धयै, अहमपि देव्याः सकाशं गमिष्यामि ।]

(इति निष्क्रान्तौ ।)

प्रवेशकः ।

(ततः प्रविशति रहस्यागारस्थः सुप्तोत्थितः सचिन्तः पांडुः)

पाण्डुः—कः कोऽत्र भोः ।

(प्रविश्य ।)

गलगण्डो दौवारिकः—विजयतां देवः ।

छर्दि—कार्य की सफलता के लिये जाइये, मैं भी विसूचि देवी की सेवा के लिये जाऊँगी । *

[यह कहकर दोनों निकल गये]

प्रवेशक

वक्तव्य—प्रवेशक का लक्षण—"वृत्तवर्तिष्यमाणानां कथांशानां निदर्शकः । प्रवेशकस्तुनाद्यङ्के नीच पात्र प्रयोजितः ।। २–तद्वदेवा नुदात्तोक्त्या नीच पात्र प्रयोजितः । प्रवेशोऽङ्कद्वस्यान्तः शेषार्थस्योप सूचकः ।। दशरुपक । जो हो गया है और आगे जो होगा उसी की सूचना नीच पात्रों द्वारा प्रथम अंक के बाद जो दी जाती है; उसको प्रवेशक कहते हैं । विष्कम्भक में पात्र नीच न होकर मध्यम या उच्च होते हैं; यह दोनों में भेद है ।

[इसके पीछे गुप्त गृह में स्थित सोकर उठा अलसाया हुआ, चिन्ताशील पाण्डु प्रविष्ट होता है ।]

पाण्डु—यहाँ पर कौन है !

[प्रविष्ट होकर]

गलगण्ड-दौवारिक—महाराज की जय हो ।

---

* पादमूलं के स्थान पर सकाशं भी पाठ है ।

(पांडुर्निद्रालसो जृम्भते ।)

गलगण्डः—(आत्मगतम् ।) एष किल

आरक्तसंकुचदपाङ्गमुदग्रदंष्ट्रं
व्यादाय वक्त्रमुरुपाटलदीर्घजिह्वम् ।
उच्चैर्भुजौ बलयितौ ग्रथितांगुलीकौ
कुर्वन्सशब्दमिह जृम्भणमातनोति ॥ ८ ॥

अपि च ।

जृम्भावसरे दारुणमाननविवरं सजिह्वमेतस्य ।
निपतितदीर्घकपाटं पातालद्वारमिव हि पश्यामि ॥ ९ ॥

(प्रकाशम् ।) देवस्य कीदृशो मयि नियोगः ।

पाण्डुः—गलगंड, सेनापतीनाहूय मम निकटं प्रवेशय ।

गलगण्ड—तथा । (इति निष्क्रम्य त्रयोदशप्रकारान्संनिपातान्प्रवेशयति । सर्वे प्रविश्य प्राञ्जलयस्तिष्ठन्ति ।)

[पांडु निद्रा से अलसाया हुआ जम्भाई लेता है]

गलगण्ड—(अपने आप ही) यह पांडु निश्चय से—

८—सुर्ख एवं संकुचित नेत्र प्रान्तों वाला (नेत्रों के कोए), बाहर निकले कराल दाँतों से स्थूल, एवं सुर्ख लम्बी जिह्वा वाले मुख को खोलकर; दोनों हाथों की अंगुलियों को परस्पर एक दूसरे में फँसाकर इनको ऐंठता हुआ भुजाओं को ऊँचा करके, ऊँची आवाज के साथ सामने में जम्भाई ले रहा है।

और भी—

९—इस पांडु के जम्हाई लेने के समय जिह्वा के साथ भयानक मुख गुफा को गिरे हुए बड़े कपाटों वाले पाताल के द्वार की भाँति देखता हूँ।

(स्पष्ट रूप में)—स्वामी की मेरे लिए क्या आज्ञा है ?

पाण्डु—गलगंड, सेनापतियों को बुलाकर मेरे पास प्रविष्ट करो।

गलगण्ड—अच्छा (इस प्रकार से निकलकर तेरह प्रकार के

तत्र एकः—सविचार इव दृश्यते युवराजः । तत्क्षणं जोषमास्यताम् । यदेषः

खट्वामङ्गविवर्तनेन लुलितक्षौमास्तरामावस-
न्वीटीं भृत्यकरार्पितामगमयन्वक्त्रं गृहीतामपि ।
उत्तानस्तिमिते दृशावपि चिरादुच्चैर्विताने॓ऽर्पय-
न्नत्यर्थं श्वसितोद्गमैर्विवृणुते चिन्तां निजान्तर्गताम् ॥१०॥

किं च पूर्वमपि ।

सन्निपातों को प्रविष्ट कराता है, सब प्रविष्ट होकर हाथ जोड़कर खड़े हो जाते हैं ।*

उनमें से एक—युवराज कुछ सोचते हुए दीखते हैं, इसलिये कुछ देर चुपचाप रहें । क्योंकि—

वक्तव्य—तेरह सन्निपात—

"एकोल्वणस्त्रयस्तेषुद्युल्वणाश्चतथैतिषट् ।
त्र्युल्बणश्च भवेदेको विज्ञेयःस तु सप्तमः ।।
प्रवृद्ध मध्यहीनैस्तु वातपित्तकफैश्च षट् ।
सन्निपातामयस्यैवंस्युर्विशेषास्त्रयोदश ।।"

नाम–विष्फारक, आशुकारी, कम्पनः, वभ्रु, विह्वाख्यः, फल्गुः, कूटपाकलः, संमोहकः, पाकलः, याम्यः, क्रकचः, कर्कोटकः, वैदारिकः । *

१०—यह पांडु अंगों को मरोड़ने से सिकुड़न पड़ी हुई रेशमी चद्दर वाले पलंग पर बैठे हुए, नौकरों के द्वारा दिये हुए पान के बीड़े को हाथ में लेकर भी मुख में न देते हुए, खुली हुई और स्तब्ध आँखों से ऊपर के चंदोए को देर से देखते हुए, अतिशय प्रवृत्त उच्छ्वासों द्वारा अपनी अन्दर की चिन्ता को प्रगट कर रहा है ।

और क्या—पहिले भी—

---

* भावप्रकाश में इनके नाम इस प्रकार हैं—कुम्भीपाक, प्रोर्णुनाभ, प्रलापी, अन्तर्दाह, दण्डपात, अन्तक, एणीदाह, हारिद्र, अजघोष, भूतहास, यंत्रपीड, सन्यास, संशोली ।

न स्नाति वारिषु चिरं त्वरितं दुकूलं
वस्ते विलम्बसहनो न कदापि भुंक्ते ।
भूषागणं वहति किं च विपर्ययेण
राजा युवैष हृदि कार्यविचारकृष्टः ॥११॥

गलगण्डः—(दंडेन भूमिमाघट्टयन् ।) देव, सेनापतयः प्राप्ताः ।

पाण्डुः—(विलोक्य ।) भो भोः संनिपाताः, प्रतिराजस्य जीवस्य सकाशादस्मदीयराजस्य यक्ष्मणोऽधुना पराभवः संभावयिष्यत इति श्रूयते । स यथा न भवेत्तथा सैन्यैः सह संनद्धव्यं भवद्भिः ।

सन्निपातः—

अस्मादृशेषु बलशालिषु सैनिकेषु
राजन्नलं प्रभुपराभवचिन्तया ते ।
स्यात्किं वसन्तदिवसेषु विसृत्वरेषु
पद्माकरस्य तुहिनाभिभवप्रसक्तिः ॥१२॥

११—यह युवराज हृदय में शत्रु कुल के अभियोग विषयक चिन्ता में लगा हुआ होने से अपनी दैनिक चर्या को भी ठीक प्रकार से नहीं करता, यथा—स्नान स्थानों में देर तक स्नान नहीं करता, वस्त्र को जल्दी से पहिन लेता है, कभी भी देर तक भोजन नहीं करता (जल्दी भोजन कर लेता है), और भी, विविध आभरणों को अदल बदल कर पहिन लेता है ।

गलगण्ड—(दंडे से भूमि पर प्रहार करता हुआ) देव, सेनापति आ गये हैं ?

पाण्डु—(देखकर) हे हे सेनापति ! हमारे विरोधि जीव राजा द्वारा हमारे यक्ष्मा राजा का पराभव होने की सम्भावना सुनी जाती है, वह पराभव न हो, आप सबकों सैनिको को साथ में ऐसी तैयारी करनी चाहिए।

सन्निपात—

१२—हे राजन् ! हमारे जैसे बलशाली सेनापतियों के रहने पर स्वामी के पराभव की चिन्ता नहीं करनी चाहिये । क्या वसन्त के दिनों के

कति कत्यस्मदीयाः सैनिकाः । तत्रैकैकस्य पराक्रमवतो युद्धाय न पर्याप्तमखिलं शत्रुसैन्यम् । किं पुनः सर्वेषाम् । श्रूयन्तां तावदस्मदीयाः ।

अष्टौ कुष्ठा दश च बलिनः प्लीहगुल्मास्तथाष्टौ
षट् चोन्मादा वसति दशकं पञ्चकं च व्रणानाम् ।
अर्शोभेदाः [1]षडतिगतयो विंशतिश्च प्रमेहाः
किं चाश्मर्यौ दशदश पुनः सन्ति सप्तातिसाराः ॥१३॥

बढ़ते हुए तालाब में हिम की बाधा—वर्फ के गिरने की सम्भावना—हो सकती है ? अर्थात् नहीं हो सकती ।

हमारे सैनिक कैसे कैसे हैं; उनमें से एक एक के भी पराक्रम करते हुए – लड़ते हुए सम्पूर्ण शत्रु सैन्य भी उसे पहुँच नहीं सकता, फिर सब सैनिकों के लड़ने पर तो कैसे पार पायेगा । हमारे सैनिकों को सुनिये—

१३—बलवान कुष्ठ अठारह हैं; प्लीहारोग चार और गुल्मरोग चार; उन्माद छै, व्रण पन्द्रह हैं । अतिगति वाले (जिनमें रक्त बहुत जादा है) अर्श छैः हैं; जिनमें मूत्र बहुत आता है, ऐसे प्रमेह बीस हैं, मूत्रकृच्छ्र (मूत्राघात भी) और अश्मरी मिलाकर बीस हैं; अतीसार सात हैं ।

वक्तव्य—कुष्ट अट्ठारह हैं—"न च किंचिदस्ति कुष्टमेकदोष प्रकोप निमित्तम्" अस्ति तुखलु समान प्रकृतिनामपि कुष्टनां दोषांशांश विकल्प स्थान विभागेन वेदना वर्ण संस्थान प्रभावानामचिकित्सित विशेषः । सप्तविधोऽष्टादश विधोऽपरिसंख्येयविधो वा भवति ।–चरक । तत्र सप्त महा कुष्ठानि, एकादश क्षुद्रकुष्ठानि, एवमेकादश कुष्ठानि भवन्ति ।—सुश्रुत । अतः कुष्ठानि जायन्ते सप्त चैकादशैव च । न चैक दोषजं किञ्चित् कुष्टं समुपलभ्यते ॥ इनमें महाकुष्ठ—अरुण, ऊदुम्बर, ऋष्य-जिह्व, कपाल, काकणिक, पुण्डरीक और सिध्म । क्षुद्रकुष्ठ—एककाष्ठ, चर्म, किटिभ, विपादिका; अलसज, दद्रु, चर्मदल, पामा, विस्फोटक, शतारु और विचर्चिका । सुश्रुत में दद्रु को महाकुष्ट में और सिध्म को क्षुद्रकुष्ठ में गिना है । प्लीहारोग चार प्रकार का है; वात, पित्त, कफ

और रक्त जन्य। गुल्म यहाँ चार प्रकार का लिया है; रक्तजन्य गुल्म जो कि स्त्रियों में होता है, उसको छोड़कर गुल्म चार प्रकार का ही है—"स व्यस्तैर्जायते दोषैः समस्तैरपि चोच्छ्रितैः। पुरुषाणां तथा स्त्रीणां ज्ञेयो रक्तेन चापरः॥ उन्माद छः हैं; चरक में उन्माद पाँच प्रकार के ही कहे हैं; परन्तु माधव निदान में विष जन्य उन्माद को मिलाकर छैः प्रकार के उन्माद गिने हैं; यथा—"इह खलु पन्चोन्मादा भवन्ति; तद्यथा-वात पित्त कफ सन्निपातागन्तु निमित्ताः॥—चरक। एकैकशः सर्वशश्च दोषैरत्यर्थं मूर्च्छितैः। मानसेन च दुःखेन स च पंचविधो मतः॥ विषाद् भवति षष्ठश्च॥ माधव। व्रण पन्द्रह प्रकार के—दोषो पप्लव विशेषः पुनः समासतः पंचदश प्रकारः प्रसरण सामर्थ्यात्॥—सुश्रुत। पन्द्रह प्रकार—वातः, पित्तं,श्लेष्मा, शोणितं, वातपित्तं, वातश्लेष्माणौ, पित्तश्लेष्माणौ, वातशोणिते, पित्तशोणिते, श्लेष्मशोणिते, वातपित्त शोणितानि वातश्लेष्म शोणितानि, पित्तश्लेष्म शोणितानि वातपित्तकफाः, वात पित्त कफ शोणितानि इति, एवं पन्चदशधा प्रसरन्ति॥—सुश्रुत। अर्श छैः प्रकार के हैं—"षडर्शांसि भवन्ति, वात पित्त कफ शोणित सन्निपातैः सहजानि चेति॥—सुश्रुत। प्रमेह बीस प्रकार के हैं; प्रमेह का लक्षण—तत्राविल प्रभूत मूत्र लक्षणाः सर्व एय प्रमेहा भवन्ति॥—सुश्रुत।' कफः सपित्तः पवनश्च दोषाः भेदोऽस्त्रशुक्राम्बुवसा लसीकाः। मज्जा रसौजः पिशितं च दूष्याः प्रमेहिणां विशंति रेव मेहाः॥ मूत्रकृच्छ्र और मूत्रावात एवं अश्मरी मिलाकर मूत्ररोग बीस हैं; यथा—मूत्रकृच्छ्र चार" पृथङ् मलाः स्वैः कुपितैः निदानैः सर्वेऽपवा कोपमुपेत्य वस्तौ। मूत्रस्य मार्गं परिपीडयन्ति यदा तदा मूत्रयतीह कृच्छ्रात्॥ चरक। * मूत्राघात बारह हैं; यथा—वात कुण्डलिका ऽष्ठीला वातवस्तिस्तथैव च। मूत्रातीतः सजठरो मूत्रोत्सङ्गः

---

* सुश्रुत में मूत्रकृच्छ्र आठ प्रकार के बताये हैं; यथा—
वातेन पित्तेन कफेन सर्वैस्तथाभिघातैः शकृदश्मरीभ्याम्।
तथाऽपरः शकर्या सुकष्टो मूत्रोपघातः कथितोऽष्टमस्तु॥

(गलगंडं ।) स्वामिनः कुमारस्य संनिधिं प्रापय सर्वानपि सैनिकान् ।
गलगण्डः--तथा । (इति निष्क्रम्य सर्वैः सह प्रविशति ।)

क्षयस्तथा ।। मूत्रग्रन्थिर्मूत्रशुक्रमुष्णवातस्तथैव च । मूत्रौकसादौ द्वौ चापि रोगा द्वादशकीर्त्तिताः ।। सुश्रुत ।* अश्मरी चार हैं–" चतस्रोऽश्मर्यो भवन्ति, श्लेष्माधिष्ठानाः, तद्यथा-श्लेष्मणा, वातेन, पित्तेन, शुक्रेण चेति । सुश्रुत । चरक में—" विशोषयेद् वस्तिगतं स शुक्रं मूत्रं सपित्तं पवनं कफं वा । यदा तदाऽश्मर्युपजायते तु क्रमेण पित्तेष्विव रोचना गोः ।। चरक । इन तीनों में मूत्र सम्बन्धि शिकायत रहने से तीनों को मिलित रूप में गिना है । अतीसार सात हैं–चरक में और सुश्रुत में अतीसार छैः ही बताये हैं; यथा चरक में–वातजन्य, पित्तजन्य, कफजन्य, सन्निपातजन्य, भयजन्य, शोकजन्य । सुश्रुत में भयजन्य और शोकजन्य को एक मानकर आमजन्य को पृथक् छठा माना है । शार्ङ्गधर में भयजन्य, शोकजन्य और आमजन्य तीनों को अलग अलग गिनकर सात प्रकार का अतीसार माना है, वही यहाँ पर लक्षित है; यथा–पृथक् त्रिदोषैः सर्वैश्च शोकादामाद् भयादपि । अतीसारः सप्तधा स्यात् ।।"—ये प्रत्येक रोग बलवान हमारे सैनिक हैं; इनमें से किसी एक के सामने में जीवराज ठहर नहीं सकता, सब के मिलकर लड़ने में फिर क्या रहेगा ।

[गलगण्ड की ओर मुख करके] सब सैनिकों को स्वामी युवराज के पास पहुँचा दो ।

---

* चरक में मूत्राघात तेरह हैं, यथा—

मूत्रौ (त्रै)कसादौ जठरं कृच्छ्रमुत्संग संक्षयौ ।
मूत्रातीतोऽनिलाष्ठीला वातवस्त्युष्णमारुतौ ॥
वात कुण्डलिका ग्रन्थिर्विड्घातो वस्तिकुण्डलम् ।
त्रयोदशैते मूत्रस्य दोषः—चरक ॥

(सर्वे पांडुं प्रणम्य प्राञ्जलयस्तिष्ठन्ति ।)

पाण्डुः—एवं प्रवृत्ते राजकार्ये किं भवन्तो मन्यन्ते ।

(तत्रादौ)

कुष्ठाः—

कार्या न चेतसि कुमार कदापि चिन्ता
स्थास्यन्ति के वद पुरः प्रतिगर्जतां नः ।
शत्रोः प्रविश्य पुरमीक्षितुमप्ययोग्यं
कुर्मो वयं तनुभृतामतिकुत्सनीयम् ॥१४॥

उन्मादाः—सर्वे सैनिकास्तिष्ठन्तु । ज्ञायतामस्माकमभिप्रायः ।

कोपाध्मातककुत्स्थपुंगवकरव्याकृष्टगर्जद्धनु-
र्ज्यानिर्गत्वरमार्गणानलशिखादीने [२]नदीने भृशम् ।

गलगण्ड—ऐसा ही । [इस प्रकार निकलकर सबके साथ प्रविष्ट होता है] ।

[सब उठकर पाण्डु को नमस्कार करके हाथ जोड़कर खड़े हो जाते हैं ।

पाण्डु—इस प्रकार हमारे सेना द्वारा शत्रुपुर का घेरा डाल लेने पर आप लोगों की सम्मति में क्या करना चाहिए ?

कुष्ठ—हे युवराज ! आपको मन में किसी प्रकार की चिन्ता नहीं करनी चाहिए; गरजते हुए हमारे सामने कौन खड़े रह सकते हैं; यह तो कहिये ? शत्रु के नगर में भी घुसकर हम शरीर धारियों को देखने के लिये भी निन्दित कर देंगे ।

वक्तव्य—कुष्ठ का अर्थ ही शरीर को कुत्सित करने से (कुष्णाति), "प्रदुष्टाः प्रच्युतादोषा रसासृङ्मांस संश्रिताः । कुष्ठानि जनयन्त्याशु शरीरेषु शरीरिणाम् ॥

उन्माद—युवराज ! सब सैनिकों को रहने दीजिये; हमारी अभिप्राय सुन लीजिये—

पाठीनान्कमठैः समं विलुठतः सर्वेऽनुकुर्वन्तु ते
शार्दूला इव शम्बरान्सरभसं यानद्य गृह्णीमहे ॥१५॥

व्रणः--स्वामिन्कुमार, प्रथमं पुरमेव बाधितव्यम् । तद्बाधया शिथिलीभविष्यत्यन्तर्मुखतापि जीवस्य । अत इदानीम्

१५—क्रोध से भरे रामचन्द्रजी के हाथों से खिंची हुई तथा गर्जना करती हुई धनुष की डोरी से निकले बाणों की अग्निशिखा के कारण दीन बने समुद्र में कछुओं के साथ पाठीन मछलियों के अतिशय इधर उधर लोटने का वे सब शत्रु अनुकरण करें; जिन सब शत्रुओं को हम आज वेग के साथ पकड़ लेते हैं; जैसे कि शेर मृगों को पकड़ता है।

वक्तव्य—चम्पू रामायण में भी इसी प्रकार का श्लोक है; यथा—

रुषा विशिखमुच्छिखं जहति राघवे लाघवा—
दजायत रुजायतश्वसितनक्रचक्राकुलम् ।
रसातलवलत्तिमिस्तिमित कुम्भि कुम्भिनस–
प्रविष्ट गिरिकन्दरं तरलमन्तरं वारिधेः ॥

रामायण में कथा है कि लंका पर चढ़ाई करने के लिये सेना को समुद्र पार ले जाने के लिये विभीषण के कहने से जब रामचन्द्रजी ने समुद्र की स्तुति की, इस पर भी जब वह प्रसन्न नहीं हुआ तब, उसके अभिमान को तोड़ने के लिए समुद्र को शुष्क बनाने के लिए अग्नि-शिखा का बाण जब धनुष से छोड़ा, तब उसकी गरमी सहन न करके समुद्र राम की शरण में आया और अपने ऊपर पुल बाँधने की अनु-कूलता दी।

व्रण—हे युवराज स्वामिन्! सबसे प्रथम नगर को ही (शरीर को ही) पीड़ित करना चाहिए। इस शरीर की पीड़ा से जीव की अन्तर्मुखता भी ढीली हो जायेगी। इसलिये इस समय तो—

प्रचण्डमदपाण्डवप्रहितकाण्डवर्गत्रुट-
त्तरक्षुकरिकेसरिप्रियकशल्यशार्दूलकम् ।
अरण्यमिव खाण्डवं घनसरण्यतीतद्रुम-
व्रजं दहनहेतवः पुरमरेर्दहामो वयम् ॥१६॥

सर्वेऽपि अर्शोभेदाः—स्वामिन्, यदुक्तं व्रणैस्तदस्मभ्यमपि रोचते। तेन वयं च निरुद्धमूलद्वाराः—

गृह्णीयाम व्यथयितुमरेस्तत्पुरं येन सर्वे
व्याघ्राकृष्टा इव हि पशवः प्राणिनोऽस्मद्गृहीताः ।
स्थातुं गन्तुं शयितुमशितुं यातुमाभाषितुं वा
नापेक्षन्ते मनसि दधतो दुःखमात्रानुभूतिम् ॥१७॥

१६—दुर्धर्ष पराक्रमशील अर्जुन से छोड़े गये शर समूह से नष्ट होते हुए तरक्षु (भेड़िया), करि (हाथी), केसरि (सिंह), प्रियक (हरिण), शल्य (सेह भेद), शार्दूल (व्याघ्र) एवं बादलों के मार्ग को भी छेंकने वाले विशाल वृक्षों वाले खांडव वन को जैसे आग्नेय अस्त्रों ने नष्ट कर दिया था, उसी प्रकार हम भी शत्रु के पुर को जलायेंगे ।

वक्तव्य—महाभारत में कथानक है कि अग्नि ने ब्राह्मण का वेश धारण करके अर्जुन से भीख माँगी । अर्जुन ने जब भिक्षा देने की स्वीकृति दे दी तब उसने अपने वास्तविक रूप को बताकर खाण्डव वन को खाने की इच्छा बताई थी । इसमें इन्द्र रुकावट डालता है । इस आपत्ति से मेरी रक्षा करो, जिससे कि इस खाण्डव वन को मृग-पशु-पक्षि के समेत मैं खा सकूँ । तब अर्जुन ने उसकी रक्षा करते हुए सारे खाण्डव वन को जलाया था ।

सम्पूर्ण भेदों के साथ अर्श—स्वामिन् ! व्रणों ने जो कहा है; वह हमको भी ठीक लगता है; और इससे हम भी मूलद्वार (गुदामार्ग) को रोक लेंगे—

१७—शत्रु के उस पुर को पीड़ित करने के लिए जब हम आक्रमण

प्रमेहाः—स्वामिन्, अस्मासु विधेयेषु पुरोवर्तिषु किमर्थमन्येषां प्रस्तुतकार्यं प्रति प्रेषणम । तत् कर्त्तव्ये किंचिदस्मद्वचांसि कर्णयोरतिथि कर्त्तुमर्हति भवान् ।

पाण्डुः—वक्तव्यानि वो विवक्षितानि ।

प्रमेहाः—

प्रस्रावाख्यांपरिणतिमसृङ्मांसमेदोस्थिमज्ज्ञां
व्यातन्वन्तो वयमनुदिनं तत्पुरं शोषयामः ।
कान्तर्वक्त्रो भवतु विधुरीभूय जीवः क्व मंत्री
तत्साहाय्यं कलयतु भवांस्तद्विषादं जहातु ॥१८॥

करेंगे तब सब प्राणि हमसे पीड़ित होकर, शेर से खींचे जाते हुए पशु की भाँति न तो बैठ सकेंगे; न चल सकेंगे; न सो सकेंगे; न खा सकेंगे; न पी सकेंगे और न बोल सकेंगे; केवल मन ही मन में दुःख का ही अनुभव करते रहेंगे ।

वक्तव्य—अर्श का क्षेत्र—"सर्वेषां चार्शसां क्षेत्रम्—गुदस्यार्धपञ्चमाङ्गुलावकाशे त्रिभागान्तरास्तिस्त्रो गुदवलयः; (क्षेत्रमिति देशः) । अर्श बहुत पीड़ा देते हैं;

पञ्चात्मा मारुतः पित्तं कफो गुदवलित्रयम् ।
सर्व एव प्रकुप्यन्ति गुदजानां समुद्भवे ॥
तस्मादर्शांसि दुःखानि बहुव्याधिकराणि च ।
सर्वदेहोपतापीनि प्रायः कृच्छ्रतमानि च ॥

प्रमेह—स्वामिन् ! आपकी आज्ञा में सदा सामने रहने वाले हम लोगों के रहते हुए दूसरों को इस प्रस्तुत कार्य में भेजना व्यर्थ है । इस करणीय विषय में हमारे वचनों को भी आप अपने कानों में स्थान देने की कृपा करें ।

पाण्डु—तुम जो कहना चाहते हो, उसे कहो ।

१८—प्रमेह—हम प्रमेह रक्त-मांस-मेद-अस्थि और मज्जा इन

अश्मर्यः—सर्वे सैनिकाः स्वस्वबलानुरूपं गर्जन्ति। स्वामिन्, न वयं गर्जनपराः। किं तु भूतार्थवादिन्यः।

वर्धिष्यते न यावत्सहितः सर्वैर्भटैर्निजैर्वैरी।
तावन्निग्रहणीयः श्रेयस्कामेन पुरुषेण ॥१९॥

तथा हि

धातुवों को मूत्र रूप में बदलते हुए विशेष रूप में उस पुर को प्रतिदिन सुखाते जायेंगे। इस अवस्था में जीव दुःखित होकर किस प्रकार से अन्तः-मुख (ध्यानावस्थित) हो सकता है; मन्त्री विज्ञानशर्मा भी उस जीवराज की सहायता किस प्रकार से करेगा। इस लिए आप शोक को छोड़ दें। *

वक्तव्य—प्रमेह में शरीर के धातु ही बदलकर मूत्ररूप में आते हैं; यथा—

मेदश्च माँसं च शरीरजं च क्लेदं कफो वस्तिगतं प्रदूष्य।
करोति मेहान् समुदीर्णमुष्णैस्तानेव पित्तं परिदूष्य चापि॥
क्षीणेषु दोषेष्ववकृष्य वस्तौ धातून्प्रमेहाननिलः करोति।
दोषो हि वस्ति समुपेत्य मूत्रं संदूष्य मेहाञ्जनयेद्यथास्वम्॥

अश्मरियां—सब सैनिक अपनी अपनी शक्ति के अनुसार गर्जना कर रहे हैं। हे स्वामिन्! हम बहुत गरजते नहीं, अपितु वास्तविक बात कहने वाले हैं—

१९—शत्रु सब अपने योद्धाओं के साथ जब तक बलवान नहीं बनता; तब तक अपनी विजय चाहने वाले पुरुष को उसे वश में कर लेना चाहिये।

और भी—

वक्तव्य—इसी विषय को माघ ने भी कहा है—

उत्तिष्ठमानस्तु परो नोपेक्ष्यः पथ्यमिच्छता।
समौ हि शिष्टैराम्नातौ वर्त्स्यन्तावामयः स च॥

---

* पाठान्तर—संप्रस्रवात्परिणतिमसङ्मांस मेदोऽस्थिमज्ज्ञांव्यातन्वन्तोवयम् ?

वेलालङ्घिप्रसर्पत्तटविटपिसमुत्पाटनाटोपमूर्च्छ-
त्कल्लोलाक्रान्तपृथ्वीवलयजनलयोल्लेखसंत्रस्तलेखः ।
अम्भोधिर्मा जनीति प्रतिकलमुदयद्वारिभूरीभविष्य-
च्चूषत्यह्नाय वह्निर्विघटितवडवावक्त्ररन्ध्रादुदञ्चन् ॥२०॥

पाण्डुः—युक्तमुक्तं भवद्भिः ।

अतीसाराः—स्वामिनः कृपयैव भुजप्रतापं दर्शयन्तो वयं विजेष्यामह इति किमत्र चित्रम् । अतः वयं किमपि ब्रूमः । विदांकरोतु स्वामी ।

नेत्रे मज्जयितुं मुखं ग्लपयितुं जत्रुद्वयं व्यञ्जितुं
पार्श्वस्थनां गणनीयतां गमयितुं सत्त्वं भृशं लुण्ठितुम् ।
सप्तत्वेऽपि निजे स्थिते घटयितुं पञ्चत्वमेवाङ्गिनां
शक्ताः प्रहिणोषि यत्र तरसा तत्साधयामो वयम् ॥ २१ ॥

२०—अपने किनारे का अतिक्रमण करके फैलता हुआ समुद्र वृक्षों को उखाड़ने से उत्पन्न वेग से बढ़ती हुई अपनी तरंगों द्वारा सम्पूर्ण पृथ्वी तल का लय कर देता है ; उसमें सब मनुष्यों के लीन हो जाने से विक्षोभित एवं डरे हुए देवताओं के कारण खुले हुए घोड़ी के मुख रूपी छिद्र से बाहर आती हुई वाडवाग्नि प्रति क्षण निरन्तर बढ़ते हुए समुद्र जल को जल्दी से सोख लेती है ।

वक्तव्य—समुद्र में रहने वाली वड़वाग्नि समुद्र में रहने वाली बड़ी घोड़ी के मुख से बाहर आती है । यह अग्नि जिस प्रकार बढ़ते हुए समुद्र को पूर्ण बढ़ने से पूर्व शुष्क कर देती है, उसी प्रकार शत्रु को भी बढ़ने से ही पूर्व ही रोक देना चाहिये । अश्मरी भी मूत्र को रोक देती है ।

पाण्डु—आपने ठीक कहा है ।

अतीसार—आपकी कृपा से ही अपनी भुजाओं का बल दिखाते हुए हम शत्रुओं को जीत लेंगे, इसमें आश्चर्य ही क्या । इसलिए हम भी कुछ कहते हैं ; आप महाराज सुनें ।

२१—आँखों को अक्षि गोलकों के अन्दर धँसाने में ; मुख को मलिन

पाण्डुः—(सबहुमानम् ।)

अतिसारा इति स्पष्टं विष्टपत्रयविश्रुतम् ।
युष्मन्नामैव युष्माकं ब्रूतेऽतिशयितं बलम् ॥ २२ ॥

गुल्म प्लीहानः—श्रूयतां स्वामिना ।

अस्मासु प्रविशत्सु शात्रवपुरं पीडाकरेषु द्रुतं
कार्याकार्यविवेक एव न भवेदल्पोऽपि तस्मिन्क्षणे ।

बनाने में; दोनों अक्षकास्थियों को (हंसलियों को) स्पष्ट करने में, पसलियों को गिनने योग्य करने में, शारीरिक और मानसिक बल को नष्ट करने में, आपने आप में सात होने पर भी प्राणियों को पञ्चत्व (मृत्यु) प्राप्त करने में समर्थ हम को जिस कार्य में आप भेजेंगे, उस कार्य को हम शीघ्र ही पूरा करेंगे।

वक्तव्य—अतीसार सात हैं; माधव निदान में पहिले छः अतीसार कह कर फिर सातवां रक्तातिसार कहा है—

एकैकशः सर्वशश्चापि दोषैः शोकेनान्यः षष्ट आमेन चोक्तः ।
पित्तकृन्ति यदात्यर्थं द्रव्याण्यश्नाति पैत्तिके ।
तदोपजायतेऽभीक्ष्णं रक्तातीसार उल्वणः ॥

दूसरे ग्रन्थकार शोक जन्य, भयजन्य को पृथक् मान कर आमातीसार के साथ सात अतीसार मानते हैं।

पाण्डु—(बहुत आदर के साथ)

२२—अतीसार यह स्पष्ट नाम तीनों लोकों में बहुत प्रसिद्ध है। तुम्हारा नाम ही तुम्हारे अतिशय बल को बता रहा है।

वक्तव्य—अतिसार की सम्प्राप्ति—

संशम्यापां धातुरग्निं प्रवृद्धः शकृन्मिश्रो वायुनाधःप्रणुन्नः ।
वृद्धोऽतीवाधःसरत्येषयस्माद् व्याधिं घोरं तत्वतीसारमाहुः ॥ सुश्रुत ।

गुल्म और प्लीहा—महाराज सुनें—

२३—शीघ्र पीड़ा करने वाले हम लोगों के (गुल्म और प्लीहा के)

आस्ताम्येतदिदं वचो निशमय क्षन्तुं व्यथामक्षमो
विज्ञानेन च मंत्रिणा सह पुराज्जीवः पलायिष्यते ॥ २३ ॥

पाण्डुः—अस्मत्सैनिकोपरुद्धे पुरे पिपीलिकापि न प्रसरीसरीति, परं सर्वैरिदमाकर्णनीयम् । नीतिशास्त्रानुसारिणि मंत्रिणि तदनुरक्ते विक्रमाभिमानरक्षणैकपरे द्विजदेवपोषणैकतानमानसे राजनि तस्मिन्निपुणं

शत्रु के पुर में प्रविष्ट हो जाने पर—उसी समय थोड़ा भी करणीय और अकरणीय विषयक ज्ञान नहीं होता। जीवराजा को कार्याकार्य का ज्ञान नहीं रहेगा, इसकी तो बात ही छोड़िए; हमारी बात सुनिए—हमारे से उत्पन्न की हुई पीड़ा को न सह सकने के कारण जीव राजा, विज्ञान शर्मा मन्त्री के साथ पुर से (शरीर से) भाग जायेगा।

वक्तव्य—गुल्म का निरूपण—

गुपितानिलमूलत्वात् गूढमूलोदयादपि ।
गुल्मवद्वा विशालत्वाद् गुल्म इत्यभिधीयते ॥
हृद्वस्तयोरन्तरे ग्रन्थिः संचारी यदिवाऽचलः ।
चयापचयवान् वृत्तः स गुल्म इति कीर्त्तितः ॥

गुल्म की भयानकता—सान्निपात गुल्म के सम्बन्ध में चरक में बताया है, यथा—

महारुजं दाहपरीतमश्मवद् घनोन्नतं शीघ्र विदाहि दारुणम् ।
मनःशरीराग्नि बलापहारिणं त्रिदोषजं गुल्ममसाध्यमादिशेत् ॥

प्लीहोदर के लिये—

वामे च पार्श्वे परिवृद्धिमेति विशेषतः सीदति चातुरोऽत्र ।
मन्दज्वराग्निः कफपित्तलिंगैरुपद्रुतः क्षीण बलोऽतिपाण्डुः ॥ सुश्रुत
वाम पार्श्वाश्रितः प्लीहाच्युतः स्थानात् प्रवर्धते ।
शोणितं वा रसादिभ्यो विवृद्धं तं विवर्धयेत् ॥ चरक

पाण्डु—हमारे सैनिकों द्वारा पुर के घेर लेने पर चिऊँटी भी नहीं जा सकती। परन्तु तुम सब को यह सुनना चाहिए। शास्त्र (नीति शास्त्र)

किमपि प्रतिविधानमनुसंधेयम् । अतः प्रागेवातर्कयं किंचिदत्याहितहेतुस्त्वदीयान्तर्मुखतेति ।

कुष्ठेष्वेकः—स्वामिन्, प्रागस्माभिः प्रेषितः शत्रुशिबिरं प्रविष्टः कर्णमूलोऽद्यापि नागतः किं तैर्गृहीतः स्यात् ।

(ततः प्रविशत्यध्वश्रान्तः कर्णमूलः ।)

कर्णमूलः—(दृष्ट्वा ।) एतत्खलु

तत्तत्कार्यनिवेदनार्थमिलितान्योन्यानभिज्ञस्पश
प्राप्तव्यावसरप्रतीक्षणकृतद्वाः पार्श्ववेद्यासिकम् ।
अन्तर्मन्दिरनिःसरज्जनवचोविज्ञाप्यमानप्रभु-
व्यापारश्रवणेप्सुबाह्यमनुजं पश्यामि पाण्डोर्गृहम् ॥ २४ ॥

के अनुसार बरतने वाले मन्त्री के; पराक्रम रूपी अभिमान की रक्षा में तत्पर, मन्त्री में अनुरक्त, ब्राह्मणदेवता की पूजा में संलग्न राजा के लिये कुछ निपुण (नया सफल होने वाला उपाय) उपाय ढूँढ़ना चाहिए। इसलिये उसकी अन्तर्मुखता किसी महान आपत्ति का कारण है; यह मैंने पहले ही सोच लिया है।

वक्तव्य—शत्रुपुर को हमारे सैनिकों ने इस प्रकार से घेरा है कि उसमें से चिऊँटी भी बाहर नहीं आ सकती; फिर जीवराजा का तो बाहर जाना असम्भव है। इसीलिये उसने किसी बड़े भारी कारण को सोचकर ही अन्तर्मुखता अपनाई है।

कुष्ठों में से एक—स्वामिन्! पहिले हमसे भेजा गया शत्रु छावनी में प्रविष्ट कर्णमूल अभी तक भी नहीं आया; कहीं शत्रुओं से पकड़ा तो नहीं गया।

[इसके पीछे मार्ग चलने से थका कर्णमूल आता है]

कर्णमूल—(देखकर) निश्चय से इस-

२४—[पाण्डु गृह को देखता हूँ]—उस उस कार्य को सूचित करने के लिये एकत्रित हुए एवं परस्पर एक दूसरे को न पहिचानने वाले,

(द्वाःस्थं प्रति ।) गलगंड, कथय कर्णमूलं संप्राप्तं माम् ।

(गलगंडः प्रविश्य निष्क्रम्य कर्णमूलेन सहान्तःप्रविशति ।)

कर्णमूलः—(आत्मानं दृष्ट्वा स्वगतम् ।)

श्रमाम्भः संसिक्तालिकलुलितपुण्ड्राङ्कवदनो
द्रवच्चर्मोपानद्दृढपिहितपार्श्वाञ्चलपदः ।
समुद्यन्निश्वासप्रसरपरिशुष्काधरपुटो
विलङ्घ्याहं दीर्घां सरणिमगमं पाण्डुसविधम् ॥ २५ ॥

(पांडुं दृष्ट्वा ।) कुमार, विजयी भव ।

पाण्डुः—भद्र, किम् । किंचिदुपलब्धं तत्र भवता प्रविष्टेन ।

गुप्तचरों से युक्त, योग्य समय की प्रतीक्षा में दर्वाजे के समीप में बनी वेदिकाओं पर बैठे मनुष्यों वाले, राजमहल से बाहर आने वाले मनुष्यों की बातों से सूचित होने वाले राजकृत्यों के सुनने के इच्छुक गलियों में खड़े मनुष्यों वाले पांडु के घर को मैं देखता हूँ ।

[द्वार पर द्वारपाल को देखकर] गलगंड ! युवराज को सूचित कर दो कि कर्णमूल आ गया है ।

[गलगंड प्रविष्ट होकर और निकलकर कर्णमूल को भेजता है]

कर्णमूल—[अपनी अवस्था को देखकर अपने आप कहता है]

२५—जिसके मुख से श्रम से उत्पन्न पसीने के बिन्दुओं से गीला होकर माथे का टीका पुछ गया है, तथा जिसके दोनों पैर पसीने से गीले हुए जूतों द्वारा दबाये जा रहे हैं, एवं निकलते हुए निश्वास के फैलने से जिसके दोनों ओठ शुष्क हो गये हैं; ऐसा मैं बड़े लम्बे रास्ते को पार करके पांडु राजा के पास पहुँचा हूँ ।

(पाण्डु को देख कर) कुमार ! आप विजयी हों ।

पाण्डु—भद्र क्या खबर है, शत्रु पुर में प्रविष्ट होकर कुछ भेद जाना ।

कर्णमूलः—किं सफलो न भविष्यति कुमारनियोगो विशेषोपलम्भेन ।

पाण्डुः—कथय ।

कर्णमूलः—श्रूयताम् । उपरुद्धमस्मत्सैनिकैः पुरम् ।

पाण्डुः—किमेतत्परिज्ञानाय प्रेषितोऽसि । विदितं खल्विदं सर्वेषाम् ।

कर्णमूलः—(सर्वतो विलोक्य ।) एतदेव प्रस्तोतुमयमवसरः ।

पाण्डुः—विस्रब्धं कथय । किं न जानासि अस्मच्छरीराण्येव कीलैते ।

कर्णमूलः—देव, भवदाज्ञया प्रविष्टोऽस्मि पुंडरीकपुरम् । तत्राद्राक्षं च सन्निरीक्षणैकपरे ईक्षणे । निगमार्थश्रवणप्रसिते श्रवसी । शिवनिर्माल्य-

---

कर्णमूल—विशेष जानकारी से कुमार की आज्ञा क्यों नहीं पूरी होगी ।

पाण्डु—कहो, कहो ।

कर्णमूल—सुनिये ! हमारे सैनिकों ने शत्रु के पुर को घेर लिया है ।

पाण्डु—क्या यही जानने के लिए भेजा था । यह तो सबको पता ही है ।

कर्णमूल—(चारो ओर देख कर)—इस रहस्य को कहने का यह समय है ।

पाण्डु—विश्वास के साथ कहो । क्या तुम नहीं जानते, कि ये हमारे ही शरीर हैं ।

वक्तव्य—कादम्बरी में भी ठीक यही वचन कपिञ्जल के लिये महाश्वेता ने कहे हैं । यथा—

भगवन् ! अव्यतिरिक्तो यमस्मच्छरीरादशङ्कितमभिधीयताम् ॥

कर्णमूल—देव ! आपकी आज्ञा से मैं पुंडरीक पुर में प्रविष्ट हुआ । वहाँ पर मैंने देखा कि (जीव राजा की) आँखें सात्त्विक, निवृत्ति

गन्धसन्तर्पितं घ्राणम् । विबुधामृतास्वादनैकतानां रसनाम् । त्रेताभस्मावगुण्ठितां त्वचम् । धर्मार्थसंग्रहीतारौ करौ । तदर्थं कृतसंचरणौ चरणौ । चिरंतनसरस्वतीचिकुरपरिमलामोदसदनं वदनं च । तद्दर्शनेन क्वचिदपि स्थलमलभमानः स्थातुमपि नाशक्नुवम्, किं पुनर्देवस्याज्ञां परिपालयितुम् ।

कुष्ठः—(विहस्य ।) अनासारवर्षणमजागलस्तनसमवस्थं तव गमनागमनं च ।

सन्निपातः—कुष्ठ, सावशेषमिव तव वचनम् ।

के उपयोगी सन्मार्ग को देखने में लगी हैं, कान-वेद सम्बन्धि बातों को सुनने में लगे हैं, नासिका—शिवनिर्माल्य की गन्ध से सन्तुष्ट है, जिह्वा—भगवान के लिये निवेदित अवशिष्ट अन्नरूपी अमृत के आस्वादन में ही लगी है, त्वचा पर दाक्षिणाग्नि; गार्हपत्य और आह्वनीय इन तीनों अग्नि की भस्म लगी हुई है, दोनों हाथ धर्म और अर्थ का संग्रह कर रहे हैं, धर्म और अर्थ के आचरण में पैर गमनागमन कर रहे हैं, मुख श्रुति की मञ्जरियों के (उपनिषद) सुगन्ध वाल पराग के रहने का स्थान है (वेदान्त के रहस्य का आस्वादन में लगा हुआ है)। इस इन्द्रिय समूह के दर्शन से कहीं पर खड़े रहने योग्य स्थान भी नहीं मिल सका, फिर आप स्वामी की आज्ञा का पालन करना तो दूर रहा ।

वक्तव्य—उपनिषद् के लिये 'चिरन्तन सरस्वती चिकुर' शब्द यतिराजसप्तति में भी आया है,

"क्षरन्त्यमृतमक्षरं यति पुरन्दरस्योक्तयश्चिरन्तनसरस्वती चिकुर बन्धसैरन्ध्रिकाः ॥"

कुष्ठ—(हँस कर) बिना मतलब की बात है, तेरा जाना आना तो बकरी के गले के स्तनों की भाँति व्यर्थ ही हुआ ।

वक्तव्य—आसार–धारा रूप में जल का बरसना, बेला जहाँ पर नहीं होता 'अनासार वर्णन'

संनिपात—कुष्ठ, तुम्हारे बचन में अभी कुछ बाकी है ।

कुष्ठः—स्वामिपोषितस्वकलेवरनिरर्थकता च ।

कर्णमूलः—जाग्रति मच्छिरसि महाराजपादपङ्कजरेणौ कथमेतद्भविष्यति ।

पाण्डुः—ततस्ततः ।

कर्णमूलः—ततश्च ।

तस्मिन्पुरे स्थानमहं विचेतुं चरन्समन्तात्क्वचिदप्यपश्यम् ।
त्रिष्वाशयेषु स्थितिमत्स्वशङ्कं संचारितं केन च पङ्गुयुग्मम् ॥२६॥

कुष्ठ—स्वामी की जीविका से वर्धित इस अपने शरीर की निरर्थकता भी ।

कर्णमूल—महाराजा यक्ष्मा के पैरों की धूलि मेरे सिर पर रहने से मेरे शरीर की निरर्थकता कैसे हो सकेगी ।

पाण्डु—इसके पीछे फिर—

कर्णमूल—तब—

२६—उस पुर में ठहरने के स्थान को ढूँढने के लिये चारों ओर फिरते हुए मैंने कहीं पर तीन आशयों में स्थान प्राप्त किए किसी से शंका पूर्वक ले जाते हुए दो पंगुओं को देखा ।

वक्तव्य—इस श्लोक में शरीर के तीन धातु, वात, पित्त, कफ का उल्लेख है; इनमें पित्त और कफ तो पंगु हैं, और वायु इनको चलाने वाला है;

"पित्तं पंगु कफः पंगु पंगुवो मल धातवः ।
वायुना यत्र नीयन्ते तत्र गच्छति मेघवत् ॥

ये वात-पित्त-कफ यद्यपि सम्पूर्ण शरीर में आपाद मस्तक व्याप्त हैं; तो भी नाभि के नीचे; हृदय और नाभि के बीच में और हृदय के ऊपर रहते हैं

"ते व्यापिनोऽपि हृन्नाभ्योरधोमध्योर्ध्वसंश्रयाः ॥" चरक में—

"तेषांत्रयाणामपि दोषाणांशरीरे स्थान विभाग उपदेक्ष्यते तद्यथा–

पाण्डुः—(स्वगतम् ।) वायुसंचार्यमाणं कफपित्तयोर्युगं तद्भवेत् । (प्रकाशम् ।) ततस्ततः ।

कर्णमूल——तस्मादन्तःपुरस्चारिणः पङ्गुयुग्मात्तत्संचारयतः पुरुषाच्च प्रवृत्तिरुपलब्धुं शक्येति तच्च तं चोपासर्पमहम् । स च तच्च मय दृष्टमात्रे—

भद्र गच्छ परिसर्प मा कुतो देशतस्त्वमसि नन्विहागतः ।
कस्य वा वद परिग्रहो भवानित्यपृच्छदथ सोऽपि तच्च माम्॥२७॥
भो भो भद्रमुखाः परिग्रहतया कस्यापि नाहं स्थितो
रात्रिं नेतुमिहागतोऽस्मि नियतं सायाह्नि भिक्षाटनम् ।

वस्तिपुरीषाधानं कटिः सक्थिनी पादावस्थीनि पक्वाशयश्च वातस्थानि; तत्रापि पक्वाशयो विशेषेण वातस्थानम् । स्वेदो रसो लसीका रुधिरमामाशयश्च पित्तस्थानानि, तत्राप्यामाशयो विशेषेण पित्तस्थानम् । उरः शिरो ग्रीवापर्वाण्यामाशयो मेदश्च श्लेष्म स्थानानि; तत्रापि उरो विशेषेण श्लेष्मस्थानम् ॥ चरक । सुश्रुत में यह विषय आया है; वात पित्तश्लेष्माण एव देह सम्भव हेतवः । तैरेवाव्यापन्नैरधामध्योर्ध्वं-सन्निविष्टैः शरीरमिदं धार्यतेऽगारमिव स्थूणाभिः तिस्टभिः, अतश्चत्रि-स्थूणमाहुरेके ॥ सुश्रुत ।

पाण्डु—(अपने आप ही) वायु से संचारित कफ और पित्त ये दोनों वे होंगे (स्पष्ट रूप में) इसके पीछे ।

कर्णमूल—अन्तःपुर में विचरने वाले उन दोनों पंगुवों से तथा इन पंगुवों को चलाने वाले पुरुष से शत्रु सम्बन्धि रहस्य को जानना सम्भव है; इसलिये उनके (पंगुवों के) और उनके (वायु के) पास मैं पहुँच गया । वह (वायु) और वे (पंगु) मुझ (कर्णमूल) को देखते ही—

२७—हे साधु ! यहाँ मत आ; यहाँ से बाहर चला जा, इस प्रदेश में तुम कौन से देश से आये हो ? किसके तुम सम्बन्धि-रिश्तेदार हो; यह बात उसने और उन दोनों ने मुझसे पूछी ।

स्थानं मे यदि शक्यतेऽपगतये प्रातस्तदादीयता-
मित्युक्ते तु मया तदन्तरुदभूदन्योन्यमालोचना ॥ २८ ॥

अनन्तरं च कार्यान्तरव्यापृते च राजनि नूतनपुरुषपरिमार्गणपरे च नागरिके, भिक्षो, रात्रौ नावसरस्त्वादृशामत्र शयितुमित्युक्तवत्सु तेषु, क कार्ये राजा व्याप्रियते कुत एवं भिक्षुकाणामप्युपरोध इति पृष्टवानस्मि।

पाण्डुः—ततस्ततः।

कर्णमूलः—तेऽपि मां भद्रेत्यामन्त्र्य समकथयन्।

पुण्डरीकपुरे मन्त्रिप्रेरितः परमेश्वरम्।
आराद्धुं गतवान्राजा मनोद्वारेण तिष्ठति ॥ २९ ॥

किं च।

२८—हे हे भद्रमुख वाले तीनों पुरुषो! मैं किसी का भी सम्बन्धी नहीं हूँ; सायंकाल में भिक्षा माँगना नियत है; यहाँ मैं रात्रि व्यतीत करने के लिए आया हूँ। प्रातःकाल में चले जाने के लिये यदि मुझे यहाँ स्थान देना सम्भव हो तो, दे दीजिये। मेरे ऐसा कहने पर उनमें परस्पर मंत्रणा प्रारम्भ हुई।

और इसके पीछे—जीवराजा के राजकीय कार्यों में लगे होने पर, नगर के रक्षक के नये आदमियों के ढूँढने में तत्पर होने पर हे भिक्षुक! तुम जैसों के लिये रात्रि में यहाँ सोने का समय नहीं है; उनके ऐसा कहने पर मैंने पूछा कि राजा कौन से राज्यकार्य में लगा है जिससे भिक्षुकों को भी रोक दिया है।

पाण्डु—इसके पीछे—

कर्णमूल—वे भी मुझे भद्र (साधु) कहकर कहने लगे।

२९—राजा जीव मंत्री से प्रेरित होकर ईश्वर की उपासना करने के लिए मन के मार्ग से जाकर पुंडरीकपुर में बैठा है।

और भी—

शत्रुनिरुद्धे च पुरे परिसर्पाशङ्कया नगरगुप्त्यै ।
नागरिकाशिक्षणमिति प्रावोचन्मां तदानीं ते ॥ ३० ॥

अत्रान्तरे विजृम्भमाणं यामिककलकलमश्रृणवम् । श्रुत्वा च कथंचिल्लब्धावकाशः स्वामिकार्यगौरवादागतोऽस्मि ।

पाण्डः—(आकाशे लक्ष्यं बद्ध्वा सोपहासम् ।) रे रे मन्त्रिहतक, अस्मज्जयार्थं सहजवैरिणं रसं साधयितुं किल तव प्रयत्नः । तर्हि पश्य ।

साधितोऽपि स किं कुर्याद्रसः पथ्यक्रमं विना
जिह्वाचापलमुद्भाव्य स एव ध्वंसयिष्यते ॥ ३१ ॥

किं च । भक्त्या तं घटयित्वा चतुरोऽपि पुमर्थांस्तस्य साधयितुं किलायमपरो यत्नस्तत्रापि प्रतिविधास्यते ।

३०—पुर के शत्रुओं से घेर लेने पर गुप्तचरों की शंका के कारण नगर की रक्षा के लिए—नगर की रक्षा करने वाले अध्यक्ष (कोतवाल) ने यह प्रबन्ध किया है; ऐसा तब उन्होंने मुझे कहा ।

इसी बीच में प्रहरियों के बढ़ते हुए शोर को मैंने सुना । इसे सुनकर किसी प्रकार से अवसर मिलने पर स्वामि के कार्य की महत्ता से मैं आ गया हूँ ।

पाण्ड—[आकाश में दृष्टि लगाकर—हँसी के साथ] हे हे दुष्ट मन्त्री ! हमारी विजय के लिये हमारे जन्म के वैरी रस को (पारद को) सिद्ध करने के लिये तेरा प्रयत्न है । तो देख—

३१—वह पारद परमेश्वर की कृपा से देहसिद्धि के लिये सिद्ध कर लेने पर भी पथ्य विधि के बिना क्या कर सकता है ? वही रस जिह्वा में लोलुपता को उत्पन्न करके शरीर का नाश कर देगा ।

और भी, भक्ति (श्रद्धा) से इस जीव को मिलाकर चारों पुरुषार्थों को प्राप्त कराने का उस विज्ञान शर्मा मन्त्री का यह दूसरा प्रयत्न है । इसका भी उपाय करूँगा ।

कर्णमूल—(सप्रश्रयम्।) देव, युगविगमसमयसमसमुदितमार्तण्ड मंडलस्येव।खंडितप्रतापस्य तवापि कियान्स रसः शोषणे वा तस्य तव किं न महिमातिशयः। तथाहि।

दृष्ट्वा वैरिचमूसमूहमवशादुद्वेलमुज्जृम्भित-
क्रोधात्संगररङ्गसीमनि भवत्युद्दामबद्धादरे।
जीवः क्वः क्व च तस्य मन्त्रिहतको विज्ञानशर्मा पुन-
र्दृश्येरन्क तृणाग्नितुल्यमहसस्तस्याल्पसारा रसाः॥३२॥

पाण्डुः—आः, अस्त्वेतत्। भद्र, कथय कीदृशी प्रकृतीनां प्रवृत्तिः।

वक्तव्य—आकाशभाषित—"किं ब्रवीष्येवमित्यादि विना पात्रं ब्रवीति यत्। श्रुत्वेवानुक्तमप्येकस्तत् स्यादाकाश भाषितम्॥

कर्णमूल—[अति नम्रता के साथ] देव! प्रलय काल में एक साथ उत्पन्न बारह सूर्यों के समान अप्रतिहत पराक्रम वाले आपके सामने वह रस क्या है? अथवा उस रस को सुखाने में आपका क्या असाधारण प्रभाव नहीं है? क्योंकि

३२—शत्रु सैन्य समूह को देखकर स्वतः ही असीमित रूप में बढ़ते हुए क्रोध के कारण आपके युद्ध भूमि में अतिशय श्रद्धा करने पर जीव राजा कहाँ रहेगा और उसका दुष्ट मन्त्री वह विज्ञान शर्मा कहाँ दिखाई देगा, तथा तृणाग्नि के समान तेजस्वी थोड़े सार वाले उसका रस कहाँ रहेगा [वह तो भाग ही जायेगा, नष्ट हो जायेगा]। *

वक्तव्य—पारद के नाम "रसो रसेन्द्रः सूतश्च पारदो मिश्रक-स्तथा। इति पंचविधो जातः क्षेत्र भेदेन पारदः॥

पांडु—हाँ, ऐसा ही सही; भद्र! यह तो बताओ कि पौर जनों की प्रवृत्ति कैसी है।

वक्तव्य—प्रकृति शब्द एक अर्थ में पौरजन के लिये और दूसरे अर्थ में वात-पित्त-कफ के लिए है।

---

* पाठान्तर—उद्दाम वद्धादरे के स्थान पर "श्रद्धानिबद्धादरे" है।

के स्वामिनि दृढभक्ताः के प्रबलाः के च दुर्बला नगरे ।
अरिमित्रोदासीनाः के पुनरङ्ग त्वया दृष्टाः ॥ ३३ ॥

कर्णमूलः—कथयामि देव, श्रूतयाम् ।

तत्र प्रकृतयस्तिस्रो वातपित्तकफात्मकाः ।
तत्र यः प्रबलो वातः स तु स्नेहैर्वशीकृतः ॥ ३४ ॥

किं च ।

तदनुगतं यत्पित्तं मधुरमयैस्तद्विजेयमुपचारैः ।
पङ्गुर्यस्तत्र कफस्तीक्ष्णोपायैर्वशं स चानीतः ॥ ३५ ॥

३३—हे अंग (मित्र)! पुर में जीवराज के प्रति अतिशय प्रीति वाले कौन हैं? बलवान कौन हैं? और दुर्बल कौन है? उस जीवराज के कौन शत्रु कौन मित्र और कौन उदासीन तुमने देखे हैं?

कर्णमूल—कहता हूँ, देव! सुनिये—

३४—वहाँ (शरीर में) पर वात, पित्त, कफ रूपी तीन प्रकृतियाँ हैं; इनमें जो प्रबल वात प्रकृति है; उसे स्नेह से वश में कर लिया है।

और भी—

३५—इस वायु के पीछे चलने वाला जो पित्त है; उसे मधुर मय उपायों से जीतना चाहिए (ऐसा जीवराज ने निर्णय किया है) वहाँ पर जो पंगु कफ है; उसको तीक्ष्ण उपायों से वश में किया है।

वक्तव्य—प्रकृति—"शुक्रशोणित संयोगे योभवेद्दोष उत्कटः। प्रकृतिर्जायते तेन...।" सुश्रुत। २—तत्र प्रकृत्यादीन् भावाननुव्याख्या स्यामः। तद्यथा-शुक्रशोणित प्रकृतिम्, कालगर्भाशय प्रकृतिम्, आतुराहारविहार प्रकृतिम्, महाभूत प्रकृतिं च गर्भ शरीर प्रकृतिम्। एतानि हि येन येन दोषेणाधिकतमेनैकेनानेकेन वा समनुबध्यन्ते, तेन तेन दोषेण गर्भोऽनुबध्यते ॥ चरक। ३—शुक्रार्त्तवस्थैर्जन्मादौ विषेणेव विषकृमेः। तैश्च तिस्रः प्रकृतयो हीन मध्योत्तमाः पृथक्। संग्रह। इन दोषों में वायु ही सब को प्रेरणा

पाण्डुः—अथ कीदृशो मनसो वृत्तान्तः ।

करता है ; यथा—"वायुस्तंत्रयन्त्रधरः, प्राणोदान समान व्यानापानात्मा ; प्रवर्त्तकश्चेष्टानामुच्चावचानां ; नियन्ता प्रणेता च मनसः सर्वेन्द्रियाणा मुद्योजकः ; सर्वेन्द्रियार्थानामभिवोढ़ा ; सर्व शरीर धातुव्यूहकरः ; सन्धानकरः शरीरस्य ; प्रवर्त्तकोवाचः, प्रकृति स्पर्श शब्दयोः, श्रोत्रस्पर्श नयोर्मूलं ; हर्षोत्साहयोर्योनिः समीरणोऽग्नेः, दोष संशोषणः, क्षेप्ताबहिर्म लानाम्, स्थूलाणु स्रोतसांभेत्ता ; कर्त्ता गर्भाऽऽकृतीनां ; आयुषोऽनु-वृत्तिप्रत्यय भूतो भवत्यकुपितः ॥ इस वायु की शान्ति—तं मधुराम्ल लवण स्निग्धोष्णैरूपक्रमैरूपक्रमेत् ॥ चरकः । वातस्योपक्रमः स्नेहः"—संग्रह ।

पित्त-वायु के पीछे चलता है ; वायु से ही अग्नि बढ़ती है । (पवन जलावत आगि को पवन देत बुझाये) इसी से चरक में 'समीरणोऽग्नेः' यह शब्द वायु के लिये आया है । शरीर में पित्त के अतिरिक्त दूसरी अग्नि नहीं है । इसलिये पित्त की शान्ति के लिये शीतल-मधुर उपाय हैं ; यथा—"तं मधुर तिक्त कषायै शीतरूपक्रमैरूपक्रमेत ॥" चरक ।

कफ-जड़ है ; मन्द है ; इस लिये तीक्ष्ण उपाय बताये हैं; यथा—तं कटुकतिक्त कषाय तीक्ष्णोष्णरुक्षैरूपक्रमेत् ॥ २—श्लेष्मणाविधिना युक्तं तीक्ष्णं वमनरेचनम् । अन्नं रुक्षाल्प तीक्ष्णोष्णं कटुतिक्त कषायकम् ॥

इस प्रकार से जहाँ पर शरीर की प्रकृतियों को वश में लाया गया है, वहाँ पर नगर के प्रजाजनों को स्नेह से, दान आदि से; मधुर उपायों से-साम से ; तथा तीक्ष्ण उपायों से-दण्ड और भेद से वश में किया गया है । सब प्रकृतियाँ जीव राजा के अधीन हैं ।

पाण्डु—मन का व्यपार (चेष्टा) कैसा है ?

वक्तव्य—"मन के व्यापार—"

चिन्त्यं विचार्यमुह्यं च ध्येयं संकल्प्यमेव च ।
यत्किंचिन्मनसोज्ञेयं तत्सर्वंह्यर्थसंज्ञकम् ॥

कर्णमूलः—

उद्दामबुद्धिविभवेन मनस्तु तत्र
विज्ञानशर्मसचिवेन वशीकृतं सत् ।
कार्ये महत्यधिकृतं हितकारि राज्ञः
सर्वात्मनाप्यनुसरत्यधुना तमेव ॥ ३६ ॥

पाण्डुः—अथ विज्ञानशर्मस्पर्धिनो ज्ञानशर्ममन्त्रिणः कीदृशः प्रकारः ।

इन्द्रियाभिग्रहः कर्म मनसः स्वस्य निग्रहः ।
ऊहो विचारश्च ; ततः परं बुद्धि प्रवर्त्तते ॥ चरक ।

३६—कर्णमूल—उस पुर में अतिशय बुद्धि के ऐश्वर्य से विज्ञान शर्मा मंत्री ने मन को बल पूर्वक अधीन करके बड़े महत्त्वपूर्ण कार्य में (इन्द्रियों को वश में करने के कार्य में) लगा दिया है ; इससे वह मन राजा का हितकारी बनकर सम्पूर्ण रूप से जीवराजा का ही अनुसरण कर रहा है ।

पाण्डु—विज्ञान शर्मा के साथ स्पर्धा करने वाले प्रतिद्वन्द्वी ज्ञान शर्मा का कैसा प्रभाव है ?

वक्तव्य—ज्ञानशर्मा मुक्ति के मार्ग में प्रवृत्त करने वाला मन्त्री विज्ञानशर्मा—योग में प्रवृत्त करने वाला मन्त्री । यथा—"मोक्षे धीर्ज्ञानमन्यत्र विज्ञाने शिल्पशास्त्रयोः"—अमरकोश । चरक में भी इस विषयक उल्लेख है; यथा—

योगे मोक्षे च सर्वासां वेदनानामवर्त्तनम् ।
मोक्षे निवृत्तिर्निःशेषा: योगो मोक्ष प्रवर्त्तकः ॥

गीता में भी ज्ञान-विज्ञान का विचार आता है; यथा—

ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा कूटस्थो विजितेन्द्रियः ।
युक्त इत्युच्यते योगी समलोष्टाश्मकाञ्चनः ॥ ६।८ ।

कर्णमूलः—

विज्ञानमन्त्रिमन्त्रैर्विविधैरसकृद्विधूतनिजशक्तिः ।
स ज्ञानशर्मन्त्री तिष्ठति केवलमसौ स्वरूपेण ॥ ३७ ॥

एवंविधविविधविचित्रचरित्रविस्मापितसकललोकस्य स्वामिहितकरणैकतानस्य तस्य मन्त्रिणः पारे खलु वाङ्मनसोश्चरिताद्भुतानि । तथाहि—

तत्तद्दुर्घटराजकार्यघटनाव्यापारपारीणया
शक्त्या दुष्प्रसहस्य तस्य वचनैर्नानोपपत्त्यन्वितैः ।
निर्द्वन्द्वोऽपि स निर्गुणोऽपि च निराकारोऽपि निर्लेपनो-
ऽप्याः कष्टं प्रतिपक्षतामुपगतो जीवो विचेष्टेत नः ॥३८॥

कर्णमूल–३७–विज्ञान शर्मा मन्त्री की विशेष युक्तियों से अनेक बार अपनी शक्ति के तिरस्कृत होने के कारण वह ज्ञान शर्मा मन्त्री केवल अपने स्वरूप मात्र से रहता है (उसका कोई प्रभाव नहीं) ।

इस प्रकार से (प्रकृति-मन-बुद्धि-ज्ञानशर्मा को वश करके) नाना प्रकार के आश्चर्यजनक कार्यों के द्वारा सम्पूर्ण मनुष्यों को आश्चर्य में डाल देने वाले एवं स्वामि के अनुकूल सदा रहने वाले उस विज्ञान शर्मा मन्त्री के चरित वाणी और मन से भी परे हैं; (वाणी और मन से भी अवर्णनीय अचिन्तनीय हैं) । और भी

३८—अतिशय कठिनाई से पूरा होने वाले राज्य कार्यों को पूरा करने में समर्थ शक्ति वाले एवं अनाक्रमणीय उस मन्त्री के तर्क पूर्ण नाना प्रकार के वचनों से वह जीव राजा निर्द्वन्द्व (सुख-दुःख; राग द्वेष से रहित); निर्गुण (सत्त्व, रज, तम से रहित), निराकार (सर्व व्यापी), निर्लेप (अनासक्त) होता हुआ भी हमारी शत्रुता के कारण कष्ट से प्रवृत्त हो रहा है [कष्ट अनुभव कर रहा है]

वक्तव्य—जीव के लिये वचन भी है "तेजस्वरूपो निर्द्वन्द्वो निराकारो निराश्रयः । निर्लिप्तो निर्गुणः साक्षी ॥" २—एतत्सत्यं ब्रह्मपुरमस्मिन्कामाः समाहिता एष आत्माऽपहतपाप्मा विजरो विमृत्युः

तस्मादेवंस्थिते प्रकृतिमंडले दुर्भेद्ये च शत्रुपक्षे महद्भयमाहितमापतिष्यति । (इति भयं नाटयति ।)

पाण्डुः—(विचिन्त्य ।) मा बिभिहि । तत्रापि काचिदस्त्यत्राबिता नीतिः ।

कर्णमूलः—कीदृशी ।

पाण्डुः—श्रूयताम् ।

यच्चञ्चलं प्रकृत्या विषयेषु मनो निसर्गदुर्दान्तम् ।
तत्कामादिभिरेतैर्भेदयितुं शक्यते शनकैः ॥ ३९ ॥

विशोको विजिघत्सोऽपिपासः सत्यकामः सत्यसंकल्पो........। छान्दोग्य ८।५ ।

इस प्रकार से प्रकृति मंडल के (पौरजनों के और वातादि प्रकृति के) रहने पर और शत्रुपक्ष के दुर्भेद्य होने पर कोई महान भय आयेगा [ऐसा कहकर भय का नाट्य करता है] ।

पाण्डु—[सोचकर] डरो मत । उस विषय में भी कोई अमोघ नीति है ।

कर्णमूल—किस प्रकार की--

पाण्डु—सुनो !

३९—क्योंकि मन प्रकृति से ही चंचल है; रूप-रस-गन्ध-स्पर्श-शब्द इन विषयों में स्वभाव से ही अनियंत्रित होता है । इसलिये अपने पास जो ये काम-क्रोध-लोभ-मोह आदि हैं; उनकी सहायता से क्रमशः इसका भेद (विरोध) करना सम्भव है ।

वक्तव्य—गीता में भी आता है—

चंचल हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद् दृढम् ।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम् ॥

अन्यत्र भी कहा है—

अपि च प्रभूतमदमेदुरात्मनो विषयाटवीषु विविधासु धावतः ।
स्वबलेन हन्त मनसो निवर्त्तनं विसतन्तुनेव सुरदन्ति यन्त्रणम् ॥

तस्मिन्सर्वविषयाधिष्ठाने मनसि वाधीने सुकर एव कार्यशेषः । किं च याः किलाद्यास्तत्र तिस्रः प्रकृतयस्तासु यस्तीक्ष्णोपायैः संयमितवृद्धिः श्लेष्मा तस्योपचयं केनाप्युपायेन विधाय तेनैव तावपि क्षोभयितुं शक्येते ।

विज्ञानोऽयं यद्यपि स्वामिभक्त-
स्तत्राप्यस्यासंनिधाने विविक्ते ।
भेदो राज्ञस्तस्य तैस्तैरुपायैः-
शक्यः कर्तुं ज्ञानशर्मोपजापैः ॥ ४० ॥

एवं राजमंत्रिणोर्विरोधेन विश्लिष्टे प्रकृतिमण्डलेऽचिरादेव हस्तगता महाराजस्य यक्ष्मणो जयलक्ष्मीः ।

उस चंचल एवं सब विषयों के आश्रय स्थान मन के अपने अधीन हो जाने पर शेष कार्य सरल ही है । और भी; वहाँ पर जो तीन प्रधान प्रकृतियाँ हैं; उनमें तीक्ष्ण उपायों द्वारा रोकी गई वृद्धि जिसकी, उस श्लेष्मा की वृद्धि किसी उपाय से करके उसी के द्वारा शेष उन दोनों को भी विक्षोभित करना शक्य है ।

वक्तव्य—**मनः पुरःसराणि चेन्द्रियाण्यर्थग्रहण समर्थानि भवन्ति ।"—मन के द्वारा ही इन्द्रियाँ विषय का ग्रहण करती हैं; इसलिये स्वभाव से चंचल मन को अपने अधीन कर लेने पर सब कार्य सुगम हो जायेगा ।**

४०—यह त्रिवर्ग का साधक विज्ञान शर्मा मंत्री यद्यपि स्वामी भक्त है; तथापि इस विज्ञान शर्मा के उस राजा के पास न होने पर एकान्त समय में ज्ञान शर्मा द्वारा किये गये भेदों से उस जीव राजा का विज्ञान शर्मा से भेद करवाना सम्भव है ।

इस प्रकार राजा और मंत्री के परस्पर विरोध के कारण प्रजाजनों के पृथक् हो जाने पर महाराजा यक्ष्मा को विजयश्री शीघ्र ही प्राप्त हो जायेगी ।

कर्णमूलः—(सहर्षम् ।) साधु चिन्तिता मंत्रिवर्येण राजतन्त्रनीतिः ।

पाण्डुः—भद्र, नाद्यापि महाराजनिकटगतोऽत्रायाति कासः ।

(प्रविश्य ।)

गलगण्डः—देव, महाराजपादमूलात्कासः प्राप्तः ।

पाण्डुः—त्वरितं प्रवेशय ।

(ततः प्रविशति गलगंडेनानुगम्यमानः कासः ।)

(कासो जानुभ्यां प्रणम्य किंचिदुपसर्पति ।)

पाण्डुः—भद्र, कीदृशो मयि राजनियोगः ।

कासः—(करपिहितमुखः । कर्णे ।) एवमेवम् ।

पाण्डुः—भद्र, तदर्थमेवेयं बद्धपरिकरता । तिष्ठ त्वमत्रैव । राजानमिममुदन्तमन्यमुखेन प्रापयिष्ये ।

(नेपथ्ये यामप्रहारध्वनिः ।)

कर्णमूल—(हर्ष के साथ) श्रेष्ठ मन्त्री ने राजतन्त्र नीति ठीक प्रकार सोची है ।

पाण्डु—हे भद्र ! महाराज के पास गया हुआ कास अभी तक नहीं आया ।

(प्रविष्ट होकर)

गलगण्ड—देव ! महाराजा के पास से कास आया है ।

पाण्डु—जल्दी से भेजो ।

(इसके पीछे गलगंड के साथ कास आता है । कास घुटनों को झुका कर प्रणाम करके कुछ पास में आ जाता है ।)

पाण्डु—भद्र ! मेरे लिये राजा की क्या आज्ञा है ।

कास—(हाथ से मुख को ढाँप कर कान में कहता है) इस प्रकार ।

पाण्डु—भद्र ! उसी अभिप्राय के लिए ही यह सब तैय्यारी है । तुम यहीं ठहरो । राजा को यह समाचार दूसरे मनुष्य से पहुँचा दूंगा ।

(नेपथ्य में घंटा बजने का शब्द)

पाण्डुः—(श्रुत्वा सैनिकान्प्रति ।) तदहमिदानीं कार्यशेषं निर्वर्त्य प्रकृतकार्यार्थं संनह्यामि । भवन्तोऽपि तावत् ।

बिभ्राणास्तान्युपमितमहाभोगिभिर्बाहुदण्डै-
र्येषां येषां दधति निजतां यानि यान्यायुधानि ।
स्वस्वस्थानेष्ववहितमनोवृत्तयस्त्यक्तशङ्काः
सर्वे तिष्ठन्त्वरिपुरमभिव्याप्य सैन्याः प्रवीराः ॥ ४१ ॥

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे ।)

इति द्वितीयोऽङ्कः।

पाण्डु—(सुन कर सैनिकों की ओर) तो मैं भी अब बचे हुए कार्य को पूरा करके प्रस्तुत कार्य के लिये यत्न करूँगा। आप भी तब तक–

४१—सब पराक्रमी सैनिक अजगर के समान अपनी भुजाओं में अपने अपने धारण करने योग्य गदा-धनुष-तलवार आदि आयुधों को लेकर सावधान मन से सब भय को दूर करके अपने अपने नियत स्थानों पर शत्रु नगर को घेर कर खड़े हो जायें।

(सब निकल गये)

द्वितीय अंक समाप्त

तृतीयोऽङ्कः

[ततः प्रविशति पश्चाद्बद्धं पुरुषं किंकरेण विकर्षन् विचारो नागरिकः ।]

नागरिकः—अङ्ग गद्, कस्त्वमसि ।

पुरुषः—(स्वगतम् ।) किमहं ज्ञातोऽस्म्यनेन गद इति ।

नागरिकः—किं विचारयसि । यदि सत्यं गदसि ततो मोक्ष्यसे ।

पुरुषः—(स्वगतम् ।) नाहमनेन ज्ञातः ।

तृतीयोऽङ्कः ।

(इसके पीछे हाथों को पीछे बाँधे हुए पुरुष को नौकर द्वारा खिंचवाता हुआ विचार नामक नागरिक-नगर रक्षक आता है ।)

वक्तव्य—इस अंक का प्रारम्भ विष्कम्भक अंग से है । इसमें मध्यम गुण वाले पात्र शुद्ध संस्कृत में बीते हुए कथानक को तथा आगे होने वाले कथानक की सूचना देते हैं । यथा—

> वृत्तवर्त्तिष्यमाणानां कथांशानां निदर्शकः ।
> संक्षिप्तार्थस्तु विष्कम्भ आदावङ्कस्य दर्शितः ॥
> मध्येन मध्यमाभ्यां वा पात्राभ्यां संप्रयोजितः ।
> शुद्धः स्यात् स तु ; सङ्कीर्णो नीचमध्य कल्पितः ॥

नागरिक—हे अंग ! कह ; तू कौन है ?

पुरुष—(अपने आप ही) क्या इसने मुझे जान लिया है कि मैं गद (रोग) हूँ ।

नागरिक—क्या सोचते हो ? यदि सत्य कहेगा तो छोड़ दूँगा ।

वक्तव्य—गद शब्द श्लेष रूप में है ; गद शब्द के कहना और रोग दोनों अर्थ हैं । यहाँ पर हृद् रोग को पुरुष में वर्णित किया है ।

पुरुष—(अपने आप ही) इसने मुझे नहीं जाना ।

बिभ्राणो मुखबाहुवक्षसि कृतं पुण्ड्रात्रयं भस्मना
हस्तोपात्तविशुद्धताम्रकलशो रुद्राक्षमाली गले ।
धृत्वा वैदिकवेषमाविशमिह स्वस्वामिना प्रेरितो
हृद्रोगोऽहमरेरवेक्षितुमना जीवस्य राज्ञः स्थितिम् ॥ १ ॥

अनन्तरमनेन नागरिकेण संयमितः । भवतु । एवं ब्रवीमि । (प्रकाशम् ।) आर्य, मुञ्च माम् । विप्रश्निकतामुपजीव्येदं जठरदृतकं पुष्णामि ।

नागरिकः—अस्त्वेतत् । कुतो रात्रिसंचारः ।

१—मैं हृद रोग हूँ ; अपने स्वामी पांडु या राजयक्ष्मा से भेजा हुआ मैं मुख-बाहु और छाती पर भस्म से त्रिपुंड-तीन रेखायें बना कर ; हाथ में विशुद्ध ताम्र कलश को लेकर ; गले में रुद्राक्ष की माला धारण करके ; इस प्रकार से वैदिक वेष को बना कर शत्रु जीवराज की स्थिति को देखने के लिए इस पुर में प्रविष्ट हुआ हूँ ।

वक्तव्य—हृदय रोग पाँच प्रकार के हैं; इनके कारण—

शोकोपवास व्यायाम रुक्ष शुष्काल्पभोजनैः
वायुराविश्य हृदयं जनयत्युत्तमांरुजम् ॥ चरक ।
वेगाघातोष्ण रुक्षान्नैरतिमात्रोपसेवितैः ।
विरुद्धाध्यशनाजीर्णैरसात्म्यैश्चातिभोजनैः ॥
दूषयित्वा रसं दोषा विगुणा हृदयं गताः
कुर्वन्ति हृदये बाधाँ हृद्रोगं तं प्रचक्षते ॥ सुश्रुत ।
अत्युष्णगुर्वन्नकषायतिक्तैः श्रमाभिघाताध्यशन प्रसंगैः ।
सचिन्तनैः वेगविधारणैश्च हृदामयः पंचविधः प्रदिष्टः ॥

इसके पीछे इस नगराध्यक्ष ने जल्दी से पकड़कर और बाँधकर खींचा है । अच्छा इस प्रकार कहता हूँ (स्पष्ट रूप में) हे आर्य ! मुझे छोड़ दो; दैवज्ञ-ज्योतिषी की वृत्ति से इस दुष्ट उदर का पालन कर रहा हूँ ।

नागरिक—ठीक है; परन्तु रात्रि में क्यों फिरते हो ।

पुरुषः—यस्यकस्यचिद्यत्किंचिद्भाविफलमुक्त्वा पारितोषिकं गृह्णामीति ।

नागरिकः—किं दिवसस्ते तत्कर्मणो न पर्याप्तः ।

पुरुषः—बाढम् । श्रूयताम् ।

यामो यात्यविलम्बितं दिनमुखे स्नानादिभिः कर्मभिः
पश्चाद्भिक्षितुमारभे प्रतिदिनं धान्यानि वा तण्डुलान् ।
तैरन्नान्युपपाद्य पञ्च च महायज्ञान् विधायाश्नति
श्रीकण्ठय निवेद्य मद्यतिथये दत्त्वा च गच्छत्यहः ॥ २ ॥

किंकरः—अये, युक्तमिदम् । इह तु यामादूर्ध्वं रुध्यते नगरसंचारः ।

पुरुष—जिस किसी का भी जो कुछ भी होने वाला फल कहकर पारितोषक लेता हूँ ।

नागरिक—क्या सारा दिन तेरे काम के लिए पूरा नहीं है ?

पुरुष—हाँ नहीं है; सुनिये ।

२—प्रातःकाल में स्नान-संन्ध्या-जप आदि कामों में ही दिन का पहला प्रहर जल्दी से बीत जाता है; इसके पीछे प्रतिदिन धान्य या चावलों की भिक्षा माँगना प्रारम्भ करता हूँ ; उन चावलों से भोजन को बनाकर और पाँच महायज्ञों को (ब्रह्मयज्ञ, पितृयज्ञ, देवयज्ञ, भूतयज्ञ और मनुष्ययज्ञ) करके; महेश्वर को भोग लगाकर और अतिथि को देकर खाने में ही सारा दिन निकल जाता है (इसलिए रात्रि में भिक्षा माँगता हूँ) ।

वक्तव्य—अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः, पितृयज्ञस्तु तर्पणम् ।
होमो दैवो, बलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथि पूजनम् ॥

किंकर—अये ! यह तो ठीक है; परन्तु इस नगर में तो रात्रि के एक प्रहर के पीछे नगर में घूमना रोक दिया जाता है (कर्फ्यु लग जाता है) ।

पुरुषः—यदीदानीं यामादूर्ध्वं कालस्तर्हि न संचरामि निद्रा स्थानं गच्छामि।

किंकरः—कुत्र निद्रास्थानम्।

पुरुषः—धर्मशालायाम्।

नागरिकः—किमिदं राजमन्दिरं तव धर्मशाला। अत्र हि—

नोंकारः पवते न गीतिरटति स्वाहेति न श्रूयते
न न्यायव्यवहारतारवचसः सङ्घीभवन्ति द्विजाः।
नात्युच्चैः पृषदाज्यहोमसुरभिर्धूम्या जरीजृम्भते
भुक्त्वाः पञ्चजनाः स्वपन्ति परितो न स्त्री कुमारो न च॥३॥

पुरुषः—अस्त्विदराज मन्दिरः तथापि सुप्रवेशमस्मादृशामिति श्रुतमस्ति।

नागरिकः—सुप्रवेशमिति कस्मात्त्वया श्रुतम्।

पुरुष—यदि अब रात्रि के एक प्रहर से अधिक समय हो गया है, तो नहीं घूमूँगा; सोने के स्थान में जाता हूँ।

किंकर—सोने का स्थान कहाँ है?

पुरुष—धर्मशाला में।

नागरिक—क्या यह राजमन्दिर तेरी धर्मशाला है; क्योंकि यहाँ—

३—ओंकार (प्रणव) का शब्द सुनाई नहीं देता; सामगान भी नहीं होता; स्वाहा भी सुनाई नहीं देता; तर्कशास्त्र या धर्मशास्त्र की चर्चा ऊँची ध्वनि से करते हुए ब्राह्मण लोग भी यहाँ एकत्रित नहीं होते; पृषत्-दधि विन्दु मिश्रित घृत के होम से सुगन्धित धूम भी बहुत ऊँचा नहीं निकल रहा; भोजन करके (सदाव्रत रूप में मिला) मनुष्य भी चारों ओर नहीं सो रहे; स्त्री और कुमार भी यहाँ नहीं सो रहे (फिर यह धर्मशाला कैसी?)

पुरुष—भले ही राजमन्दिर हो; तथापि हम जैसों के लिए यह सुगमता से प्रवेश योग्य है; ऐसा सुना है।

नागरिक—यह राजमन्दिर सुगमता से प्रवेश योग्य है; यह किससे सुना है।

पुरुषः—आर्यमिश्रेभ्य एव ।

नागरिकः—हन्त, किमस्माभिरिदं कथितम् ।

पुरुषः—नहि नहि । अन्यजनैः ।

नागरिकः—कैस्ते कथितम् । यदिदं परिचितजनस्यापि राजशासनमन्तरेण दुष्प्रवेशम्, किं पुनरपरिचितस्य ते ।

किंकरः—विसंस्थुलेवास्य वचनव्यक्तिः गृहीत इव चोरस्तरलतारकविलोचनः पश्यन्नयं वक्तुं न शक्तः प्रत्युत्तरं । ततश्चर इव लक्ष्यते ।

नागरिकः - तर्हि शिक्षयतु भवानिमम् ।

किंकरः—अरे, कथय तथ्यम् । मृषावादिनस्तव वैदिकता राजशासनस्य न प्रतिरोधिनी । (इति कशामुद्यच्छति ।)

पुरुष—आर्यमिश्रों से (सज्जनों से) ।

वक्तव्य—सज्जनों के लिए आर्यमिश्र शब्द अन्य नाटकों में भी आया है ; यथा—

शाकुन्तलमें—ननु आर्यमिश्रैः प्रथममेवाज्ञप्तम् ।

विक्रमोर्वशीयमें भी—आर्यमिश्रान् विज्ञापयामि ॥

नागरिक - हैं; क्या मैंने ही यह कहा है ?

पुरुष--नहीं नहीं; दूसरे मनुष्यों ने ।

नागरिक—वे कौन हैं; जिन्होंने कहा है; क्योंकि यहाँ तो बिना राजा की आज्ञा के परिचित मनुष्य का भी जाना कठिन है; फिर तुझ जैसे अपरिचित की तो बात ही क्या ?

किंकर—इसकी बातें तो असम्बद्ध की भाँति (बकवाद की भाँति) हैं । पकड़ा हुआ चोर जिस प्रकार से अपनी चंचल पुतली वाली आँखों से (इधर उधर) देखता है; उसी प्रकार यह भी देखता हुआ प्रत्युत्तर देने में समर्थ नहीं है । इसलिये गुप्तचर की भाँति दीखता है ।

नागरिक—ऐसा है तो तुम इसको दण्ड दो ।

किंकर--अरे; सच कह ! झूठ बोलने वाले तुझको यह वैदिक वेष भी राजदंड से नहीं बचा सकता (ऐसा कहकर चाबुक को उठाता है) ।

पुरुषः—मा ताडय । तथ्यं वदामि ।

नागरिकः—यदि तथ्यं वदसि तदा विज्ञानमंत्रिणं दर्शयित्वा संभावयिष्यामि ।

किंकरः—प्रतीहार्या धारणया सह प्रासादमधिरूढो मंत्री । तत्संनिधौ त्वमपि नेष्यसे ।

पुरुषः—(स्वगतम् ।) तथा चेन्मम दुर्लभमेव जीवितम् । (प्रकाशं भीतिमभिनीय ।) अभयं मे दीयताम् यदि तथ्यमेव श्रोतव्यम् । (इति प्रणमति ।)

नागरिकः—दत्ताभयोऽसि । कथयात्मानम् ।

पुरुषः—(उत्थाय, प्राञ्जलिः ।) हृद्गदोऽस्मि । विसृज माँ दयया ।

नागरिकः—चार एवायं वैदिकवेषमवलम्ब्यागतो दत्ताभयश्च ।

किंकरः—तर्हि किं कर्तव्यम् ।

पुरुष—मत मारो ! सत्य कहता हूँ ।

नागरिक—यदि सत्य कहोगे तो विज्ञानशर्मा मन्त्री के पास ले जाकर बचा लूँगा ।

किंकर—प्रतिहारिणी धारणा के साथ मन्त्री प्रासाद पर बैठे हैं; उनके पास तुमको भी ले जायेंगे ।

पुरुष—(अपने आप ही)-यदि ऐसा हुआ तो मेरा जीवन कठिन है (स्पष्ट रूप में डरे हुए का अभिनय करके)—यदि सत्य ही सुनना चाहते हो तो मुझे अभय दीजिये (इस प्रकार कहकर नमस्कार करता है)।

नागरिक—अभय दान दिया, अपने को बता—

पुरुष—(दोनों हाथों से नमस्कार करता हुआ)—मैं हृद्गद-हृदय-रोग हूँ । दया करके मुझे छोड़ दीजिये ।

नागरिक—यह तो गुप्तचर ही है, वैदिक वेष धारण करके आया है; और इसको अभय दान दे दिया है ।

किंकर—इसलिये क्या करना चाहिये ।

नागरिकः—'श्रुतमिहत्यं राजकार्यं त्वया कस्मैचिदपि न कथनीयम्' इति शपथं गृहीत्वा पुराद्बहिर्विसृज्यताम् । अथवा किमनेन वराकेण कथनीयम् । दत्ताभयोऽयमिति मंत्रिणे निवेद्य कथंचिन्मोचयितव्यः ।

किंकरः—तथा करोमि । (इति निष्क्रान्तः ।)

(नेपथ्ये कुक्कुटध्वनिः ।)

नागरिकः—(आकर्ण्य ।) कथं रजनीविरामः ।

(पुनर्नेपथ्ये ।)

वैतालिकः—

पत्यावस्तं व्रजति विगलच्चञ्चरीकाञ्जनाश्रु
त्रासान्मीलद्दलदृशमितो रागमर्कः करेण ।
द्रागालिङ्गेदपि कुमुदिनीमित्यपन्यायशङ्की
कूकूशब्दं विसृजति जवात्कुक्कुटः पूर्वमेव ॥ ४ ॥

नागरिक—यहाँ के सुने हुए राज्यकार्य को किसी के लिए भी नहीं कहना। यह शपथ इससे लेकर नगर से बाहर छोड़ दो। अथवा इस गरीब को क्या कहना! इसको अभय दान दे दिया है, यह मन्त्री को सूचित करके किसी प्रकार से छोड़ देना चाहिए।

किंकर--ऐसा ही करता हूँ (यह कहकर निकल गया)।

(नैपथ्य में मुर्गे की ध्वनि होती है)

नागरिक—(सुनकर) क्या रात बीत गई ।

(फिर नेपथ्य में)

वैतालिक—

४—पति के मर जाने पर आँखों से अंजन मिश्रित आँसुओं को बहाती हुई, भय के मारे कमल रूपी आँखों को बन्द करती हुई, कि कामुक काम के वश होकर हाथ से मुग्ध कुमुदिनी नायिका को जल्दी से आलिंगन करेगा, इस नीति विरुद्ध शंका के कारण कुक्कट पहिले से ही कू कू शब्द को वेग से कर रहा है ।

द्वितीयो वैतालिकः—

रागं मुखेन दरदर्शिततारकेण
मां व्यञ्जतीमपि समेत्य करेण गाढम् ।
आलिङ्गिता कुमुदिनीति रुषापराद्धि
यातां निशां द्रुतमनुव्रजतीव चन्द्रः ॥ ५ ॥

अपि च

वक्तव्य—पति रूपी चन्द्रमा के अस्त हो जाने पर भ्रमर रूपी अंजन मिश्रित आँसुओं को बहाती हुई; भय के मारे कुमुदिनी अपने पत्तों को बन्द करती हुई, उदय होता हुआ लाल रंग का सूर्य अपनी किरणों द्वारा जल्दी ही मेरा आलिंगन करेगा इस भय की आशंका से कुक्कुट पहिले ही जोर से कू कू शब्द को कह रहा है (चन्द्रमा का अस्त बताते हुए सूर्योदय का वर्णन है) ।

दूसरा वैतालिक—(सूर्योदय का वर्णन करते हुए चन्द्रमा का अस्त बताता है)

५—(रात्रि के पक्ष में)—जिसमें थोड़े से तारे चमक रहे हैं, ऐसे मुख से रक्तिमा प्रकट करती हुई मुझ रात्रि को छोड़कर अपनी किरणों द्वारा चन्द्रमा ने कुमुदिनी का गाढ़ आलिंगन किया; इस क्रोध के कारण अस्ताचल में जाती हुई रात्रि के पीछे चन्द्रमा भी शीघ्र जा रहा है (उषा काल में तारे–थोड़े से दीखते हैं; राग–लालिमा उषाकाल में आ जाती है) ।

(नायक के पक्ष में)— निशा नाम की नायिका के द्वारा पुतलियों को थोड़ा चंचल किये हुए मुख से स्नेह प्रगट करने पर भी कुमुदिनी नाम की नायिका को हाथों द्वारा चन्द्र नाम का नायक दृढ़ आलिंगन कर रहा है; इसलिये क्रुद्ध हुई निशा के दूर जाते हुए चन्द्रमा भी उसी निशा नायिका के पीछे पीछे जा रहा है ।

और भी—

प्रातर्जातमिति द्रुतं प्रशिथिलं बद्ध्वा दुकूलं दृढं
धम्मिल्लं च्युतमाल्यमप्युपवनान्निर्गत्वरीरित्वरीः ।
आकृष्टांशुकपल्लवे कठिनयोरालिङ्गय वक्षोजयो-
राघ्रायाननपङ्कजे च कथमप्युज्झन्त्यहो कामिनः ॥ ६ ॥

नागरिकः—तदधुना राजकार्ये चावहितस्तिष्ठामि । (इति निष्क्रान्तः ।)

शुद्धविष्कम्भकः ।

(ततः प्रविशति प्रासादाधिरूढः प्रतिहार्या धारणया दर्शितमार्गो मंत्री ।)

मंत्री—संप्रति हि ।

६—प्रातःकाल हो गया है; इसलिये रात्रि में विहार करने से ढीले रेशमी वस्त्र को दृढ़ता से जल्दी बाँधकर, जल्दी के कारण जिन केश-पाशों से माला गिर गई है उन केशपाशों को भी जल्दी से बाँधकर क्रीड़ागृह से बाहर निकलने की इच्छा वाली कुलटा कामिनियों को, विलासी पुरुष अति कोमल वस्त्रों के छोरों से खींचकर उनके कठिन स्तनों का आलिंगन करके और कमल के समान उनके मुख को सूँघकर (चुम्बन करके) किसी भी प्रकार (कष्ट से) घर जाने के लिए छोड़ते हैं ।

वक्तव्य—वैतालिक—रात्रि के अन्त में स्तुति पाठ करके राजा को जगाने वाले—"वैतालिको बोधकरः–इत्यमरः । विविधो मंगलगीति-वाद्यादि कृतस्तालशब्दः, तेन व्यवहरतीति वैतालिकः ॥

नागरिक—इसलिये अब मैं भी राज्य कार्य में सावधान हो जाऊँ ।

[सब निकल गये]

शुद्ध विष्कम्भक

(इसके पश्चात प्रासाद पर चढ़े हुए प्रतिहारिणी धारणा द्वारा दिखाये हुए मार्ग से मन्त्री आते हैं)

मन्त्री—अभी—

सोपानानि हिरण्मयानि परितः प्रत्युप्तरत्नान्यहं
पादाभ्यां समतीत्य किंकरगणालम्बी स्वयं पाणिना ।
भित्तिष्वालिखितैर्वृतं खगमृगस्त्रीपुंसवृन्दाचलै-
रारुक्षं निटिलाक्षशैलधवलं प्रासादमभ्रंलिहम् ॥ ७ ॥

(विचिन्त्य स्वगतम् ।) अहो दुरन्तता राजधर्माणाम् ।

आत्मानं परिरक्ष्य दुष्करतपोवृद्धद्विजाराधनै-
र्दानीयेषु च भक्तिपूर्वमसकृद्दानप्रदानैरपि ।
दण्डं दण्डयितव्यमात्रविषयं कृत्वा धरित्रीतले
राज्ञा धर्मपथे मतिं कलयता संरक्षितव्याः प्रजाः ॥ ८ ॥

७—अपने हाथों से भृत्य समूह का सहारा लेकर, चारों ओर इधर उधर खचित नाना रत्नों वाली, स्वर्ण की बनी सीढ़ियों पर पैरों से ही चलकर (राज्य के कार्यभार की अधिकता के कारण इतने पर भी मुझे थकान हो रहा है); दिवारों पर चित्रित पक्षि, मृग, स्त्री, पुरुष और पर्वत वाले, शिव के कैलाश पर्वत के समान धवल; बादलों तक पहुँचने वाले, बहुत ऊँचे प्रासाद-राजमहल पर मैं पहुँच गया हूँ ।

(सोचकर अपने आप ही)—अहो राजकार्य कभी समाप्त नहीं होते, क्योंकि

८—अपने शरीर की रक्षा करके; कठिन तप में बढ़े ब्राह्मणों की पूजा करके, दान के योग्य पुरुषों में बार-बार भक्ति पूर्वक दान योग्य वस्तुओं को देकर, दण्ड के योग्य मनुष्य को ही दण्ड देकर, धर्म मार्ग में अपनी बुद्धि को लगाकर, राजा को पृथ्वीतल पर प्रजा का पालन करना चाहिए ।

वक्तव्य—**राजा को अपनी रक्षा का भार वैद्य को सौंपकर उसके वश में रहना चाहिये । यथा—**

"ईश्वराणां वपुष्मतां विशेषेण तु भूभुजां प्रायेण मित्रेभ्योऽप्यमित्रा भूयांसो भवन्ति । ततस्तत् प्रयुक्ताः समासन्नवर्त्तिनोऽन्नपानादिषु

किंबहुना ।

स्वश्रेयसार्थं यततेऽनिशं यो राज्ञा किलानेन पृथग्विमर्शः ।
स्वस्मिन्नमात्येषु सुहृत्सु राष्ट्रे दुर्गेषु कोषेषु बलेषु कार्यः ॥६॥

निर्ज्ञातसर्वतन्त्रेषु विगूढामोघमन्त्रेषु मंत्रिषु विन्यस्तसमस्तकार्यभरस्य तु राज्ञो निश्चिन्ततैव । परन्तु तेषां व्याकृष्यन्ते दुरन्तया चिन्तया हृदयानि ।

विषं प्रयच्छन्ति । स्त्रियश्च तत्प्रणिधि प्रयुक्ताः सौभाग्यलोभेन । तस्माद् राजा कुलीनं स्निग्धमाप्तमास्तिकमार्यमार्यपरिग्रहं दक्षं दक्षिणं निभृतं शुचिमनुद्धतमनलसमव्यसनिनमनहंकृतमकोपनमसाहसिकं वाक्यार्थाविबोधकुशलं निष्णातमष्टाङ्गे यथाम्नायमायुर्वेदे सुविहित योगक्षेमं सन्निहितागदादियोगं सात्म्यज्ञं च प्राणाचार्यं परिगृह्णीयात् । तमर्थमानाभ्यां यथाकालं गुरुमिवशिष्यः पितरमिव पुत्रः पूजयेत् । प्रतिकूलमपि तद्वचः साम्प्रतं मतमिति प्रतिमन्येत् । नहि भद्रोऽपिगजपतिः निरङ्कुशः श्लाघनीयो जनस्य । तस्मात्तदायत्तमाहार विहारं प्रतिचात्मने कुर्यात् । उपात्तमपि खलु जीवितमुपाय बलेन स्वयमधितिष्ठ ॥ संग्रह

दण्ड के विषय में—"दण्डस्यादण्डनान्नित्यमदण्ड्यस्य च दण्डनात् । अतिदण्डाच्च गुणिभिस्त्यज्यते पातकी भवेत् ॥ शुक्रनीति ।

और अधिक क्या—

६—जो राजा (जीवराजा) रात दिन आगामि मोक्षरूपी श्रेय के लिए प्रयत्न कर रहा है, उस राजा को चतुवर्ग के साधन भूत अपने शरीर में; अमात्यों में, मित्रों में, राज्य सम्बन्धि विषयों में, जल-पर्वत आदि दुर्गम स्थानों में, कोश में, सेना में यथा योग्य पृथग्-पृथग्—विचार करना चाहिए ।

सम्पूर्ण रूप में सब शास्त्रों के विषय को जानने वाले, गुप्त एवं सफल राज्य सम्बन्धि उपायों वाले; मन्त्रियों पर समस्त कार्यभार को सौंपने वाले राजा की निश्चिन्तता ही है । परन्तु उन मन्त्रियों के मन असीमित

सामन्ता विनमेयुरित्युपचयः कोषस्य सिद्ध्येदिति
स्थानेषु द्विषतां स्थितीरपि चराः पश्येयुराप्ता इति ।
स्यादायोपगमो यथेति विभवैस्तुष्टाः प्रवीरा भटा
वर्तेरन्निति मा मलिम्लुचगणाद्भूरुद्विजेतेति च ॥ १० ॥

अहमपि राज्ञा विन्यस्तसमस्तकार्यभारतया यत्सत्यं व्याकुल एव । तथा हि ।

कार्येषूक्तेषु राज्ञा कतिचिदपि मया साधितान्येव पूर्वं
साधिष्यन्ते परस्तात्कतिचन कतिचिच्चापि साध्यन्त एव ।
किंचानुक्तेषु सद्यः किमपि किल कुशाग्रीययात्मीयबुद्ध्या
पर्यालोच्यैव तत्तत्समयसमुचितं कर्तुमुत्कण्ठितोऽस्मि ॥११॥

(कठिनाई से समाप्त होने वाली) राज्य कार्य की इस चिन्ता से पीड़ित रहते हैं (मन्त्रियों के मन में तो सदा राज्य चिन्ता लगी रहती है) ।

१०—सामन्त लोग अधीन होकर झुक जायें (अनुकूल बरतन करें) ; धन की वृद्धि हो ; विश्वस्त गुप्तचर शत्रुओं की स्थिति उन उन स्थानों में जानें ; आय-धन की प्राप्ति जिस प्रकार से हो ; अति शौर्यशाली योद्धा पारितोषक आदि ऐश्वर्य-धन से सन्तुष्ट होकर व्यवहार करें ; पृथ्वी पर रहने वाले मनुष्य चोरों के समूह से जिस प्रकार उद्वेजित न हों—डरे नहीं (ऐसी दुरन्त चिन्ताओं से हृदय पीड़ित रहता है ।

राजा द्वारा मुझ पर डाले हुए सम्पूर्ण राज्य कार्य के भार से वास्तव में बेचैन सा होगया हूँ ।

और भी—

११—राजा जीव से कहे हुए कार्यों में से कुछ कार्यों को तो पहिले ही पूरा कर दिया है ; कुछ कार्य पीछे से कालान्तर में पूरे किए जायेंगे, और कुछ कार्य पूरे किए जा रहे हैं । और भी न कहे हुए कार्यों को भी तुरन्त अपनी कुशाग्र बुद्धि से विचार कर उस समय के अनुकूल करने के लिए मैं उत्कण्ठित हूँ ।

अत एव सर्वत्र तत्रतत्र व्यापृते मया पुरगुप्त्यै मत्सदृश एव कोऽपि विनियुक्तो बिचारनामा नागरिकः । तत्प्रकृतकार्ये व्यापृतव्यम् । कः कोऽत्र भोः ।

(प्रविश्य ।)

दौवारिकः—विजयतां देवः ।

मंत्री—भद्र, मद्वचनेनानुशासनीयाः पौरा नगरालंकाराय ।

आलिम्पन्तां सुधाभिः पुरसदनगता भित्तयो भृत्यवर्गैं
रम्भास्तम्भाः क्रियन्तां कपिशफलभृतः पार्श्वयोर्द्वारभूमेः ।
बध्यन्तां तोरणानि श्रितनवमणिभिर्दामभिः सन्तु रथ्याः
संमृष्टाश्चम्बुसिक्ताः प्रतिगृहमुपरि अथ्यतां केतनाली । १२ ॥

इसीलिये बहुत से कार्यों में मन के लगे रहने से मैंने नगर की रक्षा के लिए अपने समान ही कोई विचार नामक नगराध्यक्ष (नागरिक) नियुक्त कर दिया है । इस प्रस्तुत कार्य में लगना चाहिए ! यहाँ पर कौन है ।

वक्तव्य—मुद्राराक्षस में भी नन्दवंश में श्रद्धा रखने वाले अमात्य राक्षस को लक्ष करके विराधगुप्त ने भी कहा है—

किं शेषस्य भरव्यथा न वपुषि क्ष्मां न क्षिपत्येप यत्
किं वा नास्ति परिश्रमो दिनपतेरास्ते न यन्निश्चलः ।
किंत्वङ्गीकृतमुत्सृजन् कृपणवच्छ्लाघ्यो जनो लज्जते
निर्व्यूढं प्रतिपन्नवस्तुषु सतामेतद्धि गोत्र व्रतम् ॥

(घुसकर)

दौवारिक—देव विजयी हों !

मन्त्री—भद्र ! मेरी आज्ञा से प्रजा जनों को नगर को सजाने की सूचना दे दो ।

१२—भृत्य लोग नगर के घरों की भित्तियों को चूने से पोतें । कपिशवर्ण (पीले) फलों से लदे केले के वृक्ष घर के दरवाजे के दोनों पार्श्वों में खड़े करें ; नौ प्रकार के रत्न जिन मालाओं में लगे हैं, ऐसी

यतः संप्रत्येव सिद्धप्रतिज्ञो राजा समागमिष्यति ।

दौवारिकः—यदाज्ञापयत्यार्यः । (इति निष्क्रान्तः ।)

मंत्री—(सदृष्टिक्षेपं परिवृत्त्यावलोक्य च ।) अहो रिपूणां पुरावस्कन्दनप्रकारः । तथा हि । पाण्डुना प्रेरिता रोगाः,

मूर्धानं व्याप्तुकामाः शतमथ नवतिर्लोचने षट् च रोगाः
नासामष्टादशास्यं खलु चतुरधिका सप्ततिर्हृच्च पञ्च ।
वक्षोजौ पञ्च शूलैः सह समगणनैः कुक्षिमष्टौ च गुल्माः
स्वार्हस्थानान्युपेतं त्रिगुणगणनया पञ्चकं च व्रणानाम् ॥१३॥

मालाओं से तोरण बाँधें ; गलियों को झाड़ू से साफ करके उनमें पानी का छिड़काव करें ; प्रत्येक घर के ऊपर ध्वजाओं की पंक्ति बाँधें ।

क्योंकि अभी प्रतिज्ञा पूरी करके राजा आयेगा ।

दौवारिक—जैसा आर्य आज्ञा देते हैं (ऐसा कह कर निकल गया)

मन्त्री—(निगाह डाल कर और चारों ओर देख कर) अहो ; शत्रुओं का पुर पर आक्रमण करने का ढंग ।

क्योंकि पाण्डु द्वारा प्रेरित रोग—

१३—शिर में फैलने की इच्छा वाले एक सौ रोग हैं ; नेत्र के रोग छियानवे ; नासिका में अठारह, मुख में चौहत्तर ; हृदय रोग पाँच हैं ; वक्षोज में (स्तनों में) पाँच ; कुक्षिशूल के साथ (उदर रोग) आठ हैं ; गुल्म भी आठ हैं ; अपने अपने योग्य स्थानों में (हाथ, पैर, मुख, गुदा, वस्ति आदि अंग प्रत्यंगों में) होने वाले व्रण पन्द्रह हैं ।

वक्तव्य—यहाँ पर रोगों की गणना में आयुर्वेद के ग्रन्थों से भेद मिलता है । उदर रोग और गुल्म रोग की संख्या ठीक है ; यथा—

गुल्म आठ हैं—इह खलु पंचगुल्मा भवन्ति ; तद्यथा—वातगुल्मः, पित्तगुल्मः, श्लेष्मगुल्मः, निचय गुल्मः, शोणित गुल्मः ॥ इसके साथ में द्विदोष जन्य तीन गुल्मों का उल्लेख चरक में ही चिकित्सा स्थान में है ; यथा—

अथ च स्वयमेव मंत्रिभूतस्य युवराजस्य पाण्डोः पुरोपरोधवैचित्री वाचामतिवर्तते पन्थानम् । (सामर्षं सावहित्थं चाकाशे लक्ष्यं बद्ध्वा ।) साधु मंत्रिधुरीण, साधु । अनया गुप्तप्रयोगप्रकारगौरवया धिषणया शौर्येण च दैत्यगुरुं वृषपर्वाणं चाधिशेषे । (सोपहासम् ।) मयि (इत्यर्धोक्ते विरमति ।)

धारणा—(सस्मितम् ।) अमच्चस्य वाक्यसेसेण तक्कीअदि धीरोदत्तणम् । [अमात्यस्य वाक्यशेषेण तर्क्यते धीरोदात्तत्वम्] ।

निमित्तलिंगान्युपलभ्य गुल्मे द्विदोषजे दोष बलाबलं च ।
व्यामिश्रलिंगानपरांस्तु गुल्मांस्त्रीनादिशेदौषध कल्पनार्थम् ॥

आठ उदर —

पृथग् दोषैः समस्तैश्च प्लीहबद्धक्षतोदकैः ।
संभवन्त्युदराण्यष्टौ तेषां लिंगं पृथक् शृणु ॥

और भी स्वयमेव मन्त्री बने हुए युवराज पाण्डु की नगर को घेरने की विलक्षण नीति वाणी द्वारा भी नहीं कही जा सकती (क्रोध एवं तिरस्कार के साथ आकाश में दृष्टि लगाकर) साधु, मन्त्रियों में श्रेष्ठ साधु ! इस गुप्त प्रयोग की रीति के बरतने से बुद्धि में और शौर्य में दैत्यों के गुरु और वृषपर्वा से भी बढ़ गये हो । (उपहास के साथ) मेरे— (इतना आधा कह कर ही रुक जाता है) ।

वक्तव्य—दैत्यों का गुरु–शुक्र; दानवों का राजा वृषपर्वा; बुद्धि में शुक्र को और शौर्य में वृषपर्वा से भी बढ़ गये हो ।

धारणा (मुस्कराते हुए) मन्त्री के कहते हुए बीच में रुक जाने से इनका धीरोदातत्व प्रतीत होता है ।

वक्तव्य—धीरोदात्त का लक्षण—

महासत्त्वोऽतिगम्भीरः क्षमावान् विकत्थनः ।
स्थिरो निगूढाहङ्कारो धीरोदात्तो दृढव्रतः ॥

इसके साथ ही धीर के लिए कालिदास ने कहा है—

विकारहेतौ सति विक्रियन्ते येषां न चेतांसि त एव धीराः ।

अमात्यः—अस्खलितासाधारणकार्यविधारणधौरेयस्खलितानि तव मनीषितानि भवन्ति । (इति पुरो विलोक्य ।) अहो नगरालंकारचातुरी पौराणाम् ।

कीर्णान्यम्बुपृषन्ति किंकरगणैरथ्यान्तरे ताडिता-
न्यातोद्यानि निकेतकेकिनटनप्रारम्भमूलानि च
बद्धा मन्दिरमार्गसीमसु हसन्नाथापनीतांशुक-
व्यक्तोरोजसलज्जसिद्धयुवतिव्याकृष्टचेलध्वजाः ॥ १४ ॥

अपि च ।

मन्ये रम्भाः पुरमृगदृशामूरुसौभाग्यचौर्या-
द्बद्धा भृत्यैः प्रतिगृहमपि द्वारपार्श्वद्वयेषु ।
अम्भोदुर्गात्कथमपि हृता यंत्रितोच्चैर्विताने
तासां वक्त्राम्बुजपरिमलग्राहिणी पद्ममाला ॥ १५ ॥

यथा, रामचन्द्रजी ; जिनके लिए कहा जाता है—

आहूतस्याभिषेकाय वसृष्टस्य वनाय च ।
न मया लक्षितस्तस्य स्वल्पोऽप्यकार विभ्रमः ॥

मंत्री—प्रमाद रहित असामान्य राज्य कार्यों के जानने में धुरन्धर मेरे होने पर तुम पाण्डु मन्त्री के इच्छित कर्म पूरे नहीं होंगे । (सामने देख कर) अहो नगर को सजाने में पौरजनों का चातुर्य—

१४—सड़कों में सेवक वर्ग ने जल की कणिकायें बिखेर दी हैं (पानी का छिड़काव कर दिया है) ; गृहमयूरों के नाचने में कारणभूत वाद्यों को (वीणा-वेणु-मुरज-ताल) बजा दिया है ; हँसते हुए कामुक नायकों द्वारा खींचे गये उत्तरीय वस्त्र के कारण स्तनों के नग्न हो जाने से लज्जाशील बनी सिद्ध युवतियों (देवताओं की स्त्रियों) से खींचे गये हैं जिन ध्वजों के दण्डे के अग्रभाग में बँधे वस्त्र ; ऐसी ध्वजायें भुवनों के अति ऊँचे भागों में बाँध दी हैं ।

और भी—

१५—नगर निवासी युवतियों के ऊरु का सौन्दर्य चुराने के कारण

किं च । सुधालेपधवलीकृतसौधवसतयः पौरयुवतयः शारदाभ्रगतपरमाद्भुततडिल्लताविभ्रममुद्भावयन्ति । किं च, चञ्चरीकगणश्चित्रलिखितसहकारमञ्जरीकलितोत्कलिकया संचरमाणोऽपि कदर्यमवनीपतिमुमुपगतो वनीपकलोक इव निष्फल एव निवर्तते । कतिचन निकेतनानि च नूतनालिखितेनाहिनकुलेनाश्वमहिषेण गोव्याघ्रेण च भित्तिषु निर्वैरसत्त्वान्य कुर्वन्ति चत्वराणि तपोघनाश्रममदस्य । (अन्यतोऽवलोक्य, सहासम् ।)

सेवक वर्ग ने एक एक घर में दरवाजे के दोनों पार्श्वों में केले के स्तम्भ रस्सी से बाँध दिये हैं (मेघदूत में भी—यास्यत्यूरुः सरस कदली स्तम्भ गौरश्चलत्वम्) । उन नगर के युवतियों के कमल के समान मुखों की सुगन्ध को चुराने वाली लाल कमल के फूलों की पंक्ति को पानी के दुर्ग में से किसी प्रकार कठिनाई से लाकर ऊँचे चंदोये में (तम्बू में) बाँध दिया है ।

और भी—

नगर युवतियों के रहने के राजप्रासाद चूने से पुते होने के कारण शरद ऋतु के बादलों के अन्दर रहने वाली अति अद्भुत विद्युत लता के विभ्रम को उत्पन्न कर रहे हैं । और भी ; जिस प्रकार कंजूस राजा के पास से याचक समूह निष्फल लौटता है, उसी तरह से चित्र में चित्रित आम्र मञ्जरी की बनी हुई कृति से उत्कण्ठित भ्रमरों का समूह खिंचता हुआ भी खाली लौट रहा है; और कुछ मकानों की दीवारों पर नये बनाये हुए नकुल और साँप, घोड़ा और भैंस, गाय और शेर—बिना शत्रुता वाले प्राणियों के चित्र, मुनियों के आश्रम स्थल के आँगनों का अनुकरण करते हैं । (दूसरी ओर देख कर हास्य के साथ) ।

वक्तव्य—"येषां च विरोधः शाश्वतिकः"—से द्वन्द्वैक भाव हुआ है । कादम्बरी में भी जावाली के आश्रम का ऐसा वर्णन मिलता है ; यथा—

"अहो प्रभावो महात्मानाम् । अत्र हि शाश्वतिकमपहाय विरोधमुपशान्तमात्मानः तिर्यञ्चोऽपि तपोवन वसति सुखमनुभवन्ति । तथाहि

दृष्ट्वाकृष्टकचामुदस्तचिबुकां पत्या कराभ्यां बला-
त्कामप्येणदृशं करौ विधुवतीमास्वाद्यमानाधराम् ।
आलेख्ये पुरशिल्पिना विरचितां भित्तौ बहिर्मन्दिरा-
न्नार्यः सस्मितनम्रवक्त्रकमलाः कर्षन्ति यूनां मनः ॥ १६ ॥

नन्विदानीमत्र नगरालंकारदर्शिनो राज्ञः समागमं प्रतीक्षमाणाः पौरास्तस्य परमुपचाराय संनह्यन्ति । तथा हि ।

विकचोत्पलवन रचनानुकारिणीमुत्पात चारु चन्द्रकशतं हरिणलोचनद्युति-शबलभभिनव शाद्वलमिव विशति शिखिनः कलापमातापाहतो निः शंकमहिः । अयमुत्सृत्य मातरभजात केशरैकेसरि शिशुभिः सहोप जात परिचयः क्षरत्क्षीरधारं पिबति कुरंग शावकः सिंहिस्तनम् । एष मृणाल कलाप शंकिभिः शशिकर धवलं सटाभारमार्मीलित लोचनो बहूमन्यते द्विरदकलभैराकृष्यमाणं मृगपतिः । इदमिह कपिकुलमप गत चापलमानयति मुनि कुमारकेभ्यः स्नातेभ्यः फलानि । एते च न निवारयन्तिमदान्धाः अपि गण्डस्थलीभांजि मदजलपान निश्चितानि मधुकरकुलानि संजातादयः कर्णतालं करिणः ॥ कादम्बरी ।

१६—मन्दिर की बाहर की भित्ति पर नागरिक चित्रकार द्वारा चित्र में बनाया हुआ किसी सुन्दर कमलनयनी युवती का ऐसा चित्र जिसमें कि पति अपने एक हाथ से बल पूर्वक बालों को खींच रहा है और दूसरे हाथ से चिबुक को ऊँचा करके जबरदस्ती अधर ओष्ठ का चुम्बन कर रहा है; इसीलिये हाथों को चलाती हुई स्त्री के चित्र को देख कर इस मार्ग से जाने वाली स्त्रियाँ मधुर हास्य के साथ अपने मुख कमलों को झुका कर (लज्जावश नीचा करके) युवाओं के मन को खींच रही हैं।

निश्चय से ही अत्र नगर की शोभा को देखने के लिए आते हुए राजा की प्रतीक्षा करते हुए नगर निवासी अतिशय सम्मान के लिए तैयारी कर रहे हैं। क्योंकि

स्थाप्यन्ते गृहवास्तवेदिषु घटाः संवेष्टितास्तन्तुभिः
प्रत्यग्राम्रदलप्रसाधितमुखा विप्रैः पयः पूरिताः।
कन्याभिर्घृतसिक्तवर्तिनिकरैर्नीराजनाभाजनैः
साध्यन्ते सममेव लाजसुमनश्चित्राणि पात्राणि च ॥१७॥

(विचिन्त्य।) कथमसौ राजा लिप्सितं फलं लब्ध्वा समायास्यति। कथमस्य साम्बशिवप्रसादमन्तरेण लिप्सितफललाभः। कथं वा कठोराणि तपांसि विनानेन सुलभः शिवप्रसादः। कथमनेन स्वकालविकस्वरशिरीषदलकोमलशरीरेण सुकरा कठोरा तपश्चर्या। न चैतस्य तादृशतपश्चरणादृतेऽखिलपुरुषार्थसाधनं भगवतश्चन्द्रकलावतंसस्य निरन्तरध्यानं संभाव्यते। नलिनीदलान्तरालतरलोदबिन्दुसमस्पन्दा दुर्निरोधा हि चित्तवृत्तयः। तदिदानीं मदीयमन्तःकरणं दुरन्तचिन्तोदधौ निमज्ज्य पुनरुन्मज्जति। अथवा कस्य किमसंभावितमनुकूलतामुपगते

१७—सूत्र से वेष्टित, शुद्ध पानी से भरे, ताजे तोड़े हुए आम्रकिसलयों से शोभित मुख वाले पूर्ण कुम्भ घर की सीढ़ियों पर ब्राह्मणों के द्वारा रक्खे जा रहे हैं। घी से स्निग्ध बत्तियों के समूह वाले दीप पात्रों के साथ, लाजा और फूलों से शोभित पात्र कन्याओं द्वारा तैयार किए जा रहे हैं।

(सोच कर) क्या यह राजा इच्छित फल को प्राप्त करके आयेगा? उमा सहित शिव की कृपा के बिना किस प्रकार से इच्छित फल लाभ हो सकता है? बिना कठोर तप किए किस प्रकार से शिव की प्रसन्नता सम्भव है? किस प्रकार अपने समय पर (ग्रीष्म में) विकसित होने वाले शिरीष दल के समान कोमल शरीर वाले इससे कठिन तपस्या सुगम है? ऐसी तपश्चर्या के बिना सम्पूर्ण पुरुषार्थ के साधन चन्द्रकला से शोभित भगवान महादेव का निरन्तर ध्यान इससे नहीं हो सकता। कमलिनी के पत्ते के अन्दर चंचल जल कणिकाओं की भाँति चित्तवृत्तियों का रोकना बहुत कठिन है। इसलिये अब मेरा अन्तःकरण अपार चिन्ता समुद्र में गोता लगा कर फिर बाहर आता है। अथवा भाग्य के अनुकूल होने पर किसके

दैवे । (दक्षिणभुजस्पन्दमभिनीय ।) कथमस्थाने मम विचारः । सर्वं सुघटितं भविष्यति ।

(नेपथ्ये ।)

वैतालिकः—

वातं प्रावृषिकं निरुध्य सहसा गात्रप्रकम्पप्रदं
संफुल्लानि विधाय चारुकमलान्यासाद्य हंसागमम् ।
दिष्ट्या लब्धवता प्रसादमधिकं वापीजलाधारयोः
सद्यः शारदवासरेण धवलो मेघोऽम्बरं प्रापितः ॥ १८ ॥

मन्त्री—(श्रुत्वा, सहर्षम् ।) अस्मत्कृत(?) प्राणनिरोधेन निर्धुतसकल तपोविघ्नेन विशुद्धाद्वैतज्ञानसाधनेन समाधिनासमाराधितयोःधूर्जटिधरराज-कन्ययोः प्रसादेन राज्ञा रसो हस्तगतः कृत इत्यनेन वैतालिकवचनेन सूच्यते ।

लिए क्या असम्भव है । (दक्षिण बाहु में कम्पन का नाट्य करके) क्या मेरी चिन्ता व्यर्थ है ? सब ठीक हो जायेगा ।

(नेपथ्य में)

वैतालिक—

१८—शरत्कालीन दिन ने भाग्य से शरीर में कम्पन उत्पन्न करने वाली प्रावृड ऋतु की वायु को सहसा बन्द करके ; सुन्दर कमलों को विकसित करके ; मानसरोवर से हंसों को बुला कर ; वापी और जलाशयों में अधिक स्वच्छता को उत्पन्न करके, श्वेत बादल आकाश में ला दिए हैं ।

मंत्री—(सुन कर आनन्द के साथ) मुझ विज्ञान शर्मा की सहायता से प्राणायाम के द्वारा सम्पूर्ण तप के विघ्नों का नाश करके विशुद्ध अद्वैत ज्ञान के साधन रूप समाधि से शिव और पार्वती को प्रसन्न करके उनकी कृपा द्वारा राजा ने रस को प्राप्त कर लिया है ; यह बात वैतालिक के वचन से सूचित होती है ।

वक्तव्य—**प्राणायाम-समाधि में एक कारण है ; इसी से योग के अंगों में प्राणायाम भी एक अंग है ; प्राणायाम-प्राणों का निरोध ; यह**

रेचक, पूरक ; कुम्भक भेद से तीन प्रकार का है। गीता में भी आया है कि—

अपाने जुह्वति प्राणं प्राणेऽपानं तथापरे ।
प्राणापानगतीरुद्ध्वा प्राणायाम परायाणाः ॥
अपरे नियताहाराः प्राणान्प्राणेषु जुह्वति ।
सर्वेऽप्येते यज्ञविदो यज्ञक्षपित कल्मषाः ॥ ४।२९।३०।

प्राणायाम से इन्द्रियों के दोष नष्ट हो जाते हैं ; इसको मनुस्मृति में सुन्दरता से बताया है —

दह्यन्ते ध्मायमानानां धातुनां यथा मलाः ।
तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात् ॥

उपनिषद् में भी यही उल्लेख है ; यथा—

यथा शकुनिः सूत्रेण प्रबद्धोदिशं दिशं पतित्वान्यत्रमायतनमलब्ध्वा ; बन्धनमेवोपश्रयते एवमेव खलु सौम्य तन्मनः दिशं दिशं पतित्वान्यत्र मायतनमलब्ध्वा प्राण मेवोपश्रयते प्राण बन्धनं हि सौम्यंमन इति ॥ छान्दोग्य ६।७।२ ।

इन्द्रियों के दोष नष्ट हो जाने पर ही मन समाधि में प्रवृत्त होता है। यह समाधि सविकल्प और निर्विकल्प भेद से दो प्रकार की है। निर्विकल्प समाधि में लय, विक्षेप, कषाय और रसास्वद ये चार विघ्न आते हैं, यथा—

(१) अखण्डवस्त्ववलम्बनेन मनोवृत्तेर्निद्रा रुपावस्थानं लयः ।

(२) अखण्डवस्त्ववलम्बनेन मनोवृत्तेरन्यावलम्बनं विक्षेपः ।

(३) लयविक्षेपाभावेऽपि रागादि वासनायाः स्तब्धीभावात् अखण्डवस्त्ववलम्बनं कषायः ।

(४) अखण्डवस्त्वलम्बनेनापि चित्तवृत्तेः सविकल्पानन्दास्वादनं रसास्वादः ।

इन चारों विघ्नों से रहित होकर निर्वातस्थ दीपशिखा की भाँति

(पुनर्नेपथ्ये)

दिङ्मण्डलस्य विमलीकरणे प्रवीणा-
न्निर्विघ्नमुत्सृजति नीरजबन्धुरंशून् ।
पङ्कश्च पान्थपदयोगमसृष्यमाणः
संशोषमेत्य शकलीभवति क्षणेन ॥ १६ ॥

मंत्री—(श्रुत्वा ।) एतेनापि वचसा देहस्य निरोगीकरणसमर्थनिरसान्प्र-योक्तं राज्ञस्तस्य च यक्ष्महतकस्य विनशितुं प्रातः कालोऽयमिति च

निश्चल रूप से ध्येयवस्तु में मन को लगाना समाधि है। इसीसे गीता में कहा है—

यथादीपोनिवातस्थो नेङ्गते सोपमा स्मृतः ।
योगिनो यतचित्तस्य युञ्जतो योगमात्मनः ॥

कुमारसम्भव में कालिदास ने शिव की समाधि का सुन्दर वर्णन किया है, यथा—

अवृष्टिसंरम्भमिवाम्बुवाहमपामिवाधारमनुत्तरंगम् ।
अन्तश्चराणां मरुतां निरोधाद् निवात निष्कम्पमिव प्रदीपम् ॥

निर्विकल्प समाधि के सिद्ध हो जाने पर ब्रह्म का साक्षात्कार होता है, ब्रह्म का साक्षात्कार होने पर उसको प्रसन्नता से रस-प्राप्त होता है। इसी से उपनिषद में कहा है—"सह्येवायं रसं लब्ध्वा आनन्दी भवति"—रस को प्राप्त करके यह प्रसन्न होता है।

(नेपथ्य में फिर)

१६—नीरजबन्धु–सूर्य दिशाओं को निर्मल करने में समर्थ अपनी किरणों को बिना किसी रुकावट के छोड़ रहा है। राहगीरों के पैर के आक्रमण को न सहन करता हुआ कीचड़ सूखकर जल्दी से टुकड़े टुकड़े हो रहा है।

मन्त्री—(सुन कर हर्ष के साथ) इसके भी वचनों से शरीर के निरोग करने में समर्थ रसों के प्रयोग में समर्थ राजा के और उस दुष्ट यक्ष्मा के नाश

सूच्यते। (सबहुमानम्।) साधु रे वैतालिक, साधु। यदधुना गूढाभिप्रायेण भवता बोधितव्यं बोधितम्। तदेव वृत्तं सप्रकारमवगमयितुं राजानं प्रत्युद्गमनेन बहुमन्तुं च तत्रैव गच्छामि। (इत्युत्थाय आकाशे।) अरे यक्ष्महतक, भवदीयमतः परं पश्यामि शौण्डीर्यम्। (पुरो विलोक्य।) कथमागत एव देवः। यतो देवी पुरोमार्गप्रदर्शिनी पुरो दृश्यते। यैषा

धम्मिल्ले घनसंनिभे सिततडिद्वल्लयेव मल्लीस्रजा
वक्त्रेन्दौ रुचिरैणनाभितिलकव्याजात्कलङ्केन च।
हारेण स्तनकोकयोरपि बिसस्वच्छेन चायामिना
पादाम्भोरुहयोश्च हंसकयुगेनारावीणा राजते॥ २०॥

का यह समय आ गया है; यह सूचित हो रहा है। (बहुत आदर के साथ) साधु, हे वैतालिक साधु! जो कि तुमने गूढ़ अभिप्राय से जानने योग्य को बता दिया। इसी समाचार को विशेष रूप में जानने के लिए राजा के सामने जाकर और बहुत मान देने के लिए वहीं पर जाता हूँ। (ऐसा कह कर आकाश में देखते हुए) हे दुष्ट यक्ष्मा! इसके आगे आपका घमण्ड देखता हूँ (सामने देख कर) क्या राजा ही आ रहे हैं; क्योंकि सामने मार्ग दिखाने वाली राज महिषी दीखती है। जो कि—

२०—नीले मेघों के समान केशपाशों में श्वेत विद्युत के भाँति मल्ली (जूही) के फूलों की माला से; चन्द्र रूपी मुख में कलक रूप से कस्तूरी के सुन्दर तिलक से; चक्रवाक रूपी स्तनों में कमलनाल रूपी निर्मल लम्बे हार से (मोतियों की एक लड़ी से), कमल के समान दोनों पैरों में बजने वाले दो नूपुरों से शोभित हो रही है। *

वक्तव्य—माघ में भी हंसक-नूपुर का वर्णन श्लेष रूप में आता है—

"मदनरसमहौघपूर्णनाभीह्रद परिवाहितरोमराजयस्ताः।
सरित इव सविभ्रमप्रयाताः प्रणदित हंसक भूषणा विरेजुः॥"

---

* वक्त्रेन्दौ के स्थान पर वक्त्रेन्दोः यह पाठ है; रुचिरैणनाभि तिलक व्याजात् के स्थान पर रुचिरेण नाभितिलक व्याजात् यह पाठ है; आयमिना के स्थान पर चामुना यह पाठ है।

अयमपि महाराजस्तस्या अनुपदमागच्छति । संप्रति हि एतस्य

विचारविगमादिदं विलसति प्रसन्नं मुखं
गृहीतसुषमं हिमव्यपगमादिवाम्भोरुहम् ।
विषाणिन इव प्रतिद्विरददर्शनामर्षिणो
गतिश्च किल मेदिनीं नमयतीव धीरोद्धता ॥ २१ ॥

(ततः प्रविशति जीवो बुद्धिश्च ।)

जीवः—अहो श्रुतिस्मृतिविहितानां कर्मणां प्रभावः । यानि मया समयेषु समनुष्ठितानि मदीयमन्तःकरणमशोधयन् । शोधिते च तस्मि-

---

यह महाराजा भी उसी के पीछे पीछे आ रहे हैं । क्योंकि इस समय इनका—

२१—मुख मन की चिन्ता के हट जाने से प्रसन्न दीख रहा है ; जिस प्रकार कि हेमन्त ऋतु के बीत जाने पर कमल में कान्ति आ जाती है । अपने प्रतिद्वन्द्वी हाथी को देख कर क्रोध से जिस प्राकार हाथी चलता है, उसी प्रकार से इसकी धीरोद्धता-धीर एवं उद्धत्व के साथ चाल पृथ्वी को झुका रही है ।

वक्तव्य—कुश को देखकर राम ने भी धीरोद्धतागति को कहा है—

दृष्टिस्तृणीकृतजगत्त्रयसत्त्वसारा
धीरोद्धताः नमयतीव गतिर्धरित्रीम् ॥ उत्तम रामचरित

धीरोद्धत का लक्षण—

मायापरः प्रचण्डश्चपलोऽहङ्कारदर्प भूयिष्ठः ।
आत्मश्लाघानिरतो धीरैः धीरोद्धः कथितः ॥
दर्पमात्सर्य भूयिष्ठो मायाछद्मपरायणः ।
धीरोद्ध तस्तत्वहङ्कारो चलश्चण्डो विकत्थनः ॥ दशरूपक ।

(इसके पश्चात् जीव बुद्धि आते हैं)

जीव—श्रुति-स्मृति में कहे हुए कर्मों का प्रभाव आश्चर्यकारक है । जिन कर्मों के समय पर करने से मेरा अन्तःकरण निर्मल हो गया है ।

भगवद्भक्तिर्नाम कापि कल्पलताप्रथममङ्कुरिता । पश्चादुपचितपरिचया च सा मम हृदयानुरञ्जनी क्रमेण भगवन्तौ परमेश्वरौ साक्षाद्दर्शितवती । अनितरसाधारण्या च तया प्रसन्नौ भगवन्तौ संप्रत्यभिलषितान्रसगन्धकादीन्प्रसादीकृत्यार्पितवन्तौ । अग्रेऽपि तस्या एव महिम्ना सकलमप्यभिलषितं पुमर्थं लप्स्यामहे ।

अन्तःकरण के शुद्ध हो जाने पर उसमें भगवद्भक्ति नाम की कोई कल्पलता (इच्छित फल देने वाली लता) प्रथम अंकुरित हुई । पीछे इस भक्ति से परिचय बढ़ने पर इस भगवद्भक्ति ने मेरे हृदय को प्रसन्न करके क्रमशः—भगवान पार्वती और महादेव का दर्शन कराया । दूसरों से असाधारण उस भगवद्भक्ति से पार्वती और महादेव ने प्रसन्न होकर इस समय इच्छित रस और गन्धक प्रसाद रूप में दिये हैं । आगे भी इसी भगवद्भक्ति की महिमा से चारों इच्छित पुरुषार्थों को प्राप्त करूँगा ।

वक्तव्य—श्रुति-स्मृति में कहे हुए कार्यों को करने से मनुष्य में सात्त्विक गुण उत्पन्न होते हैं—इन गुणों से यक्ष्मा रोग नष्ट होता है; ऐसा उल्लेख चरक में भी है, यथा—

हर्षणाश्वासनैः नित्यं गुरूणां समुपासनैः ।
ब्रह्मचर्येण दानेन तपसा देवतार्चनैः ॥
सत्येनाचारयोगेन मंगलैरविहिंसया ।
यया प्रयुक्तया चेष्टया राजयक्ष्मा पुराजितः ॥
तां वेदविहितामिष्टिम् आरोग्यार्थी प्रयोजयेत् ।

इसके सिवाय चरक में आचार रसायन भी वर्णित है ; जिसमें—

सत्यवादिनमक्रोधं निवृत्तंमद्यमैथुनात् ।
अहिंसकमनायासं प्रशान्तं प्रियवादिनम् ॥
जपशौचपरंधीरं दाननित्यं तपस्विनम् ।
देवगोब्राह्मणाचार्यगुरुवृद्धार्चनेरतम् ॥

बुद्धिः—अज्जउत्त, किं एदे रसगन्धआ अण्णणिव्वेक्खा सअं जेव्व विवक्खक्खवणं णिव्वहन्दि । [आर्यपुत्र, किमेते रसगन्धका अन्यनिरपेक्षाः स्वयमेव विपक्षक्षपणं निर्वहन्ति ।]

राजाः—देवि, दिव्यौषधीभिः शोधिताः सन्तो विविधरसायनद्वारा उक्तसामर्थ्या ह्येते ।

आनृशंस्यपरंनित्यं नित्यंकरुणवेदिनम् ।
समजागरणस्वप्नं युक्तिज्ञमनहंकृतम् ॥
(तुलना करें-युक्तस्वप्नावबोधस्य—गीता)
शस्ताचारमसंकीर्णमध्यात्मप्रवणेन्द्रियम् ।
उपासितारंवृद्धानामास्तिकानां जितात्मनाम् ॥
धर्मशास्त्रपरंविद्यान्नरंनित्यरसायनम् ।

श्रद्धा-भक्ति मन के ऊपर निर्भर रहती है, इसलिये पहिले चित्तशुद्धि—सात्विक मन करना आवश्यक है, इससे सात्विक भक्ति उत्पन्न होती है । इसी से गीता में कहा है—

सत्त्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धाभवति भारत ।
श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः ॥ १७।३।

श्रद्धा उत्पन्न होने से भगवान का साक्षात्कार होता है, इसी से गीता में कहा है—

नाहंवेदैर्नतपसा न दानेन न चेज्यया ।
शक्य एवं विधो द्रष्टुं दृष्टवानसि मां यथा ॥
भक्त्यात्वनन्याशक्य अहमेवंविधोऽर्जुन ।
ज्ञातुंद्रष्टुंचतत्त्वेन प्रवेष्टुं च परंतप ॥ ११।५३।५४

बुद्धिः—आर्यपुत्र ! क्या ये रस और गन्धक दूसरे पदार्थों की सहायता के बिना ही अपने आप शत्रुओं का नाश कर सकते हैं ।

राजा—देवी ! दिव्यौषधियों से शोधित किये ये नाना प्रकार की रसायनों द्वारा उपरोक्त शक्ति वाले हैं ।

देवीः—ता एव्वं संविहाणसमत्थेण केण वि होदव्वम् । [तदेवं संविधानसमर्थेन केनापि भवितव्यम् ।]

राजाः—विज्ञानशर्मैवात्र निर्वोढा । यतः ।

ऋषिरेव विजानाति द्रव्यसंयोगजं गुणम् ।
विज्ञानशर्मणः कोऽन्यः सर्वज्ञाननिधिर्ऋषिः ॥ २२ ॥

वक्तव्य—दिव्यौषधी-सर्पाक्षि क्षीरिणी वन्ध्यामत्स्याक्षी शंखपुष्पिका'—आदि छेः श्लोकों में रसरत्नसमुच्चय में वर्णित हैं। शोधित—अट्ठारह संस्कार द्वारा शोधित । यथा—स्वेदन, मर्दन, मूर्च्छन, उत्थापन, पातन, बोधन नियमन, दीपन, अनुवासन, अभ्रकादि ग्रास, चारण, गर्भद्रुति, वाह्यद्रुति, योग जारण, रंजन, क्रामण, वेधन, भक्षण-ये अट्ठारह संस्कार पारद के हैं। रसायन—पूर्णचन्द्र रस, मकरध्वज आदि रसायनों के रूप रोग नाशक होते हैं।

देवि—इनको बनाने में समर्थ किसी (व्यक्ति को) को होना चाहिए।

राजा—विज्ञानशर्मा ही यहाँ पर कार्य साधन में प्रवीण है। क्योंकि—

२२—द्रव्यों के-औषधि के उपयोगि पदार्थों के परस्पर मिलने से उत्पन्न गुण विशेष को विज्ञानशर्मा मन्त्री के सिवाय अन्य कौन ऋषि जान सकता है (कोई नहीं] । यह विज्ञानशर्मा सम्पूर्ण ज्ञान का कोष है।

वक्तव्य—ऋषि शब्द की निरुक्ति—

गत्यर्थादृपतेर्धातोर्नामनिर्णयकारणम् ।
यस्मादेव स्वयं भूतस्तस्माच्च ऋषिता मता ॥ मत्स्य पुराण

ऋषियों की दृष्टि भूत, भविष्यत् और वर्त्तमान इन तीनों में पहुँचती है, इसी से कालिदास ने कहा है—

पुरुषस्य पदेष्वजन्मनः समतीतं च भवच्च भावि च ।
स हि निष्प्रतिघेन चक्षुषा त्रितयं ज्ञानमयेन पश्यति ॥ रघु० ८।७८

चरक में ऐसे त्रिकालदर्शी पुरुषों के लिए आप्त शब्द आया है, यथा-

किं च ।

महेशतेजः संभूतो रसः कारुणिकाग्रणीः ।
यः स्वानिष्टमुरीकृत्य परपीडां व्यपोहति ॥ २३ ॥

तदुक्तम्—

'मूर्च्छित्वा हरति रुजं बन्धनमनुभूय मुक्तिदो भवति ।
अमरीकरोति हि सूतः कोऽन्यः करुणाकरः सूतात् ॥ २४ ॥'

राजस्तमोभ्यां निर्मुक्तास्तपोज्ञान बलेन ये ।
येषां त्रिकालममलं ज्ञानमव्याहतं सदा ॥
आप्ताः शिष्टाविबुद्धास्ते; ॥ चरक ११।१८

ये ऋषि ही द्रव्य के संयोग के फल को जान सकते हैं । इसी से काश्यप संहिता में कहा है—

कोहि नाम प्रणीतानां द्रव्याणां तत्त्वदर्शिभिः ।
नानाविधानमेकत्वे तत्कर्मज्ञातुमर्हति ॥
पृथक् पृथक् प्रसिद्धेऽपि गन्धेगन्धान्तरं तथा ।
गन्धाङ्गानां मनोह्लदि प्रत्यक्षं सामवायिकम् ॥ खिल० २

और भी—

२३—शिव के तेज से करुणा करने वालों में श्रेष्ठ रस उत्पन्न हुआ है । जो रस अपना अनिष्ट स्वीकार करके दूसरे की पीड़ा को दूर करता है ।

वक्तव्य—रस-पारद-शिव का तेज-अन्तिमधातु हैं, यथा—

शिवाङ्गात् प्रच्युतं रेतः पतितं धरण तले ।
तद्देहसारजातत्वात् शुक्लमच्छमभूच्चतत् ॥

अपना अनिष्ट—मर्दन, दाहन, मारण आदि कष्ट उठाकर दूसरे को सुखी करने से श्रेष्ठ कहा है—

कहा भी है—

२४—पारद मूर्छित होकर पीड़ा को दूर करता है; स्वयं बन्धन में पड़कर दूसरों को मुक्ति देता है (रोगों से छुटकारा देता है) । अपने आप

'सुरगुरुगोद्विजहिंसापापकलापोद्भवं किलासाध्यम् ।
श्वित्रं महदपि शमयति कोऽन्यस्तस्मात्पवित्रतरः ॥ २५ ॥'

मरकर दूसरों को अमर करता है; इस प्रकार पारद से दूसरा कौन करुणा करने वाला है ।

वक्तव्य—मूर्च्छनाविधि—

(१) त्र्युषणं त्रिफलावन्ध्या कन्दैःक्षुद्राद्वयान्वितैः ।
चित्रकोणनिशाक्षार कन्यार्क कन्यकाद्रवैः ॥
सूतं कृतेन यूषेण वारान्सप्ताभिर्मर्दयेत् ।
इत्थं संमूर्च्छितः सूतः त्यजेत् सुप्तापिकञ्चुकम् ॥

(२) गन्धकेन रसं प्राज्ञः सुदृढं मर्दयेद् भिषक् ।
कज्जलाभो यदासूतो विहाय घन चापलम् ॥
दृश्यतेऽसौ तदा ज्ञेयो मूर्छितो रस कोविदैः ।
असौ रोगचयं हन्यादनुपानस्ययोगतः ॥

(३) मर्दनादिष्ट भैषज्यैः नष्टपिष्टत्व कारकम ।
तन्मूर्च्छनं हि वंगाहिमलदोष विनाशनम् ॥
गृहकन्यामलं हन्ति त्रिफला वह्निनाशिनी ।
चित्रमूलं विषं हन्ति तस्मादेभिः प्रयत्नतः ॥
मिश्रितं सूतकंद्रव्यै सप्तवाराणि मूर्छयेत् ।
इत्थं संमूर्च्छितः सूतो दोषशून्यः प्रजायते ॥

रसगंगाधर में भी इसका उल्लेख है—

उपकारमेव कुरुते विपद्गतः सद्गुणो नितराम् ।
मूर्च्छागतो मृतो वा निदर्शनं पारदोऽत्र रसः ॥
उपकारमेवकुरुते विपद्गतः सद्गुणो नितराम् ।
मूर्च्छाङ्गतो मृतो वा रोगानपहरति पारदः सकलान् ॥

२५—देवता, गुरु, गाय, और ब्राह्मण की हिंसा के कारण उत्पन्न पाप समूह से होने वाले असाध्य किलास रूपी महान श्वित्र को भी पारद

शान्त कर देता है; इसलिये इससे दूसरा अधिक पवित्र कौन हो सकता है, (कोई भी नहीं)

वक्तव्य—किलास का कारण—

वचांस्यतथ्यानि कृतघ्नभावो निन्दासुराणां गुरुधर्षणं च ।
पापक्रिया पूर्वकृतं च कर्म हेतुः किलासस्य विरोधिचान्नम् ॥

किलास के तीन नाम हैं ; दारुण, अरुण और श्वित्र; इनमें दोष के रक्ताश्रित होने पर रंग लाल होता है ; रक्त में आश्रित होने पर ताम्र वर्ण और मेद में आश्रित होने से श्वेत वर्ण होता है ; यथा—

दारुणं चारुणं श्वित्रं किलासं नामभिस्त्रिभिः ।
विज्ञेयं त्रिविधं तच्च त्रिदोषं प्रायश्चतत् ॥
दोषे रक्ताश्रिते रक्तं ताम्रं मांस समाश्रिते ।
श्वेतं मेदः श्रिते श्वित्रं गुरु तच्चोत्तरोत्तरम् ॥ चरक ।

किलास भी कुष्ट का ही भेद—"किलासमपि कुष्ट विकल्प एव ।" कुष्ट और किलास में इतना ही अन्तर है कि किलास त्वग्गत रहता है और इसमें स्राव नहीं होता ; कुष्ट किलासयोरन्तरं-त्वग्गतमेव किलास मपरिस्रावि च ॥" यही किलास जब त्वचा से आगे पहुँच जाता है ; तब श्वित्र कहा जाता है—

यदा त्वचमतिक्राम्य तत् धातुमवगाहते ।
हित्वा किलास संज्ञं तत् श्वित्र सज्ञां लभेत सः ॥

कुष्ट रोग सब से बुरा रोग है, क्योंकि—

म्रियते यदि कुष्ठेन पुनर्जातेऽपिगच्छति ।
नातः कष्टतरो रोगो यथा कुष्ठं प्रकीर्त्तितम् ॥

यह कुष्ठ रोग भी पारद और गन्धक के प्रयोग से नष्ट हो जाता है ; इसलिये इससे श्रेष्ठ करुणा करने वाला कौन हो सकता है । कुष्ठ में पारा और गन्धक का उपयोग—

लेलीतकप्रयोगो रसेन जात्याः समाक्षिकः परमः ।
सप्तदश कुष्ठघाती स्राक्षिकधातुश्च मूत्रेण ॥ चरक ।

गन्धकस्यापि माहात्म्यमुक्तम्—

'ये गुणाः पारदे प्रोक्तास्ते गुणाः सन्ति गन्धके ।
शुद्धो गन्धो हरेद्रोगान्कुष्ठमृत्युजरादिकान् ।
अग्निकारी महानुष्णो वीर्यवृद्धिं करोति च ॥ २६ ।

किं च प्रतिदिनं निषेव्यमाणैरेतैः प्रियरतीनां युवतीनामनभिमतानां पुंसां जरामुपरुध्य तासामभिमते यौवने तेषां स्थापनं भवति ।

गन्धक का भी महात्म्य कहा है—

२६—पारद में जो गुण कहे हैं; वे गुण गन्धक में भी हैं। शुद्ध गन्धक कुष्ट, मृत्यु, जरा आदि रोगों को नष्ट करता है। अग्नि को बढ़ाता है; बहुत उष्ण है, वीर्य को बढ़ाता है ।

और भी—रस और गन्धक से बनी इन औषधियों के प्रतिदिन सेवन करने से सम्भोगप्रिय युवतियों द्वारा अपमानित पुरुषों का बुढ़ापा दूर होकर उनमें नया यौवन आता है ।

वक्तव्य—रसरत्नसमुच्चय में कहा है—

रसस्य बन्धनार्थाय जारणाय भवत्ययम् ।
ये गुणाः पारदे प्रोक्तास्ते चैवात्र भवन्ति हि ॥

गन्धक के गुण—

गन्धाश्माति रसायनः सुमधुरः पाके कटूष्णान्वितः
कण्डू कुष्टविसर्प दोषशमनो दीप्तानलः पाचनः ।
आमोन्मोचन शोषणोविषहरः सूतेन्द्र वीर्यप्रदो
गौरी पुष्पभवस्तथा कृमिहरः सत्त्वात्मकः सूतजित् ॥

इसीलिये गन्धक रहित पारद का उपयोग आयुर्वेद में निषिद्ध है, क्योंकि यह रोग का नाश नहीं कर सकता । यथा—

गन्धक जारण रहितः रसः संशुद्धोऽपि योगेषु न योज्यः ।
गदहन्तृत्व शक्ति अनुदयात् ॥ आयुर्वेद प्रकाश ।

देवी—(सलज्जं सदृष्टिक्षेपं च ।) संपत्तो एसो विण्णाणणामहेओ अमच्चो । ता णम्मालावस्स ण एसो समओ । [संप्राप्त एष विज्ञाननामधेयोऽमात्यः । तन्नर्मालापस्य नैष समयः ।]

राजा—(विलोक्य ।) अये, मंत्रिबृहस्पतिः संप्राप्तः । (सानुशयम् ।)

कर्तव्यो विधिरित्थमित्थमिति मामुक्त्वा जिगीषुर्द्विषं
स्वस्यैवोपरि राज्यतन्त्रमखिलं द्रष्टव्यमासज्य च ।
अद्येदं क्रियते करिष्यत इदं पश्चादकारि त्विदं
प्रागेवेति दुरन्तया कृशतनुं पश्याम्यमुं चिन्तया ॥ २७ ॥

एतदनुज्ञयैव निर्विचारमानसेन मया कृतं भगवदाराधनम् ।

देवी—(लज्जा के साथ तिरछी चितवन करके) विज्ञानशर्मा मन्त्री यह आ गया है; इसलिये शृंगारपूर्ण बातों को करने का यह समय नहीं ।

वक्तव्य—नर्म-प्रिया के चित्त को प्रसन्न करने वाला जो व्यापार चतुराई से किया गया हो, नर्म कहा जाता है—

वैदग्ध क्रीडितं नर्म प्रियोपच्छन्दनात्मकम् । दशरूपक

ऐसा नर्म पार्वती के साथ उसकी सखियों ने किया है—

पत्युः शिरश्चन्द्रकलामयेन स्पृशेति सख्या परिहास पूर्वम् ।
सा रञ्जयित्वा चरणौ कृताशीर्माल्येन तां निवर्चनं जघान ॥ कुमारसम्भव

राजा—(देखकर) अये ! मन्त्रि बृहस्पति आ गया है (अभिप्राय के साथ)

२७—शत्रु को जीतने की इच्छा से निष्ठा क ! इस इस प्रकार करना चाहिए, ऐसे मुझे कहकर, देखने योग्य सम्पूर्ण राज्य कृत्यों को अपने ऊपर लेकर, इस कार्य को आज करता हूँ; इसको भविष्य में करूँगा और इस कार्य को पहिले कर लिया है, ऐसी कभी समाप्त न होने वाली चिन्ता से क्षीण शरीर हुए इसको मैं देख रहा हूँ ।

इस मन्त्री की आज्ञा से ही राज्य व्यापार से मन को हटाकर मैंने परमेश्वर की उपासना की है ।

मंत्री—(उपसृत्य ।) स्वस्ति सफलमनोरथाभ्यां स्वामिभ्याम् ।

जीव:—भवत्साहाय्यमेवात्र हेतुः ।

बुद्धि:—एवमप्पमत्तेण चित्तवावारेण सहायत्तणं कुणन्तो दीहाऊ होइ । [एवमप्यमात्येन चित्तव्यापारेण सहायत्वं कुर्वन्दीर्घायुर्भव] ।

राजा—अत्र निषीदतु भवान् ।

मंत्री —(उपविश्य) निर्विघ्नेन कार्यसिद्धिर्जातेति मनोरथानामुपरि वर्तामहे ।

राजा—तदेव वक्तुकामोऽस्मि ।

मंत्री—अवहितोऽस्मि ।

राजा—त्वदुक्तमार्गेण प्रथमं पद्मासनं बद्ध्वा तथैवोपविष्टोऽहम् ।

मन्त्री—(समीप में आकर) सफल मनोरथ वाले स्वामी और स्वामिनी का कल्याण हो ।

राजा—आपकी सहायता ही इसमें कारण है ।

देवी—इस प्रकार अप्रमत्त रूप से राज्य कार्य के चिन्तन में सहायता करते हुए दीर्घायु हों ।

राजा—आप यहाँ बैठें ।

मन्त्री—(बैठकर)-बिना विघ्न के सफलता मिल गई है; इसलिये अधिक प्रसन्न हो रहे हैं ।

राजा—वही तो मैं कहना चाहता हूँ ।

मन्त्री—मैं सावधान हूँ ।

राजा—तुम्हारे कहे हुए रास्ते से पहिले पद्मासन बाँधकर वैसे ही मैं बैठा ।

वक्तव्य—पद्मासन का लक्षण—

> वामोरुपरि दक्षिणं नियमतः संस्थाप्य वामं तथा
> दक्षोरुपरि पश्चिमेन विधिना धृत्याकराभ्यां धृतम् ।
> अंगुष्ठं हृदये निधाय चिवुकं नासाग्रमालोकयेत्
> एतद्व्याधिसमूहनाशनकरं पद्मासनं प्रोच्यते ॥

शुद्धान्तः करणेन संततपरिध्यातार्ककोटिप्रभ-
प्रालेयद्युति कोटिशीतलशिवारूढाङ्कगङ्गाधरः ।
सानन्दाश्रुकणो दृशोः सपुलको गात्रेषु सप्रश्रय-
स्तुत्युक्तिर्वदने कृताञ्जलिपुटो मूर्धन्यभूवं चिरम् ॥ २८ ॥

तदनु मयि प्रसादाभिमुखः प्रज्वलदग्निशिखाकलापकपिलजटामण्ड-लाटवीविलुठज्जाह्नवीचरबालहंसायमानचन्द्रलेखः कण्ठगतकालकूटद्युति-यमुनोभयपार्श्वनिः सरन्निर्झरायमाणरुद्राक्षमालिकः परिहितशार्दूलचर्मसं-

---

कुमारसम्भव में शिव की उपासना में इसी तरह के आसन का उल्लेख किया है ; यथा—

पर्यङ्कबन्धस्थिरपूर्वकायमृज्वायतं सन्नमितोभयांसम् ।
उत्तानपाणिद्वयसन्निवेशात् प्रफुल्ल राजीवमिवांकमध्ये ॥
भुजंगमान्नद्धजटाकलापं कर्णावसक्तं द्विगुणाक्षसूत्रम् ।
कण्ठप्रभा संग विशेषनीलां कृष्णत्वचं ग्रन्थिमतीं दधानम् ॥
किंचित् प्रकाशस्तिमितोग्रतारैः भ्रूविक्रियायां विरत प्रसंगैः ।
नेत्रैरविस्पन्दितपक्ष्ममालैः लक्ष्यीकृतघ्राणमधोमयूखैः ॥ ३।४१।४३

२८—सात्त्विक गुण वाले शुद्ध मन से करोड़ों सूर्य की कान्ति वाले; करोड़ों चन्द्रमाओं की कान्ति से शीतल ; पार्वती जिनकी गोद में बैठी है, गंगा को धारण करने वाले शिव का मैं निरन्तर एकाग्र मन से देर तक ध्यान करते हुए रहा ; मेरी आँखों में आनन्द के अश्रु आ गये, शरीर में रोमांच हो गया, विनम्रता से मुख में स्तुति होने लगी, शिर में दोनों हाथों को जोड़े हुए देर तक मैं रहा ।

इसके पीछे मेरे पर अनुग्रह करने के लिए तैय्यार हुए, जलती हुई अग्निशिखा समूह के समान पिंगल वर्ण जटा मण्डल के जंगल में इधर उधर भटकती हुई गंगा के अन्दर विचरनशील बालहंस के समान चन्द्र-लेखा वाले, गले में धारण किए कालकूट महाविष की कृष्ण छाया, वही है यमुना (काली होने से), उसके दोनों पार्श्वों से बहते हुए जल प्रपात

दर्शनभीतमिव मृगमेकं संरक्षितुं करे बिभ्राणः करान्तरे च प्रणतजन-दुरदृष्टशिलाभञ्जन टङ्कं च कंचन भगवान्काञ्चनगिरिधन्वा गिरिकन्यासमेतो मामेतदवोचत—

ध्यानेन ते प्रसन्नोऽस्मि वृणीष्व वरमर्पये ।
इत्युक्तवन्तं तं देवमयाचे रसगन्धकान् ॥ २९ ॥

ततस्तेन दीयमानान्रसगन्धकानग्रहीषम् । पुनश्च प्रणम्य सप्रश्रयम-याचिषम् । देवदेव,

फलिन्यः फलहीना याः पुष्पिण्यो या अपुष्पिकाः ।
गुरुप्रसूतास्ता मुञ्चन्त्वंहसो न इति श्रुतिः ॥ ३० ॥
यस्मै ददासि तं तेभ्यः सर्वाभ्यः पारयामहे ।
इति सोमेनौषधयः संवदन्तीति च श्रुतिः ॥ ३१ ॥

के समान रुद्राक्ष की माला, धारण किये, पहने हुए व्याघ्र चर्म के देखने से भयभीत मृग की रक्षा करने के लिए उसे एक हाथ में पकड़े हुए, दूसरे हाथ में, नम्र हुए मनुष्यों की दौर्भाग्य रूप शिला को तोड़ने के लिए स्वर्ण की छेनी लिए हुए, पार्वती सहित भगवान शिव ने मुझे यह कहा !

२९—तेरे ध्यान करने से मैं प्रसन्न हूँ, वर माँगो, मैं दूँगा । इस प्रकार से कहते हुए उस देव से मैंने रस और गन्धक को माँगा ।

इसके पीछे उस पार्वती सहित शिव से दिए जाते हुए रस और गन्धक को मैंने लिया । और फिर मैंने साष्टांग प्रणाम करके विनय के साथ माँगा । देव देव !

३०—फलिनी-फल वाली, फल रहित फूलवाली, और जो फूलरहित, गुरु प्रसूता-गुरु बृहस्पति द्वारा जो बढ़ाई हैं, वे सब वनस्पति हमको रोग रूपी पाप से छुटायें, यह श्रुति है ।

३१—जिस किसी रोगी के लिए उस औषधि को देते हैं, उस रोगी को सब रोगों से हम छुटा देती हैं; इस प्रकार सोम-चन्द्रमा के साथ औषधियाँ व्यवहार करती हैं, यह श्रुति है ।

अतः सर्वास्ताः सिद्धौषधयः सोमायत्ताः । स च भगवतः शिरोभूषण-मत्रैव संनिहितः । अतः ।

वक्तव्य—फलिनी-(फलवाली) मुद्गपर्णी ; माषपर्णी आदि ; फल रहित—पान की बेल आदि ; फूल वाली—चमेली, जूही आदि ; फूल रहित—गूलर आदि । चरक में भी वनस्पति, वीरुत, वानस्पत्य और औषधि चार नाम आये हैं । यथा—

भौममौषधमुद्दिष्टमौद्भिदंतुचतुर्विधम् ।
वनस्पतिस्तथा वीरुद्वानस्पत्यस्तथौषधिः ॥
फलैर्वनस्पतिः पुष्पैर्वानस्पत्यः फलैरपि ।
औषध्यः फल पाकान्ताः प्रतानैः वीरुधः स्मृताः ॥

वट, गूलर आदि फल वाली औषधि वनस्पति हैं । तेषामपुष्पाः फलिनो वनस्पतयः । फूल आने के पीछे जिनमें फल आते हैं वे वानस्पति, जैसे आम आदि । फल आने के पीछे जो नाश हो जाती हैं, वे औषधि हैं ; यथा—तिल, मूँग आदि । लता और गुल्म रूप वनस्पति वीरुध होती हैं ।

श्रुति—

या फलिनीर्या अफला अपुष्पा याश्च पुष्पिणी ।
बृहस्पति प्रसूतास्ता नो मुंचन्त्वहंसः ॥ यजुर्वेद १२।८९
ओषधयः संवदन्ते सोमेन सह राज्ञा ।
यस्मै कृणोति ब्राह्मणस्तं राजन् पारयामसि ॥ यजु० १२।९६।

गीता में भी आता है—

"पुष्णामि चौषधिः सर्वा सोमो भुत्वा रसात्मकः ॥"

इसलिये हे स्वामि ! ये सब सिद्धौषिधियाँ चन्द्रमा के अधीन हैं, और वह चन्द्रमा आपके शिरोभूषण रूप से यहीं पास में है । इसलिये हे श्री परमेश्वर !

शोधयितुं रसगन्धान्कर्तुं च रसौषधानि विविधानि ।
दिव्यौषधीश्च सर्वा दापय मौलिस्थितेन चन्द्रेण ॥ ३२ ॥
ततश्च भगवदाज्ञया तेन सोमेन सर्वास्ता मह्यं दत्ताः । (इति मन्त्रि-हस्तेऽर्पयति ।)

मंत्री—(सहर्षं गृहीत्वा दृष्ट्वा च ।) सप्तकञ्चुकादिदोषनिराकरणेन शुद्धानेतानोषधीभिः सह शत्रुजयाय प्रयोद्यामहे ।

देवी—कित्तिआ ते सत्तुजणा किंणामहेआ अ कस्सिं समए पुरोपरोहं किदवन्तो । [कियन्तस्ते शत्रुजनाः किंनामधेयाश्च कस्मिन्समये पुरोपरोधं कृतवन्तः ।

३२—पारद-गन्धक को शुद्ध करने के लिए, नाना प्रकार की रसौषधियों को बनाने के लिए, सब दिव्यौषधियों को शिर में स्थित चन्द्रमा के द्वारा दिलवा दीजिये ।

इसके पीछे महौषधियों के स्वामी चन्द्रमा ने परमेश्वर की आज्ञा से ये सब दिव्य औषधियाँ मुझे दे दी हैं । जिसके लिए आपने मुझे भेजा था, उन रस और गन्धक को इन सब औषधियों के साथ लो (ऐसा कहकर मन्त्री के हाथ में देता है) ।

मन्त्री—(आनन्द के साथ लेकर और देखकर) सप्तकञ्चुकादि दोषों के निकलने से शुद्ध हुए इन रस और गन्धक को औषधियों के साथ शत्रु की विजय के लिये प्रयोग करूँगा ।

वक्तव्य—कञ्चुक—आवरण, पारे में सात आवरण माने जाते हैं, यथा—पर्पटी, पाटली, भेदी, द्रावी, मलकरी, अन्धकारी और ध्वांक्षी । इन्हीं कञ्चुकों को औपाधिक दोष भी कहते हैं, यथा—"औपाधिकाः पुनश्चान्ये कीर्तित्ताः सप्तकञ्चुकाः ।"—पारद में स्थान, समय तथा वायु आदि से जो आवरण उत्पन्न हो जाते हैं, उनको रस-शास्त्र में कञ्चुक शब्द से कहा है ।

देवी—आपके शत्रु लोग कितने हैं, और उनके नाम क्या हैं । किस समय में उन्होंने नगर को घेर लिया है ।

मन्त्री—श्रूयतां तावत् ।

पुण्डरीकपुरं राज्ञि प्रविष्टे रन्ध्रलाभतः ।
स्वराजाज्ञया पाण्डुररुधत्सैनिकैः पुरम् ॥ ३३ ॥

यक्ष्महतकस्यास्मच्छत्रोर्बहव: सैनिकाः ।

ग्रहण्यश्मर्यतीसारशूलार्शः पाण्डुकामलाः ।
विषूचिकाकुष्ठगुल्मसन्निपातज्वरादयः ॥ ३४ ॥

देवी—अमच्च, एत्तिअं पुरोपरोहसंरम्भं कुणन्तेण सहसैणिएण तेण जक्खहदएण अम्हाणं किं अच्चाहिद कादव्वम् [अमात्य, एतावन्तं पुरोपरोधसंरम्भं कुर्वाणेन सहसैनिकेन तेन यक्ष्महतकेनास्माकं किमत्याहितं कर्तव्यम् ।]

मन्त्री—देवि, पुरान्निष्क्रमयितव्या वयमित्येव तस्य हताशस्य दुराशाभिनिवेशः ।

देवी—अहो अणत्तणीणत्तणं जक्खहदअस्स । जो अम्हेसु पुरादो

मन्त्री—यह सब सुनिए—

३३—जीव राजा के पुण्डरीक पुर में प्रविष्ट हो जाने पर पाण्डु ने अपने राजा की आज्ञा से नगर को सैनिकों द्वारा घेर लिया है !

हमारे शत्रु दुष्ट यक्ष्मा के बहुत से सैनिक हैं ; यथा—

३४—ग्रहणी, अश्मरी, अतीसार, शूल, अर्श, पाण्डु, कामला, विसूचिका, कुष्ठ, गुल्म, सन्निपात ज्वर, आदि ये सब रोग उस यक्ष्मा के सैनिक हैं ।

देवी—अमात्य ! सैनिकों के साथ नगर पर इतने बड़े आक्रमण की तैयारी करके वह दुष्ट यक्ष्मा हमारी क्या बड़ी हानि करना चाहता है ।

मन्त्री—देवी ; हमको पुर से निकालना ही उस पापहतक यक्ष्मा का दुष्ट मनोरथ है ।

देवी—अहो ! पापी यक्ष्मा का (यह व्यवहार तो) अपने ही लिये

णिक्कन्तेसु सग्रं कहिं ठाइस्संति अप्पणो वि णासं ण गणेदि। [अहो अनात्मनीनत्वं यक्ष्महतकस्य। योऽस्मासु पुरान्निष्क्रान्तेषु स्वयं कुत्र स्थास्यामीत्यात्मनोऽपि नाशं न गणयति ।]

मन्त्री—सत्यमुक्तं देव्या ।

> **महापातकसंभूतेस्तस्य पापस्य यक्ष्मणः ।**
> **वैरायितमिदं चित्रं स्वविनाशमपीच्छतः ॥ ३५ ॥**

यदुक्तमभियुक्तैः—

> **'अपथ्यसेविनश्चौरा राजदाररता अपि ।**
> **जानन्त एव स्वानर्थमिच्छन्त्यारब्धकर्मतः ॥ ३६ ॥' इति ।**

अहितकारक है। हमारे पुर से—शरीर से निकाल देने पर वह स्वयं कहाँ रहेगा, इस प्रकार से वह अपने भी नाश को नहीं विचारता ।

मन्त्री—देवी ने सत्य कहा है ।

३५—महापातक से उत्पन्न होने वाले उस पापी यक्ष्मा का अपने विनाश की इच्छा रखते हुए यह द्वेष विचित्र प्रकार का है ।

जैसा कि प्रमाणिक लोगों ने कहा है—

३६—अहित आहार विहार का सेवन करने वाले (या अनुचित कार्य करने वाले) मनुष्य, चोर, राजपत्नी में आसक्त मनुष्य अपने अनर्थ को संकट को जानते हुए प्राक्तन कर्मों के कारण प्रवृत्त होते हैं ।

वक्तव्य—यक्ष्मा की उत्पत्ति महापाप से कही है—

मांस लोलुपः परस्वाभिलाषी पर विषयभोगानसहमानः स्वामिनो हन्ता च क्षयरोगी भवति । "वीरसिंहावलोकन" ।

मनुष्य प्राक्तन कर्मों के कारण पापकर्म में प्रवृत्त होता है, क्योंकि कर्मों का क्षय न होने से उसकी वासना बनी रहती है, "प्रारब्धकर्म विक्षेपाद्वासना तु न नश्यति" ॥

और भी ।

निघ्नन्ति निरर्थकं परहितं ते के न जानीमहे
ह्येवं या समभाणि भर्तृहरिणा काष्ठा परा पापिनाम् ।
तामेतामतिशेत एव सपरीवारस्य नाशं निज-
स्योत्पश्यन्नपि निष्क्रमाय यतते यो नः पुरात्पातकी ॥ ३७ ॥

अस्त्यत्र लौकिकोऽप्याभाणकः—'स्वनासाछेदेन शत्रोरमङ्गलमापादयत्यनात्मनीनो मूर्खः' इति ।

देवी—ता कहिं दाणिं एत्तिआणं रोगाणं णिग्गहो सुअरो ।

३७—जो व्यक्ति दूसरे के हित को बिना किसी मतलब के नष्ट करते हैं; वे कौन से हैं; यह हम नहीं जानते; इस प्रकार भर्तृहरि ने कह कर पापियों की चरम अवस्था कह दी है। परिवार समेत अपने नाश को देखते हुए भी जो पातकी राजयक्ष्मा हमको नगर से बाहर निकालने का यत्न करता है; वह यह यक्ष्मा उन पूर्वोक्त पापियों की चरम स्थिति से भी आगे बढ़ जाता है।

वक्तव्य—भर्तृहरि का श्लोक—

एते सत्पुरुषाः परार्थघटकाः स्वार्थान् परित्यज्य ये
सामान्यास्तु परार्थमुद्यमभृतः स्वार्थाविरोधेन ये
तेऽमी मानुष राक्षसाः परहितं स्वार्थाय निघ्नन्ति ये
ये तु घ्नन्ति निरर्थकं परहितं ते के न जानिमहे ॥ नीतिशतक

इस विषय में लोक प्रसिद्ध लोकोक्ति भी है—मूर्ख मनुष्य अपनी नाक को काट कर शत्रु का अमंगल करता है।

वक्तव्य—घर निकलते समय क्षीण अंग वाले पुरुष का दर्शन अशुभ माना है, शत्रु किसी शुभ कार्य के लिए घर से निकल रहा हो, तो उसका अमंगल करने के लिये मूर्ख मनुष्य अपनी नाक को जैसे काट ले, उसी प्रकार यक्ष्मा अपने नाश के लिए हमको नगर से निकाल रहा है।

देवी—तो फिर किस प्रकार से इतने अधिक रोगों को रोकना

[तत्कथमिदानीमेतावतां रोगाणां निग्रहः सुकरः ।]

मन्त्री—देवि, मा भैषीः । निखिलरोगनिसर्गवैरिणि रसे स्वाधीने कः शत्रुजये संदेहः ।

राजा—तर्हि कुतो विलम्ब्यते ।

मन्त्री—अहं पुनरधुना रसमोषधीभिः सह संयोजयितुं गच्छामि । देवेनापि विश्रम्यताम् ।

(इति निष्कान्ताः सर्वे ।)

इति तृतीयोऽङ्कः ।

सरल है ।

मन्त्री—देवी ! मत डरो ! जन्म से ही सब रोगों के शत्रु पारद के अपने वश में हो जाने पर शत्रुओं को जीतने में कौन सा सन्देह है ?

वक्तव्य—पारद, रस, सूत ये नाम सार्थ पूर्ण हैं यथा—

जरारुङ्मृत्युनाशाय रस्यते यत्ततो रसः ।
देहलोहमयीं सिद्धिं सूते सूतस्ततः स्मृतः ॥
रोग पंकाब्धिमग्नानां पारदानाच्च पारदः ।
एवं भूतस्य सूतस्य मर्त्यमृत्युगदच्छिदः ॥

पारद के लिए ऐसे वचन रस शास्त्र में मिलते हैं ।

राजा—तो फिर क्यों देरी कर रहे हो ।

मन्त्री—मैं भी इस समय पारद को औषधियों के साथ मिलाने के लिए जाता हूँ । आप भी देवी के साथ कुछ देर विश्राम करें ।

(यह कह कर सब निकल गये)

(यह तीसरा अंक समाप्त हुआ)

चतुर्थोऽङ्कः ।

(ततः प्रविशति विदूषकः ।)

विदूषकः—उत्तं खु दोआरिएण पारोण रण्णो रसगन्धअवरप्पदाणं सुणिअ बलिअं रोसवसंगदेण जक्खहदएण पण्डुणा सह किं वि मन्तिअ सपरिवारस्स अम्हाणं रण्णो उवरि वइक्कमं किं वि कादुं उज्जोओ करीअदित्ति सुदवन्देण विण्णाणणामहेएण मन्तिणा कज्जगदिं आवेदिअमाणो अन्तेउरवेदिअन्तरे राआ चिट्ठदित्ति । ता राअसमीप गमिस्सम् । (इति परिक्रम्योदरं करतलेन परामृश्य ।) अहो, मुहुत्तादो पुव्वं खादिदं मातुलुङ्गफलप्पमाणाणं मोदआणं सदं वि जिण्णं जादम् । जं तस्सिं समए घण्णकुम्मोपोणुत्तुङ्गो मह पिचण्डो ठिदो । दाणिं उण तिण्णकिअकटो विअ तणूहोदि । (विमृश्य ।) णं मज्झण्णो वट्टइ । तह हि ।

चतुर्थऽङ्क

(इसके पीछे विदूषक आता है)

विदूषक—द्वारपाल प्राण ने राजा को कहा है कि रस और गन्धक के वर देने की बात को सुन कर अतिशय क्रोध के वश में हुआ दुष्ट यक्ष्मा पाण्डु के साथ किसी प्रकार की गुप्त मन्त्रणा करके परिवार सहित हमारे राजा के ऊपर किसी प्रकार की आपत्ति लाने का यत्न कर रहा है ; ऐसा सुन कर विज्ञानशर्मा नामक मन्त्री के साथ करणीय विषय को विचारता हुआ राजा अन्तःपुर की वितर्दिका (प्रांगण) में बैठा है । मैं भी राजा के पास जाऊँगा । अहो ; थोड़ी देर पहले ही खाये हुए बिजौरे के फल के समान सौ लड्डू भी पच गये हैं ; इससे उस समय में धान्य को रखने के कण्डोल के समान मेरा पेट ऊँचा उठ गया था, इस समय फिर से तिनकों से बनी चटाई के समान पतला है । निश्चित रूप से मध्याह्न है । क्योंकि—

पत्तगदं घरहरिणो तिण्हाए पिबइ सीअलं सलिलम् ।
गन्धेण कुणइ सुहिदं घाणं थिदमिस्ससक्करापूवो ॥ १ ॥

अहो पमादो । राअसमीवं गमिस्सं ति महाणससमीवं गदो म्हि । अदो एव्व तइ वत्तुलतणुअरगोहूमापूवसंदितसरावेहिं माहिसदहिमण्ड-मिस्सिदमासविरइअभक्खविसेसणिविडिअभाअणेहिं परितत्तम्बरिसभज्जिद-चणअचअपूरिअपिंडएहिं फाणिदसंकलिदजवधाणासमुल्लासिदविसालामत्तेहिं दुद्धदहिसक्करासलिलभाविदविविहपिथुअरासिसंपुण्णविसङ्कडचसअविसेसेहिं मल्लिअमुउल्लपुञ्जधवलसालितण्डुलन्नसमुच्चअविराजिदतम्ममअभण्डगणब्भ-न्तरट्ठायिदसुवण्णसवण्णसूपणिहाणपिठरेहिं कित्तपरिवक्कवन्ताककारइल्लपडो-लकोसातईणिप्पावराअमासकदलीपणसकुम्भण्डप्पमुहसलाटुखंडमयशाकषंड-मंडिदबहुविहभाअणविसेसेहिं अ परिसोहमाणस्स महाणसस्स विसमरो गन्धो । घुमघुमाअदि मे णासाविलम् । सिलसिलाअदि तालुरसणामूले

१—घर का हरिण तृष्णा के कारण पात्र में रक्खे शीतल जल को पी रहा है। घृत मिला कर बनाये शर्करा के अपूर अपनी गन्ध से नाक को सुखी कर रहे हैं।

अहो बड़ा भारी आलस्य। राजा के पास जाऊँगा यह सोच कर चला था, आ गया पाकशाला के पास। इसी से गोल, अतिशय पतली गेहूँ की रोटियों से भरे हुए शरावों (पात्रों) से; भैंस की दही के मण्ड से मिलाकर बनाये नाना प्रकार के खाद्य पदार्थों से भरे पात्रों से ; गरम भाड़ में भूने हुए चनों के ढेर से भरे टोकरों से ; राब मिलाकर बनाये जौ और चावलों के भद्दों से भरे बड़े बड़े पात्रों से ; दूध-दही-शर्करा पानी से भावित नाना प्रकार के धान्यों से बने चौलों के समूह से भरे चौड़े विशेष बर्तनों से ; जूही की कलिका समूह (ढेरी) की भाँति श्वेत शालि चावलों के भात की ढेरी से शोभित ; ताम्र से बने पात्रों के अन्दर सुवर्ण के समान पीले रंग की दाल को रखने के पात्रों से ; काटे हुए पके बैंगन करेला, परवल, तोरी, सेम, राजमाष, केला, कटहल, कुम्हड़े आदि के टुकड़ों में बने शाक समूहों से शोभित नाना प्रकार के पात्र विशेषों से ;

सुणिग्गत्तरं लालाजलम्। पज्जलदिव्व हणुमन्तवालग्गलग्गवग्गिसिहागहिदघर-परम्परं लङ्काउरं विअ बुभुक्खाउरं मे उदरम्। (किंचित्पुरतो विलोक्य।) इह खु महाणसदुवारदेसे अवणदपुव्वकाओ विलोईअदि चुल्लिपावअपज्ज-लणत्थफुक्कारपवणविकिण्णभसिदरेसपुञ्जधूसरमुहो णिडिलदीसन्तविरलसे-दम्बुकणिओ करंगुलीलग्गहिंगुपरिमलसंतप्पिदसमीवगदजणवाणेन्दिओ ईस-संकमिदेङ्गालज्छिदपरिधाणपडो दक्खिणकरग्गहीददव्वीसिहरतणुतरदीस-न्तविलोलिअसाअपाअवप्फो अण्णकरलम्बितेन्धणसअलो भद्दमुहो णाम पौरोगवो। ता एणं एव्वं पुच्छामि। अए भद्दमुह, तुए पक्केसु भक्खवि-सेसेसु किं वि किं वि मह हत्थे दादव्वं जं भक्खिअ एदं सुट्ठु एदं णेत्ति विआरिअ कहेमि जं सुट्ठु तं परिवेसिअ रण्णो हत्थादो पारितोसिअं गेण्हदु भवम्। (साक्षेपम्।) कहं एसो दासीएपुत्तो 'जइ तुह बुभुक्खा तदो रण्णो समीपं गदुअ भाअणं दादव्वं ति पुच्छ। अहं उदरंभरिणो तुह किं वि ण दाइस्सं' ति भणिअ महाणसब्भन्तरं गदो। होदु। राअसमीपं गमिस्सम्। (इति परिक्रम्यावलोक्य च।) कह एत्थ राअसमीवे विअणे अलगद्देण गिह्लिअ बिलं पवेसिदो मंडूओ विअ किं वि अणक्खरं पलवन्तो अमच्चो वेधवेओ चिट्ठइ। ता समअं पडिवालइस्सम्। (इति तिष्ठति।) [उक्तं खलु दौवारिकेण प्राणेन राज्ञो रसगन्धवरप्रदानं श्रुत्वा ब-लवद्रोषवशंगतेन यक्ष्महतकेन पाण्डुना सह किमपि मंत्रयित्वा सपरिवार-स्यास्माकं राज्ञ उपरि व्यतिक्रमं किमपि कर्तुमुद्योगः क्रियत इति श्रुतवता विज्ञाननामधेयेन मंत्रिणा कार्यगतिमावेद्यमानोऽन्तःपुरवेदिकान्तरे राजा तिष्ठतीति। तद्राजसमीपं गमिष्यामि। अहो, मुहूर्तात्पूर्वं खादितं मातुलुङ्ग-फलप्रमाणानां मोदकानां शतमपि जीर्णं जातम्। यत्तस्मिन्समये धान्य-कुम्भीपीनोत्तुङ्गं मम पिचण्डं स्थितम्। इदानीं पुनस्तृणकृतः कट इव तनूभवति। ननु मध्याह्नो वर्तते। तथाहि।

पात्रगतं गृहहरिणस्तृष्णया पिबति शीतलं सलिलम्।
गन्धेन करोति सुखितं घ्राणं घृतमिश्रशर्करापूपः॥

अहो प्रमादः। राजसमीपं गमिष्यामीति महानससमीपं गतोऽस्मि। अत

एव तथा वर्तुलतनुतरगोधूमापूरसंहितशरावैः माहिषदधिमण्डमिश्रितमापविरचितभक्ष्यविशेषनिबिडितभाजनैः परितप्ताम्बरीषभर्जितचणकचयपूरितपिण्डकैः फाणितसंकलितयवधानासमुल्लसितविशालामत्रैः दुग्धदधिशर्करासलिलभावितविविधपृथुकराशिसंपूर्णविशङ्कटचषकविशेषैः मल्लिकामुकुलपुञ्जधवलशालितण्डुलान्नसमुच्चयविराजितताम्रमयभाण्डगणाभ्यन्तरस्थापितसुवर्णसवर्णसूपनिधानपिठरैः कृत्तपरिपक्ववृन्ताककारवेल्लपटोलकोशातकीनिष्पावराजमाषकदलीपनसकूष्माण्डप्रमुखशलाटुखण्डमयशाकषण्डमण्डितबहुविधभाजनविशेषैश्च परिशोभमानस्य महानसस्य विसृमरो गन्धः। घुमघुमायते मे नासाबिलम्। सिलसिलायते तालुरसनामूले सुनिर्गत्वरं लालाजलम्। प्रज्वलतीव हनूमद्वालाग्रलग्नाग्निशिखागृहीतगृहपरम्परं लङ्कापुरमिव बुभुक्षातुरं मे उदरम्। इह खलु महानसद्वारदेशे-

---

शोभित होती हुई इस पाकशाला से निकलती हुई गन्ध आ रही है। जिससे मेरी नासिका के छेद भर रहे हैं; तालु और रसनामूल के द्रवित होने से लाला स्राव हो रहा है; हनुमान के पूँछ के बालों के अग्रभाग में लगाई हुई अग्नि से जलते हुए घरों की परम्परा वाली लंका की भाँति बुभुक्षा से मेरा उदर पीड़ित है। * (कुछ सामने देख कर) यहाँ पाकशाला के दर्वाजे के पास में शरीर के आगे के भाग को झुकाये हुए (रसोईया) दिखाई देता है—चुल्हे की आग को जलाने के लिए फूँक की वायु से उड़े राख समूह के कारण जिसका मुख धूसर हो गया है; माथे पर दीखने वाली बिखरी हुई पसीने की बूँदों से; हाथ में लगी हिंगु की गन्ध के कारण पास में खड़े लोगों की नासिकायें भर गई हैं; थोड़ा सा लग गया है कोयला का निशान जिसके पहिने हुए वस्त्रों में; दक्षिण हाथ में पकड़ी हुई कड़छी के अग्रभाग में दीखने वाले अति सूक्ष्म शाक के पकने के वाष्प को देखने में

---

* उदर में अग्नि है; इसका उल्लेख आयुर्वेद में तथा गीता में भी है; यथा—

अहंवैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः।
प्राणापान समायुक्तः पचाम्यन्नं चतुर्विधम्॥

ऽवनतपूर्वकायो विलोक्यते चुल्लीपावकप्रज्वलनार्थफूत्कारपवनविकीर्णभसितलेशपुञ्जधूसरमुखो निटिलदृश्यमानविरलस्वेदाम्बुकणिकः करांगुलिलग्नहिंगुपरिमलसंतर्पितसमीपगतजनघ्राणेन्द्रियः ईषत्संक्रमितेङ्गाललाञ्छितपरिधानपटो दक्षिणकरगृहीतदर्वीशिखरतनुतरदृश्यमानविलोलितशाकपाकवाष्पः अन्यकरकलितेन्धनशकलो भद्रमुखो नामपौरोगवः तदेनमेव पृच्छामि। अये भद्रमुख, त्वया पक्वेषु भक्ष्यविशेषेषु किमपि किमपि मम हस्ते दातव्यं यद्भक्षयित्वा इदं सुष्ठु इदं नेति विचार्य कथयामि यत्सुष्ठु तत्परिवेष्य राज्ञो हस्तात् पारितोषिकं गृह्णातु भवान्। कथमेष दास्याः पुत्रः। 'यदि तव बुभुक्षा तदा राज्ञः समीपं गत्वा भोजनं दातव्यमिति पृच्छ। अहमुदरंभरेस्तव किमपि न दास्यामि' इति भणित्वा महानसाभ्यन्तरं गतः। भवतु। राजसमीपं गमिष्यामि। कथमत्र राजसमीपे विजने अलगर्देन गृहीत्वा बिलं प्रवेशितो मण्डूक इव किमप्यनक्षरं प्रलपन्नमात्यो वैधेयः तिष्ठति। तत्समयं प्रतिपालयिष्यामि।]

लगा; वाम हाथ में लकड़ी के टुकड़े को लिए भद्रमुख नाम का रसोईया है। इसलिए इसको ही पूछता हूं।" अये भद्रमुख! तुझे पके हुए नाना प्रकार के भक्ष्यों में से थोड़ा थोड़ा मेरे हाथ में देना चाहिए। जिनको खाकर मैं सोच कर कहूँगा कि यह अच्छा है, यह बुरा है; जो अच्छा हो, उसे परोस कर राजा के हाथ से आप पारितोषक प्राप्त करें।

वक्त० —विदूषक—हास्य करने वाला होता है "हास्यकृच्चविदूषकः"—नायक का सहायक होता है।

(आवेश में) कैसे मुझे कह रहा है, इस आवेश में (उसे कहता है) —हे दासी पुत्र! यदि तुझे भूख लगी है, तो राजा के पास में जाकर मुझे भोजन देना चाहिये, यह कहो! तुझ पेटू को मैं कुछ भी नहीं दूँगा। यह कहकर रसोई के अन्दर चला गया। ऐसा ही सही, राजा के समीप जाऊँगा। किस प्रकार से यहाँ राजा के समीप एकान्त में—साँप से पकड़ा जाकर बिल में जाते हुए मेंढक की भाँति कुछ अस्पष्ट बोलता हुआ मूर्ख मंत्री बैठा है। इसलिये समय की प्रतीक्षा करूँगा।

(ततः प्रविशति राजा मन्त्री च।)

राजा—(कर्णं दत्त्वा ।) कार्यपर्यालोचनयातिक्रान्तोऽप्यर्धदिवसो न ज्ञातः। यत इदानीम्।

प्रासादोदरपुञ्जितप्रतिरवप्राग्भारदीर्घीकृतं
सद्यः पञ्जरगर्भ एव चकितानुद्भ्रामयन्तं शुकान्।
कार्यव्याप्रियमाणमानवमुखं कर्षन्तमात्मोन्मुखं
मध्याह्नागमसूचनाय पटहो धत्ते ध्वनिं ताडितः ॥२॥

संप्रति हि घोरातपसंतापमसहमानाः प्राणिनः प्रायेण प्रच्छायशीतलं प्रदेशमावासाय प्रार्थयन्ते । तथा हि ।

आसीदन्ति विशालशैलशिखरभ्रश्यन्नदीनिर्झरां
शुक्लापाङ्गकुलानि सूर्यकिरणैः शून्यामरण्यावनीम् ।

[इसके पीछे राजा और मन्त्री आते हैं]

राजा—(कान लगाकर) काम के अन्दर लगा होने से बीतता हुआ आधा दिन भी मालूम नहीं पड़ा। जिससे अब–

२—प्रासाद के अन्दर एकत्रित प्रतिध्वनि के बहुत अधिक भार से लम्बी बनी, तुरन्त ही पिञ्जरे के अन्दर स्थित भय से डरे तोतों को बेचैन करती हुई; कार्य में लगे मनुष्यों के मुख को अपनी ओर खींचती हुई ध्वनि को मध्याह्न के आने की सूचना देने के लिए बजाया गया नगाड़ धारण करता है।

क्योंकि इस समय तीव्र धूप की गरमी को सहन करते हुए प्राणि मुख्य रूप में अतिशय छाया से शीतल बने स्थानों में आश्रय लेने की इच्छा करते हैं। क्योंकि—

३—मोरों के समूह विशाल पर्वतों के शिखरों से बहते हुए नदियों के प्रपात वाले, सूर्य की किरणों से शून्य जंगल के प्रदेशों में पहुँच रहे हैं। आलोडन से विकसित कमल की कलियों के खिलने से सुगन्धित

आवर्तस्फुटपुण्डरीकमुकुलप्रेङ्खोलनोद्गन्धिना
तृप्यन्तो मरुता स्वपन्ति च नदीतीर बिलेषूरगाः ॥ ३ ॥

बनी वायु से तृप्त होकर साँप नदी के किनारे बिलों में सो रहे हैं (सर्पाः पिबन्ति पवनं न च दुर्बलास्ते) ।

वक्तव्य—कालिदास ने भी मध्यान्ह का वर्णन अपने काव्यों में दिया है, यथा—

(१) विक्रमोर्वशीय में—

उष्णालुः शिशिरे निषीदतितरोर्मूलालवाले शिखी
निर्भिद्योपरि कर्णिकार मुकुलान्यालीयति षट्पदः ।
तप्तं वारि विहाय तीर नलिनीं कारण्डवः सेवते
क्रीडावेश्मनि चैषपञ्जरशुकः क्लान्तो जलं याचते ॥ २।२२

(२) मालविकाग्निमित्र में—

पत्रच्छायासुहंसाः मुकुलितनयना दीर्घिका पद्मिनीनां
सौधान्यत्यर्थतापाद्वलभी परिचयद्वेषि पारावतानि ।
बिन्दूत्क्षेपान्पिपासुः परिसरति शिखीभ्रान्तिमद् वारि यन्त्रं
सर्वैरुस्रैः समग्रैस्त्वमिव नृपगुणैर्दीप्यते सप्तसप्तिः ॥ २।१२

ऋतुसंहार में—

(३) मृगाः प्रचण्डातपतापिताभृशं तृषा महत्या परिशुष्कतालवाः ।
वनान्तरे तोयमिति प्रधाविता निरीक्ष्य भिन्नाञ्जन संनिभं नभः ॥

(४) रवेः मयूखैरभितापितो भृशं विदह्यमानः पथितप्तांशुभिः ।
अवाङ्मुखो जिह्मगतिः श्वसन्मुहुः फणीमयूरस्य तले निषीदति॥

मध्याह्न को सूचित करने के लिये नगाड़ा बजाने का उल्लेख बाण ने भी किया है, यथा—

"एवमुच्चारयत्येव तस्मिन्नशिशिरकिरणमम्बरतलस्य मध्यमध्यारूढमावेदयन्नाडिकाछेद प्रहतपटु पटहनादानुसारीमध्याह्न शंखध्वनिरुदतिष्ठत ॥ कादम्बरी

मन्त्री—अहो यौवनश्रियं पुष्णात्येष दिवसः । यतः ।

छायाशीतलमध्वनि द्रुमतलं चण्डातपोपप्लुताः
शौरिं दानवपीडिता इव सुराः पान्था भजन्ति द्रुतम् ।
दुष्कीर्तिं क्षितिपा इव प्रकृतिभिर्लोभावधूतार्थिनो
गाहन्ते च करेणुभिः सह नदीमारण्यका वारणाः ॥ ४ ॥

अपि चेदानीम्

घर्माम्भः कणलुप्यमानमकरीपत्राङ्कुरालंक्रियं
भूयिष्ठोद्गतफूत्क्रियानिलगलन्मासृण्यबिम्बाधरम् ।
ताम्यल्लोचनतारकालसगतिव्याख्याततनिद्रागमं
प्रच्छाये पथि रोचते स्थितवते पान्थाय कान्तामुखम् ॥ ५ ॥

मन्त्री—अहो; मध्याह्न दशा की अन्तिम स्थिति से यह दिन शोभित हो रहा है (ठीक दुपहरा चढ़ा है) । क्योंकि—

४—अति क्रूर मध्याह्न सूर्य की गरमी से पीड़ित पथिक मार्ग में वृक्ष के नीचे छाया से शीतल प्रदेश में जल्दी से पहुँच रहे हैं; जैसे कि राक्षसों से पीड़ित देवता लोग इन्द्र के पास पहुँचे थे । जिस प्रकार कि लोभ से तिरस्कृत याचकों द्वारा अपनी प्रजा के साथ राजा दुष्कीर्त्ति को प्राप्त करता है; उसी प्रकार से जंगल के हाथी हस्तिनियों के साथ नदी में स्नान कर रहे हैं ।

वक्तव्य—लोक में प्रचलित भी है, जैसा राजा, वैसी प्रजा—यथा राजा तथा प्रजा,—"राज्ञे धर्मिणि धर्मिष्ठाः पापे पापरता जनाः"—इसलिये राजा के साथ प्रजा की भी याचक निन्दा करते हैं ।

और भी इस समय—

५—पसीने के जल विन्दुवों से नष्ट होती हुई मकरी पत्र के अंकुरों की शोभा वाले; अत्यधिक निकलती हुई फूत्कार की वायु से नष्ट हुई विम्बीरूपी ओठों की चिकणता वाले, बन्द होती हुई आँखों की पुतलियों में आलस्य आने के कारण नींद की प्रतीति होने से; धूपरहित मार्ग में

राजा—(स्वगतम् ।) नन्वस्मिन्नवसरे

स्नातव्यं जपितव्यं वसितव्यं नमस्तिव्यमत्तव्यम् ।
अव्स्वंशुकमनुकूलं दैवतमन्नं क्रमेण मया ॥ ६ ॥

(प्रकाशम् ।) किमतःपरमाचरितव्यम् ।

मंत्री—मध्याह्न इति बुभुक्षिताः परिजनाः । ततः स्नानार्थमुत्तिष्ठतु महाराजः ।

(राजा उत्तिष्ठति मंत्री च ।)

विदूषकः—(श्रुत्वा ।) एवंवादिणो मन्तिणो होदु पुण्णलोओ । (उपसृत्य ।) जेदु जेदु महाराओ । [एवंवादिनो मंत्रिणो भवतु पुण्यलोकः । जयतु जयतु महाराजः ।]

श्रम को दूर करने के लिए बैठे मुसाफिर को प्रिया का मुख अच्छा लग रहा है।

वक्तव्य—मकरी पत्र–मकरिका के पत्रों का चित्रण ; मेंहदी आदि वस्तुओं से जो अलंकार क्रिया शरीर के अंगों पर की जाती है । मकड़ी के जाल के समान शरीर पर किया गया चित्रण ।

राजा—(अपने आप ही) इस समय में निश्चय से—

६—जल में स्नान करना चाहिये, वस्त्र' धारण करना चाहिए, काल के उचित (अथवा मन के अनुकूल) जप करना चाहिए; देवता को नमस्कार करना चाहिये, अन्न को खाना चाहिए, ये काम मुझे क्रमशः करने चाहियें ।

(स्पष्ट रूप में) इसके बाद क्या करना चाहिये ।

मन्त्री—दुपहर हो गई है, इससे घर के आदमी भूखे हैं; इसलिए स्नान की इच्छा के लिए महाराज उठें ।

[राजा उठता है और मन्त्री भी उठता है]

विदूषक—इस प्रकार कहते हुए मन्त्री को स्वर्ग मिले; महाराज की जय हो ।

राजा—वयस्य, कथमागतोऽसि ।

विदूषकः—(मंत्रिणं प्रति ।) अवि कुसलं अमच्चस्स । [अपि कुशलममात्यस्य ।]

मंत्री—कथमभ्यवहारसमय इति प्राप्तोऽसि ।

विदूषकः—दाणिं जेव णिअघरे भोअणं कदुअ आअदेण अज्जेण वि किंतिण विण्णादं मज्झण्हो वट्टदि त्ति । [इदानीमेव निजगृहे भोजनं कृत्वा आगतेनार्येणापि किमिति न विज्ञातं मध्याह्नो वर्तत इति ।]

मंत्री—विज्ञातमेव । श्रूयतामिदानीम् ।

यूना सस्पृहदृश्यमानकवरीभारोरुपीनस्तनी
पान्थेनाध्वनि शालिगोपवनिता शून्ये स्फुरद्यौवना ।
आसन्नांनिविरीसवारणवुसापत्रापनीतातपा-
मारामर्त्तितमापगातटगतां साकूतमालोकते ॥ ७ ॥

विदूषकः—(समुखभङ्गम् ।) अण्णस्स पुरिसस्स अण्णाए इत्थि-

राजा—मित्र ! कैसे आये हो ।

विदूषक—(मन्त्री की ओर देखकर) क्या मन्त्री कुशल से हैं ?

मन्त्री—तुम भोजन के समय कैसे आ गये ।

विदूषक—इसी समय ही अपने घर में भोजन करके आये हुए आप इतना भी नहीं जानते कि मध्याह्न हो गया है ।

मन्त्री—जान लिया है; सुनिये, इस समय--

७—एकान्त मार्ग में बहुत लम्बे केशों एवं पीनोन्नतस्तन एवं उरुवाली, खिलते हुए यौवन की, धान के खेतों की रक्षा करती हुई तरुणी, उठती हुई जवानी वाले किसी राहगीर द्वारा; समीप में ही लगे अनिघट्ट एवं लम्बे केले के पत्तों से धूप को रोकती हुई, नदी किनारे के उद्यान वन की शीतल छाया में मतलब के साथ बेचैनी पूर्वक देखी जा रही है ।

विदूषक—(मुख को टेढ़ा करके)—अन्य पुरुष का अन्य स्त्री के

आए संपक्कसूअणं णाम अणुइदं किं ति वण्णीअदु अज्जेण । जइमज्झण्हो वंणणीओ त्ति आग्गहो तदो माणवाणं संभाविदं पाणभोअणं वंणीअदु । जेण सुदमेत्तेण वि मह संतोसो होदि । [अन्यस्य पुरुषस्यान्यया स्त्रिया संपर्कसूचनं नामानुचितं किमिति वर्ण्यते आर्येण । यदि मध्याह्नो वर्णनीय इत्याग्रहस्तदा मानवानां संभावितं पानभोजनं वर्णयतु । येन श्रुतमात्रेणापि मम संतोषो भवति ।]

मंत्री—(विहस्य ।) भोजने तत्प्रकारस्य तत्साधनस्य च श्रवणे कुतूहली भवान् ।

(प्रविश्य ।)

दौवारिकः—महाराअ, उवाइअणहत्था सामन्तभूवाला संपत्ता मए वि तिदीअकच्छं पवेसिदा महाराओ पेक्खिदव्वोत्ति चिट्ठन्ति । [महाराज, उपायनहस्ताः सामन्तभूपालाः संप्राप्ता मयापि तृतीयकक्षां प्रवेशिता महाराजः प्रेक्षितव्य इति तिष्ठन्ति ।]

(राजा मंत्री च तद्दर्शनप्रदानाय निर्गमनं नाट्यतः ।)

विदूषकः—(आत्मगतम् ।) अए दासीएपुत्तेहिं सामन्तराएहिं

साथ सम्बन्ध बताना अनुचित है; इसका आर्य क्यों वर्णन करते हैं। यदि आपका यह आग्रह कि मध्याह्न का वर्णन करना है, तब मनुष्यों से संभावित खान-पान का आप वर्णन करें। जिस वर्णन के सुनने मात्र से ही मेरा संतोष होगा।

मन्त्री—(हँसकर) भोजन के सम्बन्ध में, भोजन के प्रकार (विचित्रतायें) और उनकी पाचनविधि को सुनने में आपको कुतूहल है।

दौवारिक—महाराज ! हाथों में उपहार लिए सामन्त राजगण आ गये हैं; मेरे द्वारा तृतीय प्रकोष्ठ में बैठाये महाराज की प्रतीक्षा कर रहे हैं।

[राजा और मन्त्री उनको दर्शन देने के लिए निकलने का अभिनय करते हैं]

विदूषक—अये, इन दासी के पुत्र सामन्त राजाओं ने मेरा उत्साह

मह ऊत्साहभङ्गो किदो । [अये, दास्याः पुत्रैः सामन्तराजैर्ममोत्साहभङ्गः कृतः ।]

(इति तदनुसरणं नाट्यति ।

मंत्री—एते स्वामिनं प्रणमन्ति ।

राजा—(आकाशे ।) अपि कुशलिनो यूयम् ।

मंत्री—एते 'स्वामिनः कुशलप्रश्नेन कृतार्थाः स्मः' इति वदन्ति ।

विदूषकः—(स्वगतम् ।) बुभुक्खिदस्स मह अकुसलं ति ण जाणादि वअस्सो । [बुभुक्षितस्य ममाकुशलमिति न जानाति वयस्यः ।

मंत्री—

कश्चित्स्वर्णौघमेको मणिगणमपरो भूषणव्रातमन्यः
क्षौमस्तोमं परोऽश्वान्रथकुलमितरो बालमातङ्गसंघम् ।
सामन्तक्षोणिपालेष्वहमहमिकयोपाहरद्दाष्टपातै-
र्देवस्यानुग्रहीतुं सकरुणमुचितं सर्वमित्यर्थयेऽहम् ॥ ८ ॥

ही नष्ट कर दिया ।

[इस प्रकार उनके पीछे जाने का अभिनय करता है]

मन्त्री—ये सामन्त स्वामी को नमस्कार करते हैं ।

राजा—(आकाश में देखकर) आप सब कुशल से हैं ।

मन्त्री—स्वामी के कुशल पूछने से हम सब कृतार्थ हो गये; ऐसा ये कहते हैं ।

विदूषक—भूखा होने से मैं अकुशल हूँ, यह मित्र नहीं जानता ।

मन्त्री—सामन्त राजाओं में—

८—कोई सामन्त सोने का ढेर भेंट रूप में लाया है; कोई मणियों का समूह, दूसरा आभूषणों का ढेर उपहार में देने के लिए; कोई, रेशम का समूह, कोई घोड़ों को, कोई रथों को और कोई हाथी के बच्चों को भेंट देने के लिए मैं पहिले, मैं पहिले, इस प्रकार संघर्ष पूर्वक प्रविष्ट होते हुए उनके ; उत्तम भेंटों को राजा के लिए निवेदन करके, (मन्त्री कहता है कि)

अपि च ।

हंसाश्चित्रगताः शुकाः स्फुटगिरो लावा मिथोऽमर्षिणः
श्येनाः शीघ्रजवाः शिखण्डिन उपारोहत्कलापोच्चयाः ।
आनीतास्तपनीयपञ्जरगता भूपैरमीभिर्मुदा
किं चावेक्षितविक्रमाश्च मृगयाकालेषु कौलेयकाः ॥ ९ ॥

राजा—मंत्रिन्,

दत्तानि भूपतिभिरेभिरुपायनानि
तेषां वशे कुरु मयाधिकृता नरा ये ।
एतान्सभाजयितुमर्पय तत्तदर्हा-
न्युष्णीषकञ्चुकदुकूलविभूषणानि ॥ १० ॥

मन्त्री—यथाज्ञापयति देवः ।

इन सब उपहारों पर महाराज अपनी निगाह डालकर अपनी प्रसन्नता प्रकट करें, यह मैं आप से उनके लिए प्रार्थना करता हूँ ।

और भी—

९—सोने के पिञ्जरों में रक्खे हुए विनोदगति वाले हंस, स्पष्ट बोलने वाले तोते, परस्पर एक दूसरे पर क्रोध करने वाले सहन न करने वाले बटेर, जल्दी जाने वाले बाज, बहुत लम्बी पिच्छा वाले मोर, इन राजाओं से प्रसन्नता पूर्वक लाये गये हैं; और भी—आखेट के समय देखा गया है पराक्रम जिनका, ऐसे सूअर भी उपहार में लाये गये हैं ।

राजा—हे मन्त्री—

१०—इन उपस्थित राजाओं से दी हुई भेंट को मेरे से नियुक्त जो मनुष्य हैं, उनको सौंप दो । इन राजाओं का सम्मान करने के लिए प्रत्येक के योग्य पगड़ी, कञ्चुक (पोषाक), दूकूल (दुपट्टा) और आभूषण दो (प्रत्येक राजा के गौरव के अनुसार उसे पगड़ी, पोशाक, उत्तरीय, आभूषण दो) ।

मन्त्री—जैसी महाराज आज्ञा देते हैं ।

विदूषकः—णं वअस्स, मए वि विजई होइत्ति वाआमेत्तेण तुह उवाअणं दिण्णं तदो बुभुक्खिदं मं किं त्ति ण संभावेसि। [ननु वयस्य, मयापि विजयी भवेति वाचामात्रेण तवोपायनं दत्तं तद्बुभुक्षितं मां किमिति न संभावयसि ।]

मन्त्री—राजन्, श्रोतव्यः कार्यशेषः ।

विदूषकः—हुँ, चिट्ठदु दासीए वच्छो कज्जसेसो। वअस्स, किं मह पडिवअणम् । [हुं, तिष्ठतु दास्या वत्सः कार्यशेषः । वयस्य, किं मम प्रतिवचनम् ।]

राजा—मन्त्रिन्, ब्राह्मणस्य प्रथमं भोजनं निर्वर्तयेति अन्तःपुरं गत्वा देवीं वद। अतः प्रागेव संभाव्यच सामन्तभूपान्स्वस्थानं प्रेषय। वयस्य, त्वमपि मन्त्रिणा सह गच्छ ।

विदूषकः—दीहाओ होइ । [दीर्घायुर्भव !]

मन्त्री—विजयी भवतु देवः। (इति विदूषकेण सह निष्क्रान्तः ।)

राजा—कः कोऽत्र भोः ।

विदूषक—हे मित्र ! आप विजयी हों; यह उपहार मैंने भी वचन से आपको दिया है, इस पर भी मुझ भूखे की आप कोई चिन्ता नहीं करते ।

मन्त्री—राजन ! बचे हुए कार्य को सुनना चाहिए ।

विदूषक—हुँ; दुष्ट कार्य शेष रहे; मित्र, मुझे क्या कहते हो।

राजा—मन्त्री—पहिले ब्राह्मण को भोजन करा दो, ऐसा अन्तःपुर में जाकर देवी को कहो। इसलिये जल्दी ही सामन्त राजाओं का सत्कार करके उनको अपने अपने स्थान पर भेज दो। मित्र! तू भी मन्त्री के साथ जा।

विदूषक—दीर्घायु हों।

मन्त्री—महाराज विजयी हों।

[इस प्रकार विदूषक के साथ निकल गया]

राजा—यहाँ पर कौन है ।

(प्रविश्य ।)

दौवारिकः—आणवेदु महाराओ। अह पस्स एव-चिट्ठमि। [आज्ञापयतु महाराजः। अहं पार्श्व एव-तिष्ठामि]

राजा—मज्जनगृहमार्गमादेशय।

दौवारिकः—इदो इदो भवं। [इत इतो भवान्।] (परिक्रम्यावलोक्य च संस्कृतमाश्रित्य।)

स्नातुं ते परिचारिकाः स्तनभरश्रान्ताः शनैः सांप्रतं
क्वाथोष्णानि जलानि मज्जनगृहे कुम्भीषु संगृह्णते।
आयान्तीव तृषा जलार्थनमिषादासां विलासाद्गतिं
हंसाः केशभरश्रियं च शिखिनः स्नेहादिमा याचितुम्॥ ११॥

अत्र च हिरण्मयस्य गृहस्थूणस्य पार्श्वभागे

अभ्यङ्गाय सुवर्णपात्रनिहितं तैलं वलत्सौरभं
विस्तीर्णस्फुटकर्णिकारकुसुमे येनाभिभाव्यं मधु।

[प्रविष्ट होकर]

दौवारिक—महाराज आज्ञा करें; मैं पास में ही खड़ा हूँ।

राजा—स्नान गृह का रास्ता दिखाओ।

दौवारिक—इधर से आइये।

[घूमकर और देखकर]

११—आपके स्नान के लिये, स्तनों के भार से थकी परिचारिकायें, इस समय, उबाल कर गरम किये जल को स्नान गृह में घड़ों के अन्दर धीरे धीरे भर रही हैं। घर में पाले हुए हंस जल पीने के बहाने से इन सेविकाओं के सुन्दर पद विन्यास क्रम को, तथा पाले हुए मोर जल पीने के बहाने से इनके पास आ कर केशपाशों की शोभा को स्नेह के कारण इनसे माँगने के लिए स्नान गृह की ओर आ रहे हैं।

और यहीं पर स्वर्ण के बने गृहस्तम्भ के पार्श्व भाग में—

१२—विशाल एवं खिले हुए अमलतास के फूल में रहने वाली सुगन्ध को भी जिसने तिरस्कृत कर दिया है; चारों ओर सुगन्ध को विख·

न्यस्तं चन्दनदारुनिर्मितमिदं कूर्मासनं चासितुं
यत्पृष्ठे पृथिवीव च त्रिगुणिता कौशेयशाटी स्थिता ॥ १२ ॥

अपि च नवाम्बुदश्यामलायां विपुलायतायामिन्द्रनीलमणिनिर्मितायां हर्म्यभित्तौ प्रतिफलितवपुश्चेटीजनस्तडिल्लताविन्यासमवलम्बते । अत्रैव

राने वाला तैल स्वर्ण पात्र में आपके अभ्यंग के लिये रक्खा है। चन्दन की लकड़ी से बना कूर्मासन (कछुए के समान बीच से ऊँची चौकी) बैठने के लिए है ; जिस आसन की पीठ पर तीन तह की हुई रेशम की धोती, पृथ्वी की भाँति स्थित है।

वक्तव्य—कूर्मासन—कछुए की पीठ के समान बीच से ऊँचा आसन है ; जिसके पिछले भाग पर तीन तह की हुई धोती रक्खी है। आसन पर्याप्त बड़ा है, जिससे धोती स्नान के जल से गीली न हो ; कूर्माकार होने से पानी नीचे बह जायेगा। पृथ्वी भी कछुए की पीठ पर स्थित है ; इसके भी तीन लोक हैं ; भू, भुवः और स्वः इसी तरह धोती की भी तीन तह हैं।

तैल अभ्यंग के लाभ—

इन्द्रियाणि प्रसीदन्ति सुत्वग्भवति चाननम् ।
निद्रा लाभः सुखं च स्यान्मूर्ध्नि तैल निषेवणात् ॥
स्नेहाभ्यंगाद्यथा कुम्भश्चर्म स्नेह विमर्दनात् ।
भवत्युपाङ्गदक्षश्च दृढः क्लेशसहो यथा ॥
तथा शरीरमभ्यंगात् दृढ सुत्वक् च जायते ।
प्रशान्त मारुताबाधं क्लेश व्यायाम संसहम् ॥
स्पर्शनेऽभ्यधिकोर्वायुः स्पर्शनं च त्वगाश्रितम् ।
त्वच्यश्चपरभोऽभ्यंगस्तस्मात्तं शीलयेन्नरः ॥
सुस्पर्शोपचिताङ्गश्च बलवान् प्रियदर्शनः ।
भवत्यभ्यंग नित्यत्वान्नरोऽल्प जर एव च ॥ चरक

और भी—पानी से भरे नये मेघों के समान श्याम वर्ण अति विशाल

कञ्चुकया दृढसंयतस्तनभरा हारं गले कुर्वती
पश्चाल्लम्बितमम्बरं च जघने काञ्च्या दृढं बध्नती ।
स्वेदाम्भः कणमञ्जरीं च मृजती चेलाञ्चलेनानने
चेटीष्वेकतमेयमत्र यतते कर्तुं तवाभ्यञ्जनम् ॥ १३ ॥

राजा—दौवारिक, मन्त्री विदूषकश्च कृतोचितव्यापारो न वेति विचार्यताम् । अहमप्यत्र स्नात्वा कृतशिवार्चनो भोजनाय यतिष्ये ।

दौवारिकः—तह । [तथा ।] (इति निष्क्रान्तः ।)

राजा—(स्मृतिमभिनीय ।) अये महानुभावा शिवभक्तिः, यस्याः प्रसादाद्भगवन्तं साम्बं साक्षात्कृत्य तदीयकरुणाकटाक्षामृतनिःष्यन्दकन्दलिताखिलपुमर्थोऽपि सन्संप्रति प्राकृतानर्थनिवर्तकान्रसगन्धकानासाद्य तावतैव

लम्बी इन्द्र नील से बनी घर की भित्ति पर पड़ता हुआ चेटी जनों का प्रतिबिम्ब विद्युतलता का भ्रम उत्पन्न कर रहा है । यहीं पर ही—

१३—स्नानगृह में सेविकाओं में से एक सेविका कंचुली (आंगी) से स्तनों को दृढ़ता से भली प्रकार बाँधे हुए हार को गले में करती हुई और पीछे लटकते हुए वस्त्र को कटि पर रशना (तगड़ी) के साथ मजबूती से बाँधती हुई मुख पर से पसीने के बिन्दुओं की माला को वस्त्र के छोर से पूँछती हुई, आपका अभ्यंग करने का यत्न कर रही है ।

राजा—दौवारिक ! मन्त्री और विदूषक ने अपना कार्य पूरा कर लिया है, वा नहीं, यह पता लगाओ । मैं भी यहाँ पर स्नान करके, शिव की पूजा करके भोजन करूँगा ।

दौवारिक—जैसी आज्ञा (ऐसा कह कर चला गया)

राजा—(कुछ याद आ गया ऐसा नाट्य करके), आये ! शिव भक्ति बहुत प्रभावशाली है ; जिस शिव भक्ति की कृपा से पार्वती के साथ भगवान शिव का साक्षात्कार करके, उनकी करुणा दृष्टिपात से निकलते हुए अमृत के स्रोत से मेरे धर्म-अर्थ-काम और मोक्ष ये चारों पुरुषार्थ अंकुरित हो जाने पर भी, इस समय उपस्थित अनर्थ को दूर करने वाले

कृतकृत्यंमन्यो मूढोऽहं विस्मृतवानस्मि तां भगवतीं शिवभक्तिम्। अहो धिक् प्रमादम्। नूनं सा भगवती मां कृतघ्नं मन्येत। (निःश्वस्य।)

दृङ्मात्रदर्शितनिजप्रथितप्रभावा
प्रह्लादभूसुरभूरुहमूलभूता।
जन्मान्तरीयतपसां परिपाकतः सा
प्राप्तापि दैवहतकेन मया विमुक्ता॥ १४॥

तामेव हा स्मितसुधामधुराननेन्दुं
भक्तिं तथा निरुपमामसकृद्विचिन्त्य।
स्नातुं च भोक्तुमशितुं शयितुं विहर्तुं
शक्नोमि नाहमधुना परितप्यमानः॥ १५॥

रस और गन्धक को प्राप्त करके इतने से ही अपने को कृतकृत्य समझता हुआ मैं मूर्ख, उस भगवती शिव भक्ति को भूल गया हूँ। अहो! धिक्कार है इस प्रमाद को। निश्चय से वह भगवती शिवभक्ति मुझे कृतघ्न मानेगी। (निःश्वास ले कर)।

वक्तव्य—कन्दली का वास्तविक अर्थ नई निकलती हुई छोटी छोटी घास है; यथा-मेघदूत में—आविर्भूत प्रथम मुकुलाः कन्दलीश्चानुकच्छम्—"कन्दली-भूमिकदली; द्रोणपर्णी स्निग्धकन्दा कन्दली भूकदल्यपि।" इसे भूईकेली कहते हैं।

१४—दृष्टिपात मात्र से ही दिखा दिया है अपना प्रसिद्ध प्रभाव, अत्यधिक आनन्द रूपी भूमि में कल्पतरु की मूल भूत (परमानन्द जननी) वह शिव भक्ति अनेक जन्मों के तप के परिणाम से प्राप्त करके भी मुझ दैवहतक से छोड़ दी गई।

१५—स्मितसुधा से सुन्दर चन्द्रमुखी, असाधारण प्रभाव वाली, उस शिव भक्ति को कदम कदम पर सोचकर दुःखी होता हुआ मैं इस समय स्नान की, भोजन करने की, सोने की, विहार करने की इच्छा नहीं कर सकता। हा—यह कष्ट का सूचक है।

हृदयानन्दविधात्रीं भक्तिं तामन्तरा न मे सौख्यम् ।
आसरेण विना किं घर्मग्लानस्य शालिनस्तृप्तिः ॥ १६ ॥

तत्कथमहं प्राकृतमिमं व्यासंगं परित्यज्य तामेव परमानन्दलीलामनुभूय कृतार्थो भूयासम् । (इति सचिन्तस्तिष्ठति ।)

(ततः प्रविशति स्मृतिः ।)

स्मृतिः—अम्मो, भअवदीए शिवभत्तीए विओएण वलिअं उक्कण्ठिदो राआ सपदं ण्हाणभोअणव्वावारं वि णाणुमण्णेदि । ता तुरिअं गदुअ भअवदीए इमं वुत्तन्तं णिवेदिअ ताए णं संयोजइदुं यतिस्सं ति पुण्डरीअपुरं गदुअ तत्थ सद्धाएसेविज्जन्तीं भअवदिं देट्ठूण सद्धामुहेण तह संविधाणं कदुअ आअदम्हि । ता राअसमीवं गदुअ एदं णिवेदेमि । (इति परिक्रम्योपसृत्यच ।) जेदु जेदु देवो । [अहो, भगवत्याः शिवभक्तेर्वियोगेन बलवदुत्कण्ठितो राजा सांप्रतं स्नानभोजनव्यापारमपि नानुमन्यते । तत्त्वरितं गत्वा भगवत्या इमं वृत्तान्तं निवेद्य तयैनं संयोजयितुं यतिष्य

१६—हृदय में आनन्द देने वाली उस शिव भक्ति के बिना मुझे किसी से आनन्द नहीं; गरमी से मुर्झाये वृक्ष को मूसलाधार वर्षा के बिना कैसे शान्ति हो सकती है ?

तो किस प्रकार से मैं सामान्य जनों के योग्य इस आसक्ति को छोड़कर उसी अतिशय आनन्द दायक भूईकेली का अनुभव करके सफल हूँगा (इस प्रकार चिन्ता करता हुआ आ बैठता है) ।

[इसके पीछे स्मृति आती है] ।

स्मृति—(घूमकर और पास में आकर). महाराज की जय हो; अहो ! भगवती शिव भक्ति के वियोग से अति बेचैन बना राजा अब स्नान और भोजन भी नहीं करता । इसलिये जल्दी जाकर भगवती को यह वृत्तान्त कहकर उसके साथ इसको मिलाने का यत्न करूँगी; इस प्रकार पुण्डरीकपुर में जाकर, वहाँ श्रद्धा से सेवा की जाने वाली भगवती को देख कर श्रद्धा के द्वारा मिलाने का प्रबन्ध करके मैं आई हूँ । इस से राजा

इति पुण्डरीकपुरं गत्वा तत्र श्रद्धया सेव्यमानां भगवतीं दृष्ट्वा श्रद्धा-मुखेन तथा संविधानं कृत्वा आगतास्मि । तद्राजसमीपं गत्वा इदं निवेदयामि । जयतु जयतु देवः ।]

राजा—(दृष्ट्वा ।) अये, कथमियं स्मृतिः । सखि, दिष्ट्या चिरा-दागतासि ।

स्मृतिः—देव, भअवदिं शिवभत्ति उद्दिसिअ तुह एआरिसीं बलिवदि उक्कण्ठं दिट्ठूण— देव, भगवतीं शिवभक्तिमुद्दिश्य तवैतादृशीं बलव-दुत्कण्ठां दृष्ट्वा] (संस्कृतमाश्रित्य ।)

के पास में जाकर यह सूचित करती हूँ । देव की जय हो ।

वक्तव्य—भग-ऐश्वर्य ; यह छः प्रकार है, तथा आठ प्रकार का है; यह ऐश्वर्य जिनको प्राप्त होता है; वे भगवान कहे जाते हैं । यथा—

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य वीर्यस्य यशसः श्रियः ।
ज्ञान वैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरणा ॥
आवेश्चश्चेतसो ज्ञानमर्थानां छन्दतः क्रिया ।
दृष्टिः श्रोत्रं स्मृतिः कान्तिरिष्टतश्चाप्यदर्शनम् ॥
इत्यष्टविधमाख्यातं योगिनां बलमैश्वरम् । चरक
उत्पत्तिं प्रलयं चैव भूतानामागतिं, गतिम् ।
वेत्ति विद्यामविद्यां च स वाच्यो भगवानिति ॥

स्मृति-स्मरण ; "स्मर्त्तव्यंहि स्मृतौ स्थितम् ।" चरक । यह स्मृति निम्न आठ कारणों से होती है—

निमित्तरुपग्रहणात् सादृश्यात् सविपर्ययात् ।
सत्वानुबन्धादभ्यासात् ज्ञानयोगात्पुनः श्रुतात् ॥
दृष्ट श्रुतानुभूतानां स्मरणात्स्मृतिरुच्यते ॥ चरक

राजा—(देखकर) अये ! यह स्मृति कैसे ? सखि ! भाग्य से देर में आई हो ।

स्मृति—देव ! भगवती शिव भक्ति के प्रति आपकी ऐसी बलवान उत्कण्ठा को देखकर—

यातं देव मया जवेन महता तत्पुण्डरीकं पुरं
श्रद्धायै विनिवेदितं च भवदीयौत्कण्ठ्यमेतादृशम् ।
तां त्वद्विस्मृतिकोपितामिव मुहुः संप्रार्थ्य भक्तिं तयै-
वागत्यानुजिघृक्षयसे न तु यथा श्रद्धा समाधात्तथा ॥ १७ ॥

राजा—(सहर्षम्) कथमेतावदनुगृहीतः । अहो प्रसादातिशयो मयि भगवत्याः । कथय सखि, किमत्रैवागमनानुग्रहं करिष्यति भगवती ।

स्मृतिः—अधइं । [अथ किम्] ।

(ततः प्रविशति श्रद्धया सह भक्तिः ।)

१७—हे देव ! मैंने अति वेग से उस पुण्डरीक में जाकर आपकी ऐसी उत्कण्ठा श्रद्धा को कही । आपके भूल जाने से कुपित हुई की भाँति उस शिव भक्ति को बार-बार अनुनय करके, जिस प्रकार उस भक्ति के स्वयं आने पर आप अनुगृहीत होंगे, उस उपाय द्वारा श्रद्धा ने समाधान किया।

राजा—(प्रसन्नता पूर्वक उत्कर्ष के साथ)—क्या इतना अधिक उपकार किया है। अहो, मेरे पर भगवती की असीम कृपा है । हे सखि! कहो, क्या भगवती यहीं पर आने की कृपा करेंगी ।

स्मृति—और क्या ।

[इसके पीछे श्रद्धा के साथ भक्ति आती है]

वक्तव्य—भक्ति-पूज्यों में अतिशय अनुराग ; श्रद्धा-शास्त्र से प्रतिपादित अर्थ में दृढ़ विश्वास; "प्रत्ययो धर्म कार्येषु नृणां श्रद्धेत्युदाहृता" श्रद्धा प्रत्येक मनुष्य में उसके अन्तःकरण के अनुरूप होती है (सत्त्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत) इसलिये श्रद्धा सात्विकी, राजसी और तामसी तीन प्रकार की है—

त्रिविधा भवति श्रद्धा देहिनां सा स्वभावजा ।
सात्त्विकी राजसी चैव तामसी चेति तां शृणु ॥

श्रद्धा के साथ भक्ति चलती है, इसी से गीता में कहा है—

श्रद्धावाननसूयश्च श्रृणुयादपि यो नरः ।
सोऽपिमुक्तः शुभांल्लोकान् प्राप्नुयात्पुण्यकर्मणाम् ॥ १८,७१

भक्तिः—सखि श्रद्धे, सहजनिः सङ्गनिर्मलस्वभावोऽपि देवो जीवस्तथा सर्वपुमर्थप्रसवित्रीमपि मां विस्मृत्य बुद्धिपारवश्यमापन्नो विरसविषयाभिमुख एव संवृत्तः ।

श्रद्धा--अम्ब, देवीए गुणमईए दुरच्चआए माआए कुडिलाए एसो अणादिसिद्धो सहावो जं विवेइणं वि पुरिसं मोहिअ विरसविसअप्पवणं करेइ । तह अ कदिदं अहिजुत्तेहिम् [अम्ब, देव्या गुणमय्या दुरत्ययाया मायायाः कुटिलाया एषोऽनादिसिद्धः स्वभावो यद्विवेकिनमपि पुरुषं मोहयित्वा विरसविषयप्रवणं करोति । तथा च कथितमभियुक्तैः ।] (संस्कृतमाश्रित्य ।)

भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवं विधोऽर्जुन ।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परंतप ।। ११।५४
भक्त्या मामभिजानाति यावन्यश्चास्मि तत्त्वतः ।
ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम् ।। १८।५५

भक्ति—सखि श्रद्धा ! स्वभाव से ही आसक्ति रहित निर्मल स्वभाव वाला भी जीव राजा तथा चारों पुरुषार्थों को उत्पन्न करने वाली मुझको भूल कर बुद्धि के पराधीन होकर विरस विषयों की (परिणाम में दुखदायी) ओर प्रवृत्त हुआ है ।

वक्तव्य—निःसंग-फल की आकांक्षा के बिना कार्य करना । इसी से गीता में कहा है—

सक्ताः कर्मण्यविद्वांसो यथा कुर्वन्ति भारत ।
कुर्याद् विद्वांस्तथा सक्तश्चिकीर्षु लोकसंग्रहम् ।। ३।२५
तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर ।
असक्तो ह्याचरन्कर्म परमाप्नोति पूरुषः ।। ३।१९

श्रद्धा—हे अम्ब ! गुणमयी ; दुर्निवार शक्ति युक्त; कुटिल माया देवी का यह अनादि सिद्ध स्वभाव है ; जो विवेकी पुरुष को भी मोहित करके लौकिक सुखों में आसक्त करती है । जैसा कि पंड़ितों ने कहा है—

वक्तव्य—प्रकृति ही माया देवी है, "मायां तु प्रकृतिं विद्यात्" ।

जरठापि काचिदसती संदर्श्य गुणान्परस्य पुरुषस्य ।
सङ्गं विनैव हसितैः सर्वस्वं हरति हन्त किं ब्रूमः ॥ १८ ॥

यह प्रकृति-सत्व-रज और तम इन गुणों वाली है, यह माया अतिशय शक्ति सम्पन्न है, यह कुटिल-रूप है। यथा—

सत्वं रजस्तम इति गुणाः प्रकृति संभवाः ।
निबध्नन्ति महाबाहो देहे देहिनमव्ययम् ॥ १४।५
त्रिभिर्गुणमयैर्भावैरेभिः सर्वमिदं जगत् ।
मोहितं नाभिजानाति मामेभ्यः परमव्ययम् ॥
देवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया ।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते ॥
न मां दुष्कृतिनो मूढ़ाः प्रपद्यन्ते नराधमाः ।
माययापहृतज्ञाना आसुरं भावमाश्रिताः ॥ ७।१३-१४-१५॥

प्रबोध चन्द्रोदय में भी कहा है—

सततधृतिरप्युच्चैः शान्तो ऽप्यवाप्त महोदयो-
ऽप्यधिगतनयो ऽप्यन्तः स्वच्छा ऽप्युदीरित धीरपि ।
त्यजति सहजं धैर्यं स्त्रीभिः प्रतारितमानसः
स्वयमपि यतो मायासङ्गात् पुमानिति विश्रुतः ॥

१८—कोई कुलटा स्त्री वृद्धा होने पर भी अपने नर्म युक्त हाव भाव दिखा कर संयोग के बिना ही हास्यों से दूसरे पुरुष का सम्पूर्ण धन हर लेती है ; दुःख है ; इसमें क्या कहें ?

वक्तव्य—प्रकृति को कुलटा रूप में वर्णित किया है, पुरुष—इससे पृथक् है—। यथा—

प्रकृति पुरुषं चैव विद्धयनादी उभावपि ।
विकारांश्च गुणांश्चैव विद्धि प्रकृति संभवान् ॥
कार्यकरण कर्तृत्वे हेतुः प्रकृतिरुच्यते ।
पुरुषः सुख दुःखानां भोक्तृत्वे हेतुरुच्यते ॥ १३।१९-२०

भक्तिः—भवतु । स खलु परमेश्वरस्यैवांशः । अतस्तस्मिन्मम दृढ प्रेमातिशयः ।

सत्यज्ञाननिधिः सदैव सहजानन्दस्वभावोऽप्ययं
देवो बुद्धिवशं गतः पुरमिदं त्रातुं व्यवस्यत्यहो ।
अस्त्वेतद्ध्युपयुक्तमात्मकलने तस्मान्निरस्तामयं
निश्चिन्तं पुनरीशतत्परमसुं कुर्यामभीष्टाप्तये ॥ १९ ॥

भक्ति—ऐसा ही सही—वह भी परमेश्वर का ही भाग है । इसलिये उस जीव में मेरा बहुत अधिक प्रेम है—

वक्तव्य—इसी से गीता में कहा है—

इतिक्षेत्रं तथा ज्ञानं ज्ञेयं चोक्तं समासतः ।
मद्भक्त एतद् विज्ञाय मद्भावायोपपद्यते ॥ १३।१८ ।

१९—यह देव (जीव) सदा से ही सत्य और ज्ञान का समुद्र एवं स्वभाव से ही आनन्द स्वरूप होने पर भी बुद्धि के वश में होकर इस पुर की रक्षा करने का यत्न करता है । ऐसा भले हो ; शरीर की रक्षा के लिये यह ठीक भी है ; क्योंकि शरीर की रक्षा करने से सब रोगों का नाश होकर इस जीव को अपवर्ग रूप मनोरथ की प्राप्ति के लिये फिर से परमेश्वर की भक्ति में लगाऊँगी ।

वक्तव्य—जीव आनन्दमय है, ऐसा श्रुति में भी कहा है—"आनन्दो ब्रम्हेति व्यजानात् । आनन्दाद्धयेव खल्विमानि भूतानि जायन्ते ।—तैत्तरीय ।५

चिरंचिदानन्दमयो निरञ्जनो जगत्प्रभुर्दीनदशामनीयत् ।

आत्मा शब्द देह के लिए रघुवंश में भी आया है, यथा—प्रसाद मात्मीयमिवात्मदर्शः"—रघुवंश, ७-५५ । शरीर ही धर्म का साधन है; शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम् ॥ कुमारसम्भव

धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यमूलमुत्तमम् ॥ वाग्भट

धर्म कार्यों में जब बाधा होने लगी तब प्रजाजनों को दुःखी देखकर ऋषि लोग हिमालय की तलैटी में एकत्रित हुए और वहाँ दिव्य चक्षुषों

श्रद्धा—जुज्जइ एदं णिरुपाधिणिरवधिकरुणाए भअवदीए। ता एहि तं जेव्व अणुग्गहीदुम्। (इति मार्गमुप दर्शयति) इदो इदो भववदी। [युज्यत एतन्निरुपाधिनिरवधिकरुणाया भगवत्याः। तदेहि तमेवानुग्रहीतुम्। इत इतो भवति।]

राजा—(श्रुत्वा) अहो अमृतासारमयः कोऽप्यालापः कर्णविवरमाप्याययति। सखि, किमागतवती भगवती।

स्मृतिः—को संदेहो। [कः संदेहः]

राजाः—(पुरोऽवलोक्य।) अहो।

निरुपाधिकनिःसीमकरुणामृतवारिधिः।
दिष्ट्या दृष्टा भगवती पुमर्थघटनापटुः॥ २०॥

(उत्थाय सरभसं प्रत्युद्गच्छति। श्रद्धाभक्ति परिक्रम्योपसर्पतः। राजा साष्टाङ्गं प्रणमति।)

से इन्द्र को आयुर्वेद का ज्ञाता जानकर उसके पास से आयुर्वेद सीखने के लिये भारद्वाज को भेजा था।

श्रद्धा—(मार्ग को दिखाती है)-इधर से आप आइये। कारण रहित, अपरिमित शिव भक्ति के लिये मोक्ष देने को यह इच्छा उपयुक्त ही है। इससे आइये; उसी को कृतार्थ करने के लिये, इधर से आप आइये।

राजा—(सुनकर) अहो, अमृत की धारा के समान सरस, अपूर्व संलाप कर्ण विवर को तृप्त कर रहा है। सखि, क्या भगवती आ गई हैं।

स्मृति—इसमें क्या संदेह।

राजा—(सामने देखकर) अहो—

२०—अकारण ही असीमित करुणारूपी अमृत की निधि (दया निधि), मोक्षरूपी चौथे पुरुषार्थ को सम्पादन में चतुर भगवती भक्ति भाग्य से ही प्रत्यक्ष की है।

[उठकर—घबराहट के साथ सामने जाता है, श्रद्धा और भक्ति परिक्रमा करके बैठती हैं, राजा साष्टांग प्रणाम करता है]।

भक्तिः—सकलाभीष्टभाजनं भूयाः ।

श्रद्धा—जेदु जेदु देवो । [जयतु जयतु देवः]

राजा—(उत्थाय ।) देवि निरुपधिकरुणानिधे, अपराधिनमपि मामेवमनुगृहीतवत्यसीति सकलमनोरथानामुपरि वर्तामहे ।

अवने हि निरागसां जनानां भजतां जाग्रति दैवतान्तराणि ।
अवनाद्विहितागसोऽपि मेऽस्तु प्रथितं ते निरुपाधिवत्सलत्वम् ॥ २१ ।

उक्तं चात्राभियुक्तैः ।

प्रवहन्ती तु दया तव परिहृतनीचोच्चवस्तुवैषम्या ।
पततु मयि स्फुटमधुना पङ्गोरुपरीव गगनगङ्गोर्मिः ॥२२॥

भक्ति—सम्पूर्ण मनोरथों के पात्र हों ।

श्रद्धा—देव विजयी हों ।

राजा—उठ कर देवि ! बिना कारण के भी दया के समुद्र ! मुझ अपराधी पर भी आपने ऐसी कृपा की, यह तो सब मनोरथों से (धर्म अर्थ काम और मोक्ष) भी अधिक है ।

२१—ब्रह्मा-इन्द्र-वरुण आदि अन्य देवता अपराध रहित एवं स्तोत्र-ध्यान आदि करने वाले मनुष्यों के ही रक्षण में प्रवृत्त होते हैं । मुझ अपराधी की भी रक्षा करने कारण तुम्हारा अकारण प्रेम करना सर्वत्र प्रसिद्ध हो ।

वक्तव्य—बच्चे से स्तनों के काटे जाने पर भी माता उसे स्नेह से दूध पिलाती है, इसी प्रकार मुझ अपराधी पर भी आप अकारण दया कर रही हैं;

जातापराधमपि मामनुकम्प्य गोदे गोप्त्री यदि त्वमसि युक्तमिदं भवत्याः ।
वात्सल्यनिर्भरतया जननी कुमारं स्तन्येन वर्धयति दष्टपयोधरापि ॥

इस विषय में लोगों ने कहा भी है—

२२—तुम्हारी दया नीचे, ऊँचे के भेद को छोड़कर सब स्थानों पर एक समान बहती हुई अब मेरे ऊपर बिना रुके गिरे, जिस प्रकार की

किञ्च

इयत्कृतं केन महाजगत्यामहो मदीयः सुकृतं जनेन ।
पादौयमुद्दिश्य तवापि पद्यारजस्सुपद्मस्रजभारभेते ।। २३ ।।

भक्तिः—देव, भवान्मामनुसृत्य बलवदुत्कण्ठितः प्रकृतकार्यविमुखः

आकाश गंगा का स्रोत लंगड़े के ऊपर भी समान रूप से गिरता है ।

वक्तव्य—इसी भाव के श्लोक श्रीदयाशतक और संकल्प सूर्योदय में भी आते हैं, यथा—

कलिक्षोभोन्मीलत्क्षितिकलुषकूलङ्कषजवै-
रनुगच्छेदैरेतैरवटतटवैषम्यरहितैः ।
प्रवाहैस्ते पद्मासहचरपरिष्कारिणी कृपे
विकल्पन्तेऽनल्पा वृष शिखरिणो निर्झरगुणाः ॥
निरन्ध्युः के विन्ध्याचल विकट सन्ध्यानटजटा-
परिभ्रान्ता पङ्गोरुपरि यदि गंगा निपतति ।।

और क्या—

२३—इस पृथ्वी तल पर किस मनुष्य ने मेरे सिवाय इतना अधिक पुण्यकर्म किया है, जिसको लक्ष्य करके (मुझ जीवराज को लक्ष्य बनाकर) तुम्हारे भी दोनों पैर मनुष्यों के चलने योग्य मार्ग की धूली में कमल के फूलों की माला को बनाना आरम्भ कर रहे हैं ।

वक्तव्य—भक्ति स्वयं पैरों से चलकर आई है, यह मेरे पुण्यकर्मों का ही परिणाम है । यही श्लोक नैषध के नवें सर्ग में भी आता है । निर्णयसागर में छपी प्रति में यह श्लोक नहीं है । यह श्लोक नैषध में दमयन्ती के मुख से नल को लक्ष्य करके कहलाया गया है । उसमें इतना ही पाठ भेद है—इयत्कृतं केन महोजगत्यामहो मदीयः सुकृतं जनेन । अर्थ में भी अन्तर है—किस आदमी ने—जगत में इतना पुण्य किया है, कि जिसके पैरों से, गली की धूली में कमल के फूलों की माला की पंक्ति बनती है ।

भक्ति—देव ! आप पहिले मुझे भूलकर और फिर स्मरण करके

संवृत्त इति श्रुत्वा तत्रभवन्तं सान्त्वयितुमागतास्मि । संप्रति विज्ञानमन्त्रि-मतानुसारेणैव प्रकृतशत्रुविजयाय व्याप्रियस्व । तदनन्तरम्

निर्जितनिखिलविपक्षं नीरुजपुरसुस्थमपगतातङ्कम् ।
अहमागत्य विधास्ये परमानन्दाब्धिमाप्तकामं त्वाम् ॥ २४ ॥

राजा—(सप्रश्रयम् ।) परमनुगृहीतोऽस्मि । इदं तु प्रार्थये ।

अतिशय उद्विग्न बनकर स्नान-पान-भोजन आदि दैनिक कार्यों से विमुख हो गये हैं, यह सुनकर आप श्रीमान् को सान्त्वना देने के लिए आई हूँ । अब विज्ञानशर्मा मन्त्री की सलाह से प्रस्तुत शत्रु की विजय के लिये उत्साह पूर्वक प्रयत्न करो । इसके पीछे —

२४—सम्पूर्ण शत्रु पक्ष को जीत कर, व्याधि रहित पुर में स्थित, भय को दूर किए तुझको मैं आ कर परमानन्द निधि तथा पूर्ण मनोरथ वाला करूँगा ।

वक्तव्य—शरीर के रोग-व्याधि ; भय-आधि-मानसिक रोग ; आधि और व्याधि से रहित शरीर ; रोग दो प्रकार के हैं ; शारीरिक और मानसिक ; "द्वेरोगनीके अधिष्ठान भेदेन ; मनोऽधिष्ठानं शरीराधिष्ठानं च ।" १—द्विविधंचैषामधिष्ठानं मनः शरीर विशेषात् ।" चरक । निरोगी शरीर में ही परमानन्द-ब्रह्म की प्राप्ति तथा चतुर्वर्ग रूपी मनोरथ पूर्ण हो सकते हैं ; इसी से कहा है "नायमात्माबलहीनेनलभ्यः ।" चरक में—

धर्मार्थकाममोक्षणामारोग्यंमूलमुत्तमम् ।
रोगास्तस्यापहर्त्तारः श्रेयसो जीवितस्य च ॥

प्रबोध चन्द्रोदय में भी इसी प्रकार का श्लोक है—

प्रशान्तारातिरगमद्विवेकः कृतकृत्यताम् ।
नीरजस्के सदानन्दे पदे चाहं निवेशितः ॥

राजा—(विनय के साथ) अतिशय अनुगृहीत हुआ हूँ । इतनी प्रार्थना करता हूँ ।

या प्रीतिरविवेकानामिति न्यायात्सदा मम।
हृदयान्मापसर्प त्वं प्रसीद करुणानिधे ॥२५॥

भक्तिः—तथा भवतु। (स्मृतिं प्रति।) अयि वत्से, एतत्त्वदायत्तम्।

स्मृति—भअवदि, अवहिदम्हि। [भगवति, अवहितास्मि।]

भक्तिः—तथा भवतु। (इति निष्क्रान्ता।)

राजा—(सोत्कण्ठम्।) कथं भगवती गतवती। (स्मृतिं प्रति।) सखि, सर्वदा हृदि संनिहिता भव।

स्मृतिः—तह। [तथा।] (इति निष्क्रान्ता।)

(प्रविश्य।)

२५—मूढ़ लोगों की जो प्रीति है, इस न्याय से मेरे हृदय से सदा तुम न हटो। हे भक्ति देवी ! तुम प्रसन्न हो।

वक्तव्य—विष्णुपुराण में यह न्याय आया है—

या प्रीतिरविवेकानां विषयेष्वनपायिनी।
त्वामनुस्मरतः सा मे हृदयान्मापगच्छतु ॥

अविवेकि पुरुषों की शब्द-रूप-रस-गन्ध-स्पर्श इन विषयों में जैसी दुर्निवार आसक्ति रहती है; उसी प्रकार की आसक्ति-प्रेम आपके लिए मेरे हृदय में उत्पन्न हो; और यह प्रीति-भक्ति कभी भी मेरे हृदय से दूर न हटे।

भक्ति—ऐसा ही हो (स्मृति की ओर) हे मित्र ! यह तुम्हारे अधीन है।

स्मृति—भगवति-सावधान हूँ।

भक्ति और श्रद्धा—विजयी हों (ऐसा कहकर निकल गईं)

राजा—(बेचैनी के साथ)-क्या भगवती चली गईं (स्मृति के प्रति)—सखि, सदा हृदय में पास में रहो।

स्मृति—(ऐसा ही)-(यह कहकर निकल गईं)

[प्रविष्ट होकर]

दौवारिकः—देव, एसो अमच्चो भुत्तवन्तेण विदूसएण अणुगदो आअच्छदि। [देव; एषोऽमात्यो भुक्तवता विदूषकेणानुगत आगच्छति।]

(ततः प्रविशति मन्त्री विदूषकश्च ।)

मन्त्री— किं भोः, साधु भुक्तं भवता ।

विदूषकः—देवीए बुद्धीए साहुपडिवेसणं किदं जहमणोरहं उदरं पूरिअम् । [देव्या बुद्धया साधुपरिवेषणं कृतं यथामनोरथमुदरं पूरितम् ।]
(सहर्षं संस्कृत्यमाश्रित्य ।)

पृथ्वायामि वितत्य गारुडमणिश्यामं कदल्या दलं
शाल्यन्यं घृतपक्वफाणितमथापूपैः सहार्पितम् ।
धन्या एव हि सूपपायसमधुक्षीराज्यदध्यन्वितं
नानाशाकयुतं फलैश्च मधुरैरेवं सदा भुञ्जते ॥२६॥

दौवारिक—देव ! यह मन्त्री भोजन किए विदूषक के साथ आ रहा है ।

[इसके पीछे मन्त्री और विदूषक आते हैं]

मन्त्री—क्या आपने ठीक प्रकार से भोजन कर लिया है ।

विदूषक—देवी बुद्धि ने ठीक प्रकार से पिरसा था जिससे पेट इच्छानुसार भर गया—

२६—(हर्ष के साथ) मरकत मणि के समान हरा, चौड़ा और लम्बा केले का पत्ता भूमि पर फैला कर, इस पत्ते पर घी में पके गुड़-राब से बने अपूपों के (मालपुओं के) साथ, दाल-खीर-मधु-दूध-घी और दही के साथ, नाना प्रकार के शाकों के साथ, मधुर फलों के साथ शाली चावलों का भात पिरसा। जो मनुष्य सदा ऐसा भोजन करते हैं, वे धन्य हैं।

व्याख्या—**फाणित का देशी नाम राब या भिज्जा है; यथा—**

ईक्षो रसस्तु य पक्वः किञ्चिद् गाढो बहुद्रवः ।
सएवेक्षु विकारेषु ख्यातः फाणित संज्ञया ॥

मन्त्री—भुक्तवतोऽप्येवमिहादरश्चेत्किमुत बुभुक्षितस्य । (राजानमुपसृत्य ।) विजयतां देवः । देवानुज्ञया सर्वेऽपि सामन्ता यथार्हं संभाविताः । अयमपि बटुराकण्ठमभीप्सिताभ्यवहार्येण भोजितो देव्या । तद्देवेनापि स्नानपूजनभोजनादिविधिर्निर्वर्त्यताम् ।

राजा—तर्ह्यत्रैवावस्थीयतां भवता । अहमपि प्रकृतमाह्निकं निर्वर्त्यागच्छामि । (इति दौवारिकेण सह निष्क्रान्ताः ।)

(नेपथ्ये ।)

अभ्यक्तः स्नापिताङ्गः शुचिवसनधरो जप्यमन्त्राञ्जपित्वा
देवानभ्यर्च्य भुक्त्वा घुमघुमितवपुश्चन्दनैश्चन्द्रमिश्रैः ।
रज्यत्ताम्बूलपूर्णाननसरसिरुहो रम्यमारामभागं
साकं देव्यैष राजा प्रविशति सुलभो यत्र दोलाविहारः ॥२७॥

मन्त्री—भोजन करने पर भी (पेट भर जाने पर भी) इसका इन भोजनों में इतना आदर है, तो भूखा होने पर कितना अधिक आदर होगा ? (राजा के पास जाकर) देव विजयी हों । महाराजा की आज्ञा से सब सामन्तों का यथा योग्य सत्कार कर दिया है । इस ब्राह्मण पुत्र को भी देवी ने गले तक इच्छित भोजन से तृप्त कर दिया है । इसलिये अब आप भी स्नान-पूजा-भोजन आदि विधि को पूरी करें ।

राजा—तो आप यहीं पर बैठें । मैं भी मध्याह्न सम्बन्धि दैनिक कार्यों को पूरा करके आता हूँ ।

[इस प्रकार दौवारिक के साथ बाहर निकल गया]

[नेपथ्य में]

२७—तैल का अभ्यंग करके स्नान किए, धुले हुए-निर्मल वस्त्र धारण किए, जपने योग्य मन्त्रों को जप कर, देवताओं की पूजा करके, भोजन करके, कर्पूर मिश्रित चन्दन से सुगन्धित शरीर, ओठों को लाल बनाने वाले पान को कमल के समान मुख में लिए, यह राजा देवी बुद्धि के साथ, जहाँ पर दोला विहार (झूला) सुलभ है, ऐसे सुन्दर उद्यान प्रदेश में आ रहे हैं ।

मन्त्री—(आकर्ण्य ।) यत्र महाराजस्तिष्ठति तत्रैव गच्छावः । (इति विदूषकेण सह परिक्रामति ।)

(ततः प्रविशति देव्या सहः राजा)

राजा—देवि, पश्य पश्य रमणीय कमारामस्य ।

क्रीडच्चिक्रीरदन्तक्षतविवरगलन्नालिकेराम्बुधारा-
संपूर्णावालपुष्यत्फलडहुकदलीदाडिमीमातुलुङ्गा ।
संपुष्यत्पूगपाली परमलमिलितोत्फुल्लमालत्युदच्च-
त्सौरभ्याघ्राणलब्धश्रमशमपथिका सेयमारामसीमा ॥ २८ ॥

देवी—मलअपवणचलिदतरुलदापुप्फगन्धा दिसासु विसप्पन्ति । इदो तदो परिब्भमन्तो भमरा कलं कूजन्दि । [मलयपवन चलिततरुलता-पुष्पगन्धा दिशासु विसर्पन्ति । इतस्ततः परिभ्रमन्तो भ्रमराः कलं कूजन्ति ।]

राजा—युक्तमाह भवती ।

मन्त्री—(सुनकर) जहाँ पर महाराजा हैं; वहीं पर हम दोनों भी चलें (इस प्रकार विदूषक के साथ घूमता है) ।

[इसके पीछे देवि के साथ राजा प्रवेश करते हैं]

राजा—देवि ! बाग की सुन्दरता तो देखो—

२८—खेलते हुए कठफोड़ों के दान्तों के क्षत से बने छेदों में से बहती हुई नारियल के पानी की धारा, आलवाल के पूरा भरा होने से बड़हल, केला, अनार, बिजौरे के फल पुष्ट हो रहे हैं, पुष्प केसर से भरी सुपारियो की पंक्ति की गन्ध से मिश्रित खिली हुई चमेली की तीव्र सुगन्ध को सूँघने से थकान दूर हुए पथिक, जहाँ पर हैं, ऐसी यह उद्यान की सीमा दीखती है ।

देवी—मलयाचल की वायु से हिलते हुए वृक्ष और लता के पुष्पों की सुगन्ध इधर उधर फैल रही है । इधर उधर उड़ते हुए भ्रमर सुन्दर गुञ्जन कर रहे हैं ।

राजा—आपने ठीक कहा है—

कुरबककलिकां विलोकमाने तरुणपिके मृदु गायति द्विरेफे ।
नटति किल मुहुः कृतोपदेशा मलयमहीध्रभवेन मारुतेन ॥२९।
देवि, सर्वतश्चारय चारुसरोरुहदललक्ष्मयमुषी चक्षुषी ।

कंदर्पागममंत्रपाठमुखरे पुंस्कोकिले कानन-
श्रीपाणिग्रहमङ्गले सति मधोर्देवस्य दीप्तौजसः ।
वह्नौ पाटलकान्तिपल्लवमये स्मेरप्रसूनोत्करः
प्रक्षिप्तस्य मतिं न किं वितनुते लाजव्रजस्याधुना ॥३०॥

मन्दारवकुलचम्पककुरबकसहकारमञ्जरीलोलः ।
अलिनिकरः केलिश्लथवनलक्ष्मीकेशपाश इव लसति ॥ ३१ ॥

२९—भ्रमर के धीमे धीमे गुञ्जन करते हुए, शृंगार रस को अनुभव करने योग्य युवती कोयल के देखते हुए, लाल झिण्टी की मंजरी मलयाचल की वायु से बार-बार नृत्यकला की शिक्षा लेते हुए, नाच रही है।

देवी—सुन्दर कमल पात्रों की शोभा को भी तिरस्कृत करने वाली आँखों को चारों ओर घुमाओ।

३०—उज्वल तेजवाले वसन्तदेव का जंगल की लक्ष्मी के साथ विवाहोत्सव होने पर, कामशास्त्र के मन्त्रों का पाठ करते हुए पुमान कोकिल के, पाटल लाल रंग की शोभा वाले पत्तों की अग्नि में, खिले हुए फूलों का समूह, क्या इस समय फेंके हुए लाजा के ढेर का संदेह उत्पन्न नहीं कर रहा ? (अवश्य कर रहा है।)

वक्तव्य—बसन्त का जंगल की श्री के साथ विवाह हो रहा है; इसमें पुमान कोकिल पुरोहित का काम करता है; लाल रंग के पत्ते अग्नि का और खिले हुए फूल लाजा रूप में हैं।

और भी—

३१—मन्दार-पारिभद्र; मौलसरी, चम्पा, झिंटी, आम, इनके गुच्छों में आसक्त-चंचल हुआ भ्रमर समूह, काम क्रीड़ा में खुले हुए वन लक्ष्मी के केश पाशों की भाँति दिखाई दे रहा है।

देवी—पेक्खदु भवं । [पश्यतु भवान् ।]
किअमाले टिट्टिभणो रसालरुक्खम्मि कोइलो वसइ ।
णीवविडवे सिहण्डा जम्बूसिहरे सुओ एको ॥ ३२ ॥
कृतमाले टिट्टिभको रसालवृक्षे कोकिला वसति ।
नीपविटपे शिखण्डी जम्बूशिखरे शुक एकः ॥

विदूषकः—(उपसृत्य) जेदु वअस्सो । देवि, सोत्थि भोदीए । [जयतु वयस्यः । देवि, स्वस्ति भवत्यै ।

मंत्री—देव, विजयी भव । देवि, जयतु भवती ।

राजा—अत्र निषीदतु वयस्यः । इहास्यताममात्येन ।

मंत्री—(उपविश्य उद्यानभूमिमभितो विलोक्य ।) आश्चर्यमाश्चर्यम् ।
इहोद्याने तादृक्पशुपतिदयासादितमहा-
महिम्नस्ते सेवारसपरवशाः सर्वत इमे ।

देवी—आप भी तो देखिए—

३२—अमलतास के वृक्ष पर टिट्टिभ-टटेरी; आम के वृक्ष पर कोयल, कदम्ब के वृक्ष पर मोर; जामुन की चोटी पर यह तोता बैठा है ।

वक्तव्य—कोयल-आम को पसन्द करती है ; यह कालिदास ने भी कहा है—

चूतांकुरा स्वाद कषाय कण्ठा पुंस्कोकिलो यन्मधुरं चुकूज ।

विदूषक—(पास में जा कर)–मित्र विजयी हों, देवि ! आपका भी कल्याण हो ।

मन्त्री—देव ! विजयी हों, देवि ! आपकी जय हो ।

राजा—मित्र यहाँ पर बैठो ! आप मन्त्री यहाँ पर विराजें ।

मन्त्री—(बैठकर—उद्यान भूमि को चारों ओर देखकर) देव ! बहुत आश्चर्य है—

३३—महादेव की कृपा से प्राप्त महामहिमा वाले आपकी सेवा मे अभिरुचि होने से परवश बनी ये सब ऋतुवें एक साथ ही चारों ओर से

यथास्वं पुष्यन्तो युगपदृतवः संनिदधते
प्रसङ्गादत्राहं कतिचन वदाम्यार्तवगुणान् ॥ ३३ ॥

राजा—अवहिताः शृणुमस्तावत् । (पुरो विलोक्य) मंत्रिन्, पश्य पश्य ।

स्फुटकुटजमन्दहासा कदम्बमुकुलभिरामरोमाञ्चा ।
नीलाम्बुदकुचविगलद्घनपुष्पा विहरतीव वनलक्ष्मीः ॥३४॥

मंत्री—राजन्, तर्हि वर्षा एताः । पित्तसंचयोऽत्र भवति । एवं हि ऋतुचर्यां भिषजो भाषन्ते ।

राजा—कथमिव ।

अपने अपने अनुकूल रूप में विकसित होती हुई इसी उद्यान में प्रगट हो रही हैं । इस समय प्रसंगानुकूल कुछ ऋतु गुणों को कहता हूँ ।

वक्तव्य—एक साथ सब ऋतुओं के आने का वर्णन किरात में भी है; यथा—युगपद्ऋतुगुणस्य संनिधान वियतिवने च यथायथं वितेने ।

राजा—सावधान होकर सुनते हैं—(सामने देख कर) हे मन्त्री ! देखो, देखो ।

३४—खिलते हुए कुटज रूपी मन्दहास से, कदम्ब की कलिका से सुन्दर रोमांचित, कृष्ण वर्ण मेघ रूपी कुचों से गिरते हुए बहुत से पुष्पों वाली वन लक्ष्मी मानों खेल रही है ।

मन्त्री—राजन् । तब तो यह वर्षा है । इस समय पित्त का संचय होता है । क्योंकि ऋतुचर्या में वैद्य ऐसा कहते हैं ।

वक्तव्य—संचय—"चयोवृद्धि स्वधाम्नैव प्रद्वेषो वृद्धिहेतुषु । विपरीतगुणेच्छा च । सुश्रुत में—

"तत्र वर्षा स्वोषधयस्तरुण्योऽल्पवीर्या आपश्चाप्रशान्ताः क्षितिमल प्रायाः, ता उपयुज्यमाना नभसि मेघवाततेजल प्रक्लिन्नायां भूमौ क्लिन्नदेहानां प्राणिनां शीतवातविष्टम्भिताग्नीनां विदह्यन्ते; विदाहात् पित्त संचयमापादयन्ति ॥ सु० सू० अ० ६ ।

राजा—किस प्रकार से—

मंत्री—

शंसन्ति भाद्रपदमाश्वयुजं च वर्षा-
स्तास्वौषधिप्रचुरता सुदशोऽल्पवीर्याः ।
वीर्यं प्रसन्नमसुमत्सु च शीतवाता-
विष्टेषु तत्र शिखिनोदयते विदाहः ॥ ३५ ॥

स एव पित्तसंचयमापादयति ।

मन्त्री—

३५—वैद्य लोग भाद्रपद और आश्विन मास को वर्षा ऋतु कहते हैं । इन मासों में औषधियाँ बहुत होती हैं, परन्तु ये औषधियाँ नई उत्पन्न होने से निर्बल रहती हैं इसीलिये थोड़ी शक्ति वाली होती हैं । जल अस्वच्छ रहते हैं, शीतल वायु के कारण वर्षा ऋतु में प्राणियों के अन्दर जाठराग्नि से विदाह उत्पन्न होता है ।

यही विदाह पित्त का संचय करता है ।

वक्तव्य—यहाँ पर वर्षा ऋतु के मास सुश्रुत के आधार से हैं, यथा—"भाद्रपदाश्वयुजौ वर्षा ।" अन्य स्थानों में श्रावण और भाद्र पद से वर्षा ऋतु कही है ; यथा-"सिंह कन्ये स्मृताः वर्षा" शार्ङ्गधर ; नभो नभस्यौ जलदागमः स्यादिषोर्जकाभ्यां शरदं वदन्ति ।" नर हरि पण्डित । वर्षा ऋतु में सस्य-ओषधि बहुत उत्पन्न होती है ; यथा— "वर्षासु वारुणो वायुः सर्व सस्य समुद्गमः" संग्रह । वर्षा ऋतु में समुद्र की वायु-मौनसून के बहने से बहुत अन्न उत्पन्न होता है । इस ऋतु में पानी मलिन रहता है ; और शीत वायु के संस्पर्श से शरीर में विदाह होता है ; यथा—

भूवाष्पान्मेघनिष्यन्दात्पाकादम्लाज्जलस्य च ।
वर्षास्वग्निबले क्षीणे कुप्यन्ति पवनादयः ॥ चरक ।
भूवाष्पेणाम्लपाकेन मलिनेन च वारिणा ।
वन्हिनैव च मन्देन तेष्वित्यन्योऽन्यदूषितेषु ॥ वाग्भट ।

राजा—शरदि कथम् ।

मंत्री—

मासौ शरत्कार्तिकमार्गशीर्षौ तत्राभ्रकार्श्ये सति पङ्कशोषः ।
विलायितः पित्तचयोऽर्कभासा स पैत्तिकं व्याधिकुलं प्रसूते ॥३६

राजा—हेमन्ते कीदृशो रोगः ।

मंत्री—श्रूयताम् ।

हेमन्तः पौषमाघाविह भवति बलं वीर्यमप्यौषधीनां
स्निग्धाश्चापः प्रसन्ना मृशगरिमभृतो याः पिबन्त्यङ्गभाजः ।

विदाह का लक्षण—विशेषेण दाह विदाह—

विदाहि द्रव्यमुद्गारं अम्लं कुर्यात्तथा तृषाम् ।
हृदि दाहं च जनयेत् पाकं गच्छति तच्चिरात् ॥

राजा—शरद् ऋतु में समय कैसा होता है—

मन्त्री—

३६—कार्तिक और मार्गशीर्ष मासों में शरद् ऋतु होती है; इस ऋतु में वर्षा के बहुत थोड़ा होने से कीचड़ सूख जाता है। सूर्य की गरमी से द्रवी भूत पित्तसंचय पित्त जन्य व्याधि समूहों को उत्पन्न करता है।

वक्तव्य—सुश्रुत में "कार्त्तिक मार्गशीर्ष से शरत्" कही है ; लोक में आश्विन और कार्त्तिक को शरद् ऋतु मानते हैं। शरद् ऋतु में पित्त जन्य रोग होते हैं ; यथा—

वर्षाशीतोचिताङ्गानां सहसैवार्करश्मिभिः ।
तप्तानानामाचितं पित्तं प्रायः शरदि कुप्यति ॥ चरक ।

स संचयः शरदि प्रविरलमेघे वियत्युपशुष्यति पंकेऽर्क किरण-प्रविलायितः पैत्तिकान् व्याधिन् जनयति ॥ सुश्रुत ।

राजा—हेमन्त में किस प्रकार के रोग होते हैं—

मन्त्री—सुनिये—

३७—पौष और माघ मास हेमन्त ऋतु के हैं; इस ऋतु में मनुष्यों

मन्दांशुत्वाश्च भानोः सहिममरुदुपस्तम्भिताङ्गेषु देहि-
ष्वेषु स्नेहाद्विदग्धाद्भवति हिमभराच्छ्लेष्मणः संचयश्च ॥३७॥

राजा—कदा पुनरयं श्लैष्मिकान्व्याधीञ्जनयति ।

मंत्री—फाल्गुनचैत्रमासरूपे वसन्ते यतोऽर्करश्मिप्रविलायितः श्लेष्मसंचयोऽस्मिन्नृतौ भवति । एवं च

में बल होता है, औषधियों में भी शक्ति होती है। जल स्निग्ध (भारी) और निर्मल रहते हैं, तथा अतिगुरु गुणयुक्त होते हैं, जो प्राणि इस जल को पीते हैं, उनमें सूर्य के मन्द होने से (दिशि मन्दायते तेजः दक्षिणस्यां रवेरपि-रघुवंश)—दक्षिणायन होने के कारण–हिममिश्रित वायु–शीत वायु से अंगों में स्तब्धता आ जाने पर विदग्धता से, स्नेह से तथा तुषार के भार से कफ का संचय हो जाता है।

वक्तव्य—"ता एवौषधयः कालपरिणामात् परिणतवीर्या बलवत्यो हेमन्ते भवन्त्यापश्च प्रशान्ता स्निग्धा अत्यर्थं गुर्व्यश्च ; ताउपयुज्यमाना मन्दकिरणत्वाद्भानोः सतुषारपवनोस्तम्भितदेहानां देहिनामविदग्धाः स्नेहाच्छैत्याद् गौरवादुपलेपोच्च श्लेष्म संचयमापादयन्ति । सुश्रुत । पानी भारी हो जाता है ; यथा—"हेमन्ते सलिलं स्निग्धं बलहितं गुरु" चरक ।

वायुर्वात्युत्तरः शीतो रजो धूमाकुलादिशः ।
छन्नस्तुषारैः सविता हिमानद्धा जलाशयाः ॥ सुश्रुत ।
मेघ वृष्ट्यनिलैः शीतैः शान्तातपे महीतले ।
स्निग्धाश्चेहाम्ल लवण मधुरा बलिनो रसः ॥ वाग्भट ।

राजा—कफ का यह संचय कब कफ जन्य रोगों को उत्पन्न करता है ?

मन्त्री—फाल्गुन-चैत्र रूप वसन्त में; क्योंकि इस ऋतु में सूर्य की किरणों से यह कफ संचय द्रवी भूत होता है । और भी

वक्तव्य—"स संचयो वसन्तेऽर्करश्मि प्रविलायित ईषत्स्तब्ध देहानां देहिनां श्लैष्मिकान् व्याधीन् जनयति ॥" सुश्रुत ।

निःसारा रौक्ष्यभाजो दधति च लघुतामोषधीनां समूहाः
सर्वे ते ग्रीष्मसंज्ञां भजति किल ऋतौ ज्येष्ठवैशाखरूपे ।
तस्मिन्सूर्यप्रतापग्लपिततनुभृतां लाघवाच्चापि रौक्ष्या-
ज्जन्तूनां पीयमानं जनयति सलिलं संचयं मारुतस्य ॥ ३८ ॥
स संचयः प्रावृषि शीतवातवर्षैरितो वातिकरोगकारी ।
क्लिन्नाङ्गभाजां पयसैव नित्यं प्रकोपहेतुस्त्रयसंचयस्य ॥ ३९ ॥

३८—ज्येष्ठ, वैशाख रूपी ग्रीष्म ऋतु में औषधियों के सब समूह सत्त्वहीन, स्निग्धता रहित और हल्के हो जाते हैं। इस ग्रीष्मऋतु में सूर्य की गरमी से शोषित शरीरधारी प्राणियों से पिया हुआ जल लघु और रूक्ष होने के कारण वायु का संचय करता है।

वक्तव्य—सुश्रुत में कहा है—

ताएवौषधयो निदाघे निस्सारा रूक्षा ऽतिमात्रलघ्व्यो भवन्ति । आपश्च ताः उपयुज्यमानाः सूर्य प्रतापोपशोषित देहानां देहिनां रौक्ष्या-ल्लघुत्वाच्च वायोः संचयमापादयन्ति । सुश्रुत अ० ६ ।

संग्रह में भी वाग्भट ने कहा है—

दिवाकरांगार निकरक्षपितांभसः ।
प्रवृद्धरोधसो नद्यः च्छायाहीना महीरुहाः ॥
विशीर्ण जीर्णपर्णाश्च शुष्कवल्कलताङ्किताः ।
आदत्ते जगतस्तेजः तदाऽऽदित्यो भृशं यतः ॥ संग्रह ६ ।

वायु रूक्ष और शीत वस्तुओं से बढ़ती है; परन्तु ग्रीष्म में उष्णिमा रहने पर भी वायु का जो संचय होता है, वह "विरुद्ध गुण संयोगे भूयसाल्पं हि जीयते"-इस सिद्धान्त से माना जाता है। संचय का अर्थ अपने स्थान में ही वृद्धि होना है।

३९—वायु दोष का यह सचय प्रावड् ऋतु में शीतल वायु और वर्षा से प्रकुपित होकर वात दोष के प्रकोप से उत्पन्न रोगों को करता है। सदा ही अत्यधिक जल से क्लिन्न शरीर वाले पुरुषों में यह दोष संचय तीनों दोषों के संचय को कुपित करने का कारण है।

राजा—कौ मासौ प्रावृट् ।

मंत्री—आषाढश्रावणौ तथा भिषग्भिरुच्यते ।

राजा—कदा पुनरेषामुपशमः ।

मंत्री—सोऽप्येतेषां ज्ञातव्य एव स्वामिना । तद्यथा—

हेमन्ते किल पैत्तिकामयशमो ग्रीष्मे कफोद्यद्रुजः
शान्तिर्वातिकरोगशान्तिरुदयेद्वर्षात्यये केवलम् ।

वक्तव्य—साधारणतः प्रावृड्ऋतु को आयुर्वेद में अलग नहीं मानते ; वर्षा के प्रारम्भिक दिनों को–आषाढ़ मास को प्रावृड् ऋतु कहते हैं ; जब आकाश में पानी से भरे बादल मँडराने लगते हैं, वर्षा नहीं होती, इसी से मेघदूत में पढ़ते हैं—

आषाढ़स्य प्रथमदिवसे मेघमाश्लिष्ट सानुं ।
वप्रक्रीडा परिणतगज प्रेक्षणीयं ददर्श ।। मेघदूत २ ।

सुश्रुत में—

स संचयः प्रावृषिचात्यर्थं जलोपक्लिन्नायां भूमौ क्लिन्नदेहानां शीतवातवर्षेरितो वातिकान् व्याधीन् जनयति । एवमेष दोषाणां संचय प्रकोप हेतुरुक्तः । सुश्रुत

स शीताभ्र प्रवातेषु घर्मान्ते च विशेषतः ।
प्रत्यूषस्यपराह्णे च जीर्णेऽन्ने च प्रकुप्यति ।।

राजा—प्रावड् ऋतु किन मासों में होती है ?

मन्त्री—आषाढ़ और श्रावण—ऐसा वैद्य कहते हैं—

वक्तव्य—सुश्रुत में—आषाढ़ श्रावणयोः प्रावृडिति ।।

राजा—इन दोषों की शान्ति कब होती है ।

मन्त्री—इन प्रकुपित दोषों का उपशम भी स्वामि को जानना चाहिए–। यथा—

४०—हेमन्त ऋतु में पैत्तिक रोगों का उपशम होता है, ग्रीष्म ऋतु में कफ जन्य रोगों की शान्ति होती है । वातिक रोगों की शान्ति वर्षा के बीत

एवं षड्तुषु स्वभावजतया व्याख्यायि तुभ्यं मया।
पित्तश्लेष्मनभस्वतां सह चयेनापि प्रकोपः शमः ॥ ४० ॥

जाने पर-शरद् ऋतु के आने पर होती है। इस प्रकार वर्षा-शरद्-हेमन्त-वसन्त-ग्रीष्म और प्रावड् इन छैः ऋतुओं में काल स्वभाव से पित्त, कफ और वायु का संचय, प्रकोप और शमन आपके लिये मैंने कह दिया है।

वक्तव्य—तत्रपैत्तिकानां व्याधीनामुपशमो हेमन्ते, श्लैष्मिकानां निदाघे; वातिकानां शरदि, स्वभावत एव, त एते संचय प्रकोपोपशमाः व्याख्यातः॥ सुश्रुत।

हैमन्तिकं दोषचयं वसन्ते; प्रवाहयन् ग्रैष्मिकमभ्रकाले।
घनात्यये वार्षिकमाशु सम्यक् प्राप्नोति रोगानृतुजान्न जातु। चरक।

ऋतु विभाग में पृथक् पृथक् दृष्टि से विचार किया है १—चैत्र और वैशाख से बसन्त; ज्येष्ठ और आषाढ़ से ग्रीष्म; श्रावण और भाद्रपद से वर्षा; आश्विन और कार्त्तिक से शरद; मार्गशीर्ष और पौष से हेमन्त; माघ और फाल्गुन से शिशिर—यह ज्योतिष क्रम से ऋतु विभाग है। २—मेष और वृष राशि से ग्रीष्म; मिथुन और कर्कट से प्रावृड्; सिंह और कन्या से वर्षा; तुला और वृश्चिक से शरत्; धनु और मकर से हेमन्त; कुम्भ और मीन से बसन्त। राशि विचार से यह दूसरा विभाग है। प्रथम विभाग चरक, भाव प्रकाश, अष्टांग संग्रह में मिलता है। दूसरा विभाग सुश्रुत में है; इसी को लक्ष्य में रख कर ग्रन्थ-कर्त्ता ने ऋतु वर्णन किया है। गंगा के उत्तर के किनारे पर शीत की अधिकता रहने से उन्होंने शिशिर ऋतु को गिना है, और दक्षिण भाग में वर्षा के अधिक होने से उन्होंने प्रावृड् ऋतु को गिना है—इसी से कहा है—

गङ्गायादक्षिणे देशे वृष्टेर्वहुल भावतः।
उभौ मुनिभिराख्यातौ प्रावृड् वर्षाभिधावृत् ॥
भूयो वर्षति पर्जन्यो गङ्गायांदक्षिणेतटे।
अतः प्रावृड् वर्षाश्च, ऋतु तत्र प्रकल्पितौ ॥

तस्या एवोत्तरे देशे हिमवद्विन्ध्यसंकुले ।
भूयः शीत मतस्तत्र हेमन्त शिशिरावुभौ ॥

चरक और सुश्रुत में दोनों प्रकार से ऋतु विभाग दिये हैं ; प्रथम विभाग मासों के विचार से, दूसरा विभाग दोषों के संचय प्रकोप भेद से है, यथा—

१—"तेषां तपस्तपस्यौ शिशिरः, मधु माधवौ बसन्तः ; शुचिशुक्रौ ग्रीष्मः ; नभो नभस्यौ वर्षा ; ईषोर्जौ शरत् ; सहः सहस्यौ हेमन्त इति ।

२—भाद्रपदाश्वयुजौ वर्षा ; कार्तिक मार्गशीर्षौ शरत् ; पौष माघौ हेमन्तः ; फाल्गुन चैत्रौ बसन्तः ; वैशाख ज्यष्ठौ ग्रीष्मः ; आषाढ़ श्रावणौ प्रावृडिति ॥

चरक में भी दोनों प्रकार के ऋतु विभाग आते हैं ; यथा—संशोधन की दृष्टि से—

"कालं पुनः संवत्सरश्चातुरावस्था च, तत्र संवत्सरो द्विधा त्रिधा षोढा द्वादशाधा भूयश्चाऽप्यतः प्रविभज्यते तत्तत्कार्यमभिसमीक्ष्य । तं तु खलु तावत् षोढा प्रविभ्यज्य कार्यमुपदेक्ष्यते–हेमन्तो, ग्रीष्मो, वर्षाश्चेति, शीतोष्ण वर्षलक्षणस्त्रयः ऋतुवो भवन्ति । तेषा मन्तरेष्वितरे साधारण लक्षणास्त्रयः ऋतुवः प्रावृड्शरद् वसन्ता इति । प्रवृडिति प्रथमः प्रवृट्ः कालः । तस्यानुबन्धो हि वर्षाः ; एवमेते संशोधन मधिकृत्य षड्विभज्यन्ते ऋतुवः । चरक विमान ८।१२७

इसी से शोधन की दृष्टि से आगे भी कहा है—

प्रावृड्शुक्रनभौ ज्ञेयौ शरदूर्जसहौ पुनः ।
तपस्यश्च मधुश्चैव वसन्तः शोधनं प्रति ॥ चरक सि०अ० ६ ।
श्रावणो कार्त्तिक चैत्रे मासि साधारणे क्रमात् ।
ग्रीष्म वर्षा हिमाचितान्वाय्वादीनाशु निर्हरेत् ॥ वाग्भट ।

ऋतु की दृष्टि से किया विभाग—

इह खलु संवत्सरं षडङ्ग ऋतु विभागेन विद्यात् । तत्रादित्यस्योदगयनमादानं च त्रीनृतुन् शिशिरादीन् ग्रीष्मान्तान् व्यवस्येत् । वर्षादीन्

पुनर्हेमन्तान्तान् दक्षिणायनं विसर्गं च ॥

काश्यप संहिता में पाँच ही ऋतुवें मानी हैं, उसमें हेमन्त और शिशिर को एक किया है। क्योंकि हेमन्त और शिशिर की ऋतुचर्या प्रायः एक ही है, यथा—

हेमन्त शिशिरे तुल्ये शिशिरेऽल्पं विशेषणम्।
रौक्ष्यमादानजं शीतं मेघमारुतवर्षजम् ॥
तस्माद् हैमन्तिकः सर्वः शिशिरे विधिरिष्यते।
निवातमुष्णं त्वधिकं शिशिरे गृहमाश्रयेत् ॥ चरक

इसी से काश्यप संहिता में पढ़ते हैं—

तस्मात् पञ्चैव खलु ऋतुवोऽपि, तदनुपपत्तेर्नास्ति षट्त्वमिति। अत्रोच्यते—रसार्थमेषां षट्त्वं रसविमाने प्रोक्तम् ॥ काश्यपसंहिता श।४।

इसी दृष्टि से चरक में पढ़ते हैं—

तत्र रविर्भाभिराददानो जगतः स्नेहं वायवस्तीव्ररुक्षाश्चोपशोषयन्तः शिशिरवसन्तग्रीष्मोष्वृतुषु यथाक्रमं रौक्ष्यमुत्पादयन्तो रुक्षान् रसान् तिक्तकषायकटुकांश्चाभिवर्धयन्तो नृणां दौर्बल्यमावहन्ति। वर्षाशरद्हेमन्तेषु तु दक्षिणाभिमुखेऽर्के कालमार्गमेघवर्षाभिहतप्रतापे शशिनिचाव्याहतबले माहेन्द्रसलिल प्रशान्तसन्तापे जगत्यरुक्षा रसाः प्रवर्धन्ते ऽम्ललवण मधुरा यथाक्रमं, तत्र बलमुपचीयते नृणाम् ॥

इस प्रकार एक विभाग रसों की दृष्टि से और दूसरा संशोधन की दृष्टि से ऋतुवों का आयुर्वेद में मिलता है। संशोधन की दृष्टि से किया विभाग इस ग्रन्थ में है। सुश्रुत, चरक में दोनों विभाग मिलते हैं। शार्ङ्गधर में राशियों अनुसार दोषों का चय, कोप, शमन ऋतुवों में बताया है, यथा—

चय कोपशमा यस्मिन् दोषाणं संभवन्ति हि।
ऋतुषट्कं तदाख्यातं रवे शशिषु संक्रमात् ॥
ग्रीष्मे मेषवृषौ प्रोक्तौ प्रावृण्मिथुनकर्कयोः।
सिंहकन्ये स्मृता वर्षास्तुला वृश्चिकयोः शरत् ॥

अपि च

रजनीमुखार्धरात्रप्रत्यूषा नक्तमहह्न पूर्वाह्णः ।
मध्याह्नोऽप्यपराह्णो वर्षाद्याः षट् प्रकीर्तिता ऋतवः ॥ ४१ ॥

एष्वपि पित्तश्लेष्मवातानां संचयप्रकोपशमाः प्राग्वदेव ज्ञातव्याः ।

धनुर्ग्रहौ च हेमन्तो वसन्तः कुम्भमीनयोः ॥

केवल दो मासों से बनी ऋतुवों में ही दोषों का संचय, प्रकोप, शमन नहीं होता, अपितु अन्य समय में भी होता है, यथा—

४१—रात्रि में-सायंकाल संध्या समय (प्रदोष में), आधी रात में, प्रातः- काल के समय, दिन में—पूर्वाह्न, मध्याह्न और अपराह्न में वर्षा, शरद्, हेमन्त, शिशिर, वसन्त और ग्रीष्म इन ऋतुवों के लक्षण होते हैं ।

इस अहोरात्र में पित्त, कफ, वायु का संचय, प्रकोप, शमन ऋतुवों की भाँति जानना चाहिये ।

वक्तव्य—वाग्भट में भी पढ़ते हैं—

वयोऽहोरात्रिभुक्तानां तेऽन्तमध्यादिगाः क्रमात् ॥ सू० १।८

सुश्रुत में—

तत्र पूर्वाह्णे वसन्तस्यलिंगम् , मध्याह्ने ग्रीष्मस्य, अपराह्णे प्रावृषः, प्रदोषे वार्षिकं, शारदमर्धरात्रे, प्रत्यूषसि हेमन्तमुपलक्षयेत् । एवमहोरात्रमपि वर्षमिवशीतोष्ण वर्षलक्षणं दोषोपचयप्रकोपशमैर्जानीयात् । सूत्र ६ ।

वायु का प्रकोप—सशीताभ्रप्रवातेषु घर्मान्ते च विशेषतः ।
प्रत्यूषस्यपराह्णे च जीर्णेऽन्ने प्रकुप्यति ॥

पित्त का कोप—तदुष्णैरुष्णकाले घनान्ते च विशेषतः ।
मध्याह्ने चार्धरात्रे च जीर्यत्यन्ने च कुप्यति ॥

कफ का प्रकोप—स शीतैः शीतकाले च वसन्ते च विशेषतः ।
पूर्वाह्णे च प्रदोषे च भुक्तमात्रे प्रकुप्यति ॥ सुश्रुत सू० अ० २१

चय प्रकोप प्रशमावायो ग्रीष्मादिषु त्रिषु ।
वर्षादिषु तु पित्तस्य श्लेष्मणः शिशिरादिषु ॥

राजा—अस्त्वेतत् । दौवारिक, आन्तःपुरिकं जनं प्रवेशय ।

विदूषकः—किं उक्कण्ठिदो भवं दोलाविहारस्स । [किमुत्कण्ठितो भवान्दोलाविहाराय ।]

राजा—स्मारितं भवता । तथैव क्रियते । मंत्रिविन्यस्तसमस्तकार्यभरस्य मम विहारादृते कोऽन्यो व्यापारः ।

मंत्री—देव्या सहदोलामधिरोहतु महाराजः । दौवारिकः पद्ममुखीं चन्द्रमुखीं च चेटीमानय ।

दौवारिकः तथा । (इति निष्क्रम्य चेटीभ्यां सह प्रविशति ।)

(राजा देवी च दोलाधिरोहणं नाटयतः ।)

मंत्री—(चेट्यौ प्रति ।) गायन्त्यौ दोलामान्दोलयतं भवत्यौ ।

प्रदोष में पित्त का संचय, आधी रात में प्रकोप, प्रातःकाल में शान्ति, उषाकाल में कफ का चय; पूर्वाह्न में प्रकोप, मध्याह्न में कफ की शान्ति, वायु का मध्याह्न में चय, सायंकाल प्रकोप, आधी रात में शान्ति होती है ।

राजा—इसे समाप्त करो । दौवारिक ! अन्तःपुर के व्यक्ति को (देवि को) प्रविष्ट करो ।

विदूषक—क्या दोलाविहार के लिए आप बेचैन हो रहे हैं !

राजा—आपने अच्छा याद दिलाया, वैसा ही करता हूँ, मंत्री के ऊपर सब कार्य को छोड़ देने पर अब मेरे लिये विहार के सिवाय दूसरा क्या काम रहा ।

मंत्री—देवी के साथ महाराजा दोला पर चढ़ें । दौवारिक ! पद्म-मुखी और चन्द्रमुखी चेरी को बुलाओ ।

दौवारिक—अच्छा (निकलकर दोनो चेरियों के साथ आता है) (राजा और देवी झूले पर चढ़ने का अभिनय करते हैं) ।

मंत्री—(दोनों चेरियों को लक्ष्यकरके) झूले को चलाते हुए तुम दोनों गाओ ।

प्रथमा—

जअइ महुतुन्दिरगुणो सुरहिसरो महुरकम्मुओ वीरो ।
जस्स क्खु वि जअताआ सामारुणवामदक्खिणावअवा ॥४२॥

जयति मधुतुन्दिलगुणः सुरभिशरो मधुरकार्मुको वीरः ।
यस्य खल्वपि जयपताका श्यारुणवामदक्षिणावयवा ॥

प्रथम चेरी—

४२—मधु से पेट भरने वाला भ्रमर जिसकी डोरी है, सुगन्ध (पुष्प) जिसके वाण हैं, मधुर (लाल ऊख) जिसका धनुष है, ऐसे किसी वीर के, वाम भाग में श्याम और दक्षिण भाग में लाल रंग की विजय पताका है ।

वक्तव्य—कामदेव का वर्णन इसमें है, कामदेव का धनुष ऊख का है, भ्रमरों की डोरी है, पुष्प वाण हैं, इसी से वह बड़े बड़े योगियों के चित्त को चंचल बनाकर जीतता है, इसकी ध्वजा पर अर्धनारीश्वर-शिव-पार्वती का चिन्ह है, वही यहां पर श्याम और अरूण रूप में वर्णित है; ध्वजा का कुछ भाग श्याम और कुछ भाग लाल रंग का है । कई रंगों से ध्वजा बनती है । संकल्प सूर्योदय में भी यह वर्णन है—

कर धृत लुलितेक्षुधन्वनो मे भ्रमर गुणार्पित पुष्पमार्गणस्य ।
मरुदनलशरोऽपिमेरुधन्वा क्षणमतिलंघितशासनःकथं स्यात् ॥
वरतनुतया वामो भागः शिवस्यवर्त्तते ।
सुभगपरुषैर्मंदस्त्रैः कीलितमन्योन्यकविचैताकार्धम् ।
किं न विदितं भवत्या किमपि मिथः स्यूतजीवितं मिथुनम् ॥

शिव का रूप पार्वती और महादेव के मिलित रूप में है (देहार्ध घटना रचितं शरीरमेकं ययोरनुपलक्षित संधिभेदम्—कादम्बरी) यहाँ पर राजा और देवी साथ में एक ही झूले पर झूल रहे हैं, वे भी एक शरीर मालूम पड़ते हैं ।

विदूषकः—(सकोपम् । आ दासिए पुत्ति, वालिसा क्खु तुमं । जह अत्थबोधो ण होदि तह पढिदम् । [आः दास्याः पुत्रि, बालिशा खलु त्वम् । यथार्थ बोधो न भवति तथा पद्यं पठितम् ।]

राजा—वयस्य, जयति भ्रमरगुणः पुष्पबाण इक्षुचापो मन्मथः यस्यार्धनारीश्वररूपा विजयपताकेति पद्यार्थः ।

विदूषकः—(सशिरःकम्पम् ।) जुज्जइ । [युज्यते ।]

द्वितीया—

कैरवणिद्दाभङ्गे चओरतिह्णाणिवारणे अ पडु ।
सो को वि जअइ देवो पेक्खन्तणिडालपुरुसमौलिमणी ॥४३॥

कैरवनिद्राभंगे चकोरतृष्णानिवारणे च पटुः :
स कोऽपि जयति देवः पश्यल्लिटालपुरुषमौलिमणिः ॥

विदूषकः—एदस्स अत्थो वहणीअदि । [एतस्य पद्यस्यार्थो वर्ण्यते ।]

राजा—कथमिव ।

विदूषकः—कैरवविआसआरी चकोरतित्तिआरी भजवं तस्स तिरोत्तस्स

विदूषक—(क्रोध के साथ) हे दासी पुत्रि ! तू निश्चय से मूर्खा है, जिसका अर्थ समझ में नहीं आता वैसा पद्य तूने पढ़ा ।

राजा—(हंसकर) भ्रमर गुण (डोरी) वाला, पुष्प वाणों का, ईक्षु चाप वाला मन्मथ (कामदेव) विजयी होता है, जिसकी पताका में अर्ध नारीश्वर का रूप बना है, यह इस पद्य का अर्थ है ।

विदूषक—(शिर को हिला कर) ठीक है ।

दूसरी चेरी—

४३—कैरव (कुमुदिनी) की निद्रा को तोड़ने में चतुर, चकोर पक्षि की तृष्णा को मिटाने में निपुण शिव के शिर पर शोभित कोई भी देव (चन्द्रमा) विजयी होता है ।

विदूषक—मित्र ! इस पद्य का अर्थ मैं बतलाता हूँ ।

राजा—किस प्रकार ।

विदूषक—कैरव को विकसित करने वाला, चकोर की तृप्ति करने

सहामणी चन्दो जअइ त्ति । [कैरवविकासकारी चकोरतृप्तिकारी भगवान् तस्य त्रिनेत्रस्य शिखामणिश्चन्द्रो जयतीति ।]

मन्त्री—सम्यगुक्तः पद्यार्थो भवता ।

विदूषकः—(सगर्वम् ।) पुव्वपज्जस्स वि मह अत्थबोधो जादो जेव्व । वअस्सेण अत्थो वण्णीअदि ण वेति तुह्णिं ठिदम् । [पूर्वपद्यस्यापि ममार्थबोधो जात एव । वयस्येनार्थो वर्ण्यते न वेति तूष्णीं स्थितम् ।]

मन्त्री—(विहस्य) कः सन्देहः ।

विदूषकः—अमच्च, किं उवहससि मं । एदं सुणादु भवं । वाणरीए विअ मह घरिणीए वि अणक्खराएव्व । वाआताए वि मह अत्थबोधो होइ । [अमात्य, किमुपहससि माम् । एतच्छृणोतु भवान् । वानर्या इव मम गृहिण्या अपि अनक्षरैव वाक् तस्या अपि ममार्थबोधो भवति ।]

(सर्वे हसन्ति ।)

(नेपथ्ये वैतालिकौ ।)

वाला, त्रिनेत्र-महादेव की शिखा का मणि चन्द्रमा विजयी होता है ।

मंत्री—आपने पद्य का अर्थ ठीक कहा है ।

विदूषक—(गर्व के साथ) पहिले श्लोक का भी अर्थ मैं जान गया था, मित्र (आप) उसका अर्थ कर सकते हैं, या नहीं, (यह जानने के लिए ही), इसीसे मैं चुप हो गया था ।

मंत्री—(हंस कर) इसमें क्या सन्देह ।

विदूषक—मंत्री ! मुझे क्या हंसते हो । यह आप सुनें, बन्दरी के समान मेरी घर वाली की वाणी बिना शब्दों के ही है, उसका भी मुझको ज्ञान हो जाता है ।

वक्तव्य—मेरी पत्नी आकार में तथा वाणी में बन्दरी के समान है, उसकी अक्षर रहित वाणी को भी मैं समझ लेता हूँ, फिर इसको समझना क्या कठिन है ।

(सब हंसते हैं)

(नेपथ्य में दो वैतालिक)

वैतालिकः—

गन्धेन स्फुटकैरवाकरभुवा विष्वग्विकर्षन्नली-
न्स्वच्छन्दं दिवसावसानपिशुनो मन्दानिलः स्पन्दते।
भावी नौ विरहाधिरित्यविदितेऽप्यन्तः शुचा स्थीयते
कोकेन प्रियया सहैकनलिनीनालाधिरूढेन च ॥४४॥

द्वितीयः—

मोक्तुं तापमिव प्रतीचिजलधौ मज्जत्ययं भानुमा-
न्रागः कोऽपि विजृम्भते घनपथे चित्ते वधूनामपि।
आर्द्रागाः कुपितामुपासिसिषते कान्तां विलासी जनो
भक्त्या कर्मठभूमिदेवपरिषत्संध्यां च सायन्तनीम् ॥४५॥

मन्त्री—अहमपि संध्योपासनार्थं गच्छामि।

प्रथम—दिन के समाप्त होने की सूचना देने वाली, खिली हुई कुमुदिनी के सरोवर से उत्पन्न गन्ध से भ्रमरों को चारों ओर से खेंचती हुई मन्द वायु, विना रोक टोक के बह रही है। अपनी प्रिया के साथ में मृणाल की एक ही नाल पर बैठा हुआ चक्रवाक 'हम दोनों को विरह की पीड़ा होगी' इस बात को न जानते हुए भी अन्तःपीड़ा से (दुःखित मन से) युक्त बैठा है।

दूसरा वैतालिक—यह सूर्य अपने शरीर के ताप को दूर करने के लिये मानों पश्चिम के समुद्र में डूब रहा है। कोई (अनिर्वचनीय) रक्तिमा (या अनुराग) पश्चिम आकाश में तथा कामिनियों के मन में उत्पन्न हो रहा है। नये किए हुए (कान्ता सम्बन्धित) अपराध से कुपित कान्ता को कामुक जन अनुनय से प्रसन्न करना चाहते हैं। वैदिक कर्मों के अनुष्ठान में तत्पर ब्राह्मण समूह भक्ति पूर्वक संन्ध्या की उपासना करने के लिए जा रहे हैं।

मंत्री—मैं भी सन्ध्योपासना के लिये जाता हूँ।

विदूषकः—अहं वि । [अहमपि ।]

राजा—अहमप्यन्तःपुरमेव गच्छामि । दौवारिक, पुरतो मार्गमादर्शय।

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे ।)

इति चतुर्थोऽङ्कः ।

विदूषक—मैं भी ।

राजा—मैं भी अन्तःपुर में ही जाता हूँ । दौवारिक सामने में मार्ग दिखाओ ।

(यह कहकर सब निकल गये) ।

चौथा अंक समाप्त

पञ्चमोऽङ्कः ।

(ततः प्रविशति धावन्मत्सरः ।)

मत्सरः—(विचिन्त्य ।)

जीवे साधयितुं रसं पशुपतेर्ध्यानस्य सिद्धौ स्थिते
तद्विघ्नाचरणाय षट् प्रणिहिताः कामादयः पाण्डुना
ते गत्वापि वयं परैरभिभवं प्राप्ता यथा पूर्वजाः
पञ्चापि व्यगलन्नहं च चकितः षष्ठः पलाय्यागतः ॥ १ ॥

इतः परं किं करोमि मन्दभाग्यः ।

किं पाण्डोर्निकटं व्रजामि धृतिमानेवं कृते भ्रातृभि-
स्तस्याग्रे कथमस्तकार्यनिकरः संदर्शयिष्ये मुखम् ।

पंचम अङ्क

(इसके पीछे दौड़ता हुआ मत्सर आता है) ।

मत्सर—(सोचकर) ।

१—जीवराज के रस-पारद को सिद्ध करने के लिये महादेव के ध्यान की सिद्धि में स्थित होने पर उसके कार्य में विघ्न करने के लिए पाण्डु ने काम-क्रोध-लोभ-मोह-मद और मात्सर्य ये छः (शत्रु) भेजे थे। वे हम शत्रुकुल में जा कर भी विज्ञानशर्मा आदि दूसरों से तिरस्कृत हुए। जिस प्रकार से मेरे पूर्वज (मेरे बड़े भाई) पांच भी चुपचाप निकल गये, वैसे ही छठा मैं चकित हुआ दौड़ कर आ गया हूँ ।

इसके आगे मन्द भाग्य मैं क्या करूं ?

२—धैर्य रखकर क्या पाण्डु के पास जाऊँ ? भाइयों के इस प्रकार (स्वामी का कार्य न करके डर कर लौटने पर) करने पर नष्टराज्य काय वाला मैं भी उसके आगे मुख को कैसे दिखाऊँगा ? यदि अनुनय करके

राज्ञानं यदि वानुवर्तितुमये किं राजतन्त्रेऽमुना
पृष्टे चोत्तरयामि हन्त शरणं कं वा करिष्येऽधुना ॥ २ ॥

तत्सर्वथा नास्ति दैवानुकूल्यम् । (विचिन्त्य ।) भवतु । बनमेव गत्वा तपश्चरणेनात्मानं कृतार्थयामि । यतः ।

अश्रान्तप्रवहत्तुषारतटिनिशीतालुशातोदरी-
सङ्घायासगृहीतशोषितसमित्संवर्धिताग्नित्रयाः ।
प्रालेयाचलकाननोटजगता विप्रास्तृतीयाश्रमे
स्थित्वापुः कति वाञ्छितानि तपसामाश्चर्यया चर्यया ॥ ३ ॥

यद्मा राजा को प्रसन्न करने का यत्न करने का यत्न करूँ, तो इस राज्य कार्य में पूछने पर क्या उत्तर दूँगा ? इस संकट के समय में किस रक्षक के पास जाऊँगा । इसका दुःख है ।

वक्तव्य—काम-क्रोध-लोभ-मद-मोह-मात्सर्य ये सब सहोदर भाई हैं, क्योंकि इनकी उत्पत्ति रज और तम से है, यथा—

"रजस्तमश्चमानसौ दोषौ, तयोर्विकाराः काम क्रोध लोभ मोहेर्ष्या-मानमदशोक चिन्तोद्वेगभयहर्षादयः ॥ चरक वि० ६

प्रबोधचन्द्रोदयमें—"किमुच्यते एकमुत्पत्तिस्थानमिति, ननु जनक एवमस्माकाम भिन्नः ।" सात्त्विक विवेक आदि भी इनके भाई हैं, परन्तु यहां पर रज और तम के मानसिक विकारों का ही उल्लेख शत्रु रूप से है ।

इसलिये सब प्रकार से मेरा भाग्य प्रतिकूल है (सोच कर) अच्छा ऐसा ही सही । बन में ही जा कर तपश्चर्या करके अपने को सफल करूँगा । क्योंकि—

३—कुछ ब्राह्मण तीसरे आश्रम-वासी-वानप्रस्थी बन कर हिमालय के जंगलों में कुटिया बनाकर रहते हुए निरन्तर बहती हुई बर्फ वाली नदियों की ठंडक को न सहन करने वाली स्त्रियों द्वारा परिश्रम से इकट्ठी की सुखाई समिधाओं से गार्ह्यपत्य-आ हवनीय और दक्षिणाग्नि को प्रज्वलित करके तपश्चर्या के द्वारा इच्छित फल प्राप्त करते हैं ।

(पुरो विलोक्य ।)

वक्तव्य—प्रायः तपश्चर्या करने का स्थान सब हिमालय को ही चुनते हैं, वहीं देवताओं का निवास है। वहाँ पर शीतल-बर्फीला पानी रहता है, इसीसे कुमार सम्भव में—

उद्वेजयत्यंगुलिपार्ष्णि भागान् मार्गे शिलीभूतहिमेऽपि यत्र ।१-११

तीनों अग्नियों में होम करने से पवित्रता मिलती है, इसका उल्लेख कालिदास ने भी किया है—

त्रेताग्निधूमाग्रमनिन्द्यकीर्त्तेस्तस्येदमाक्रान्तविमानमार्गम् ।
घ्रात्वाहविर्गन्धरजोविमुक्तः समुश्नते मे लघिमानमात्मा ।। रघुवंश—

तपश्चर्या में शीत उष्ण का सहन, फल-फूल सेवन या उपवास करना होता है, यथा—पार्वती की तपस्या के वर्णन में—

अयाचितोपस्थितमम्बु केवलं रसात्मकस्योडुपतेश्चरश्मयः ।
बभूवतस्याःकिलपारणाविधिर्न वृक्षवृत्तिर्व्यतिरिक्तसाधनः ।।
शिलाशयातामनिकेतनवासिनीं निरन्तरास्वान्तर्वातवृष्टिषु ।
व्यलोकयन्नुन्मिषतैः तड़िन्मयैः महातपः साक्ष्य इवस्थिताः क्षपाः ॥

तप से इच्छित फल मिलता है इसका उल्लेख उपनिषद में तथा अन्यत्र भी है, यथा—

तपसा विन्दते मधु-उपनिषद

यद्दुष्करं यद्दुरापं यच्चदुर्गं यच्चदुस्तरम् ।
तत्सर्वं तपसा साध्यं तपो हि दुरतिक्रमः ॥
तपसो हि परं नास्ति तपसा विन्दते महत् ।
तपसा क्षीयते पापं मोदते तपसा दिवि ॥
तपसा प्राप्यते ज्ञानं तपसा प्राप्यते यशः ।
आयुराप्नोति तपसा सौभाग्यं रूपमेव च ॥
तपसाधर्मनिष्ठोऽयं परं धाम प्रपद्यते ।
ज्ञान विज्ञान संपन्नस्तपसा विन्दतेऽखिलम् ॥ मत्स्यपुराण ॥

सामने देखकर—

समन्तादालोके सवितुरुपगच्छत्युपशमं
गुरोर्दिष्ट्या लब्धे महत इव सेवापरिचये ।
तमः सर्वामुर्वीं स्थगयति खलानामिव मतिं
तदस्यामत्यर्थं न भवति विवेकः सदसतोः ॥ ४ ॥

तथापि पश्यतो मम द्वावपि पुरुषौ गृह्येते । (कतिचित्पदानि गत्वा निपुणं निरूप्य ।) हन्त, सकिंकरः कुष्ठोऽयमागच्छति । स्वजनेनाप्यनेनाहमिदानीं संभाषणाय जिह्रेमि । तदस्य दर्शनं परिहरणीयम् । मार्गोऽपि न दृश्यते निलीय गन्तुम् । भवत्वत्रैव स्थाणुतामवलम्ब्य तिष्ठामि । गते चैतस्मिंस्त्वरित-पदं व्रजेयम् । (इति तथा स्थितः ।)

४—भाग्य से महान गुरु मिल जाने पर भी दुर्जनों द्वारा की हुई सेवा की भाँति सूर्य का प्रकाश चारों ओर से छिप जाने पर, अन्धकार के सारी पृथ्वी पर फैल जाने से, इस पृथ्वी पर यह है, या नहीं, इसका ठीक ठीक पता नहीं चलता ।

दुर्जन के पक्ष में—भाग्य से योग्य आचार्य मिल जाने पर भी दुर्जन द्वारा ठीक प्रकार से सेवा न करने पर उसकी बुद्धि में तमोगुण फैल जाता है, जिससे कि उसको सत्, असत्, कृत्य-अकृत्य का ज्ञान नहीं रहता ।

वक्तव्य—इसी से चरक में कहा है कि यदि योग्य शिष्य मिले तो उसमें आचार्य जल्दी ही ज्ञान को दे सकता है--

एवं गुणोह्याचार्यः सुक्षेत्रमार्त्तवो मेघ इव शस्यगुणैः सुशिष्यमाशु वैद्य गुणैः सम्पादयति ॥ चरक. विमान अ. ८ ।

कालिदास ने इसी श्लोक के अभिप्राय को तीन श्लोकों में कहा है, यथा—

यामिनी दिवस सन्धि संभवे तेजसि व्यवहिते सुमेरुणा ।
एतदन्धतमसं निरंकुशं दिक्षु दीर्घनयने विजृम्भते ॥
नोर्ध्वमीक्षण गतिर्न चाप्यधो नाभितो न पुरतो न पृष्ठतः ।
लोकएष तिमिरौघवेष्टितो गर्भवास इव वर्तते निशि ॥

(ततः प्रविशति किंकरेणानुगम्यमानः कुष्ठः ।)

कुष्ठः—(सदृष्टिक्षेपम् ।) किमिदं दृश्यते पश्य ।)

किंकरः—(सान्द्रे तमसि न्यञ्चितपूर्वकायः पश्यन्)

पश्यामि न करचरणं न चात्र पश्यामि चलनमपि किंचित् ।
वैशिष्ट्यमूर्ध्वतायाः पश्यामि स्थाणुरयमतो भवति ॥ ५ ॥

कुष्ठः—भद्र, वदन्ति खल्वेवं नीतिशास्त्रविदः ।

आक्रान्ते रिपुभिः पुरेऽन्नसलिलादीनामभावाद्बहि-
स्तान्यानेतुमशब्दकल्पितपदन्यासास्तमस्यागताः ।

शुद्धमाविलमवस्थितं चलं वक्रमार्जव गुणान्वितं च यत् ।
सर्वमेव तपसा समीकृतं धिङ् महत्त्वमसतां हतान्तरम् ॥

कुमार ८।५५-५७

तो भी, मेरे देखने में दो पुरुष आ रहे हैं (कुछ आगे चलकर अच्छी प्रकार से देखकर) दुःख है ! भृत्य के साथ यह कुष्ठ आ रहा है । अपने इस स्वजन भी बात करने में मैं आज लज्जा अनुभव कर रहा हूं । इसलिये इससे बचना चाहिये, छिपकर जाने के लिए मार्ग भी दिखाई नहीं पड़ता । अच्छा, यही पर ठूंठ के रूप में बनकर खड़ा हो जाता हूं । इसके निकल जाने पर मैं जल्दी जल्दी चला जाऊँगा (ऐसा कहकर ठूंठ बन कर खड़ा हो गया) ।

(इसके पीछे भृत्य के साथ कुष्ठ आता है)

कुष्ठ—(ध्यान से देखते हुए) यह क्या दीख रहा है, देख ।

किंकर—(गहरे अन्धकार में शरीर के ऊपर के भाग को आगे झुकाकर देखता हुआ) ।

५—हाथ-पैर नहीं देख रहा हूं, इस सामने दीखने वाली वस्तु में गति भी-हिलना भी नहीं देख रहा हूँ । असाधारण ऊँचाई को देखता हूँ; इस लिये ठूंठ होगा ।

कुष्ठ—भद्र ! राजनीति में निपुण व्यक्ति इस प्रकार कहते हैं कि—

६—शत्रुओं द्वारा पुर के घेर लेने पर अन्न-जल आदि का अभाव

संप्राप्ते सति संनिधिं परिजने द्राग्विभ्रतः स्थाणुतां
लीनत्वं दधतोऽथवाधिसरणि स्वं साधयन्तीप्सितम् ॥६॥
अतः सम्यङ्निरूपय ।

(किंकरो गत्वा मत्सरं हस्ते गृह्णाति)

मत्सरः—(स्वगतम् ।) मम खल्वशाब्दिकीयमवस्था संप्राप्त यद्यहं शब्दं कुर्यां ततः स्वरेण मां जानीयुःतस्मादविकटं प्रविष्टेन मलिम्लुचेन गृहीत उरभ्र इव तूष्णीमासिष्ये । (इति हस्तं विधुनोति ।)

किंकरः—चोर, दृढं गृहीतोऽसि । वृथा ते हस्तधूननम् (कुष्ठं प्रति ।) आवुक, पुरुषः पुरुषः ! गृहीत एव दृढं मया ।

कुष्ठः—सफलो मे तर्कः । दृढबद्धमेनमत्रैवानय ।

किंकरः—एहि रे चोर, एहि । रक्तकरवीरमालामामुच्यकण्ठेत्

हो जाने से, इन को बाहर से लाने के लिए, पैरों की आवाज किए बिना, अन्धकार में आये नागरिक, सहसा किसी भी परिजन के पास आ जाने पर जल्दी से ठूंठ रूप में खड़े हो जाते हैं, अथवा अन्य प्रकार से मार्ग के बीच में छिपकर अपने इच्छित कार्य को पूरा करते हैं ।

इसलिये ठीक प्रकार से देखो ।

(किंकर जाकर मत्सर को हाथ में पकड़ता है)

मत्सर—(अपने आप) मेरी तो चुप रहने की स्थिति हो गई । यदि मैं बोलूँ तो मेरी आवाज से ये मुझे पहिचान लेंगे । इसलिये भेड़ों के समूह में घुसे चोर से पकड़ी भेड़ (मेढ़े) की तरह चुप ही रहूँगा (ऐसा कहकर हाथ को छुड़ाता है) ।

किंकर—चोर, मजबूती से तुझे पकड़ा है; हाथ को छुटवाना व्यर्थ है (कुष्ठ की ओर देखकर) आवुक ! (तात !) पुरुष, पुरुष, इसको मैंने मजबूती से पकड़ा है ।

कुष्ठ—मेरा सोचना ठीक हुआ । मजबूती से बाँधकर इसको यहीं ले आओ ।

किंकर—ऐ चोर आओ, आओ । गले में लाल कनेर की माला को

संभावयामि । अहो तव तपः प्रभावः यत इदानीं गङ्गाचन्द्रादिपरिकरं विनापि शूली भविष्यसि ।

मत्सरः—(स्वगतम् ।)

दग्धो मनोरथो मे बत चिन्तितमन्यदापतितम् ।

(हर्षमभिनीय ।)

मोक्ष्याम्यथवा शोकाद्देहवियोगेन भाविना दैवात् ॥ ७ ॥

(किंकरो बलान्मत्सरमाकृष्य कुष्ठनिकटं गमयति ।)

कुष्ठः—भद्र, दीपिकासमीपमानय क एष इति पश्यामि । साधारणश्चेन्मोक्ष्याम एनम् ।

किंकरः—आर्य, ज्ञातचर इव दृश्यते । (इति दीपिकासमीपमानयति ।)

हिनाकर तेरा सम्मान करूँगा ।

अहो, तेरा तप का प्रभाव ! जिससे कि अब गंगा-चन्द्रमा आदि परिच्छद के बिना भी शूली (महादेव) हो जाओगे (शूली पर चढ़ोगे) ।

वक्तव्य—जिसको फांसी या शूली पर चढ़ाया जाता था, उसके गले में कर वीर की माला डाली जाती थी । यथा मृच्छकटिक में—

अंसेनबिभ्रत् करवीरमालां स्कन्धेन शूलं हृदयेनशोकम् ।
आघातमद्याहमनुप्रयामि शामित्रमालब्धुमिवाध्वरेऽजः ॥ १०-२१

मत्सर—७-मेरी सब इच्छायें नष्ट हो गईं, सोचा हुआ कुछ दूसरा ही हो गया । (हर्ष का नाट्य करके) अथवा भाग्य से भविष्य में (राजा की आज्ञा से) होने वाले शरीर नाश के द्वारा शोक से छूट जाऊँगा ।

(किंकर जबर्दस्ती मत्सर को खींच कर कुष्ठ के पास ले जाता है) ।

कुष्ठ—भद्र ! बत्ती को पास में लाओ, कौन है, देखूँ तो, सामान्य व्यक्ति होगा तो छोड़ देंगे ।

किंकर—आर्य ! पहिचाना जैसा दीखता है (बत्ती को पास में लाता है) ।

कुष्ठः—(निरूप्य ।) अहो रूपमिदं मत्सरस्येव लक्ष्यते, वेषस्तु कापालिकस्य । तथाहि ।

भस्मानुलेपधवलीकृतसर्वगात्रः
श्वेतां वहञ्छिरसि नारकपालमालाम् ।
एकेन शूलमितरेण दधत्कपालं
हस्तेन तिष्ठति पुरो मृगचर्मवासाः ॥ ८ ॥

भवतु । एनं सम्बोधयामि । सखे, कीदृशीयमवस्था ते संप्राप्ता ।

मत्सरः—(आत्मगतम् ।) हन्त, ज्ञातोऽस्म्यनेन मन्दभाग्यः । ज्ञातस्याधुना ममात्मापलापोऽनुचितः । (प्रकाशम्) तस्यैवेयं दशा दैवहतकस्य ।

कुष्ठः—(किंकरं प्रति ।) भद्र, सखायं मे मत्सरः । तन्मुञ्चैनम् । (किंकरस्तथा करोति ।)

कुष्ठ—(देखकर) अहो ! इसकी शकल तो मत्सर जैसी दीखती है, वेश तो कापालिक का है । क्योंकि ।

८—भस्म का लेप किए होने से सारा शरीर श्वेत हो गया है, नर कपालों की श्वेत माला को शिर पर धारण किये हुए, एक हाथ में त्रिशूल और दूसरे हाथ में खप्पर लिए, मृगचर्म को पहिने सामने खड़ा है ।

वक्तव्य—कापालिक का वर्णन प्रबोध चन्द्रोदय में भी आया है—
नरास्थि मालाकृत चारु भूषणः श्मशानवासी नृकपाल भोजनः ।
पश्यामि योगाञ्जन शुद्ध चक्षुषा जगन्मिथो भिन्नमभिन्नमीश्वरात् ॥ ३-१२

अच्छा ऐसा ही, इस प्रकार से सम्बोधन करता हूं, हे सखे ! तेरी यह कैसी अवस्था हो गई ।

मत्सर—(अपने आप हो) दुःख है कि, इसने मुझे दुर्भागे को पहिचान लिया । जान लेने पर अब अपने को छिपाना ठीक नहीं (स्पष्ट रूप में) सखे ! उसी दैव हतक की यह अवस्था है ।

कुष्ठ--(किंकर की ओर देखकर) भद्र ! यह मेरा मित्र मत्सर है, इसलिये इसको छोड़ दो ।

कुष्ठः—सखे मत्सर, कथं गृहीतवती भवन्तमपिकापालिकतापिशाची ।

मत्सरः—सखे सत्यमाह भवान् कापालिकतापिशाचीति । या खलु मामाकृष्य मरणसुखाद्दुरवस्थामिमां प्रापितवती ।

कुष्ठः—

सुखं मरणमप्येवंविधं तव भविष्यति ।
संगतिः स्वजनेनापि कथं तद्दुर्दशा परम् ॥ ९ ॥

(मत्सरस्तूष्णीमधोमुखस्तिष्ठति ।)

कुष्ठः—सखे,

न वदसि किमुत्तरं मे कथय कथयितुं क्षमं यदि तवेदम् ।
श्रुत्वा विचारयिष्ये त्रपयालं भिया चालम् ॥ १० ॥

मत्सरः—सखे, मम किमुपरोधेन । किमन्यद्वनगमनादृते कर्तव्यम्

कुष्ठः—

कापालिकताद्य कुतः कुतस्तरां ते वने गमनम् ।

(किंकर वैसा ही करता है)

कुष्ठ—सखे मत्सर ! आपको भी कापालिकता पिशाची ने कैसे पकड़ लिया है ?

मत्सर—सखे ! तुमने ठीक ही कहा—कापालिकता पिशाची, जिसने कि मुझे मृत्यु के मुख से खींचकर इस बुरी अवस्था को पहुँचा दिया है ।

कुष्ठ--९—इस प्रकार की मृत्यु (कैसे) तुम्हारे लिए सुखकारक होगी । अपने मित्र के साथ मिलन भी कैसे तुम्हारे लिये दुखदायक है ।

(मत्सर चुपचाप मुख को नीचे किये खड़ा है) ।

कुष्ठ—मित्र ।

१०—मेरे पूछने पर भी उत्तर क्यों नहीं देते, यदि मेरी पूछी बात का उत्तर देना योग्य हो, तो कहो । सुन कर मैं सोचूँगा, लज्जा को छोड़ दो, डर भी निकाल दो ।

मत्सर—मित्र ! इस आग्रह से मुझे क्या ? मुझे वन में जाने के सिवाय और क्या करना चाहिए ।

कुष्ठ-यह कापालिकता किस लिये और किस लिये तेरा वन में जाना है ।

मत्सरः—

सख्युपरोधेऽरिकृते सव सभाव्यतेऽभिमानजुषाम् ॥ ११ ॥

कुष्ठः—किं शत्रुषूपजापार्थं प्रवृत्ताः सखायस्ते निरुद्धाः ।

मत्सरः—अथ किम् ।

कुष्ठः—कथय कीदृशो वृत्तान्तः ।

मत्सरः—(स्वगतम् ।)

कथयामि किं रहस्यं पर्यालोचितममात्यवर्येण ।
उपजापस्य कथं वा जातामाकाशचित्रतामरिषु ॥ १२
अथवा तपस्तितुमिच्छन्सख्युः कुष्ठस्य गोपयामि यदि ।
तद्द्रोहस्य न किं स्यादास्थानाय स्वहस्तदानमिदम् ॥ १३ ॥

अतः सर्वमस्मै निवेदयामि । यदयमपि तस्य पांडोर्विश्वासस्थानमेवेति । (प्रकाशम् ।) सखे, तवाप्यकथनीयं नाम किमस्ति, श्रूयताम् ।

मत्सर--शत्रुओं द्वारा मित्रों के पकड़े जाने पर अभिमानी पुरुषों के लिये सब कुछ सम्भव होता है ।

कुष्ठ—क्या शत्रुओं में भेद करने के लिये प्रवृत्त तेरे मित्र पकड़े गये हैं!

मत्सर--और क्या ।

कुष्ठ—कहो, वह समाचार कैसा है ।

मत्सर—(अपने आप ही) ।

१२--अमात्य वर्य-पांडु से विचारे हुए रहस्य को कैसे (इसे) कह दूँ ? अथवा आकाश में बनाये चित्र कर्म की भाँति शत्रुओं में उत्पन्न की हुई भेद की अवस्था को कैसे कहूँ ?

१३--तप करने की इच्छा से यदि इस रहस्य को अपने मित्र कुष्ठ से छिपाता हूँ, तो इस मित्रद्रोह के करने के लिये मेरा स्वयं हाथ देना; सहारा देना क्या नहीं होगा; (अवश्य ही होगा) ।

इस लिये अब सब कुछ इसको बता देता हूँ । क्योंकि यह भी पांड का विश्वास योग्य है । (स्पष्ट रूप में) हे मित्र ! तेरे से भी क्या कुछ छिपाने योग्य है ? सुनिये--

विज्ञानप्रहितेन राजहतकेनास्मन्निसर्गद्विषो
यावत्साधयितुं रसं कथमपि ध्यानस्य सिद्ध्या क्रमात् ।
स्वच्छन्देन च पुण्डरीकनगरीं गत्वा मनोद्वारतः
साम्बस्यैव महेश्वरस्य दृढया भक्त्या प्रसादात्स्थितम् ॥१४॥

तदिदमाकर्ण्य मन्त्रिणा पांडुना एतस्य विघ्नाचरणं मनसः पारतंत्र्यं विना नोपपद्यत इति तदर्थं कामादयः षडेव प्रभवन्तीति त एव वयं प्रेषिताः अस्माभिश्च तत्र सखिस्नेहवशादङ्गीकृतं मनसः पारतंत्र्यकरणम् ।

कुष्ठः—ततस्ततः ।

मत्सरः—ततश्च तेष्वहमेको मन्दभाग्य इमां दुरवस्थामनुभवामि ।

कुष्ठः—अथ कामस्य कावस्था ।

कुष्ठ—कहो कहो ।

मत्सर—१४-विज्ञानशर्मा मंत्री से भेजा हुआ, स्वभाव से ही हमारा शत्रु दुष्ट राजा, अनुष्ठान परम्परा के द्वारा ध्यान सिद्धि की सहायता से (ईश्वर साक्षात्कार से) रस-पारद को प्राप्त करने के लिये मन के मार्ग से पुण्डरीक नामक नगर में जाकर निश्चल शिव भक्ति के साथ पार्वती सहित शिव की कृपा प्राप्ति के लिये यथेच्छ रूप में स्थित है (यत्न कर रहा है) ।

इस लिये यह सुन कर मंत्रि पांडु ने इस ध्यान कार्य में विघ्न डालना मन की परतंत्रता के बिना नहीं हो सकता (यह सोच कर), इसके लिये, काम-क्रोध-लोभ-मद-मत्सर-द्वेष ये छः ही समर्थ हैं, वे हम भेजे, और हमने भी मित्र के स्नेह के कारण मन को परतंत्र बनाना इस विषय में स्वीकार किया ।

कुष्ठ—इसके पीछे ।

मत्सर—और फिर, उनमें से अकेला मन्द भाग्य मैं इस बुरी अवस्था का अनुभव कर रहा हूँ ।

कुष्ठ—इसमें काम की क्या अवस्था है !

मत्सरः—सखे, किं कथयामि मन्त्रिहतकस्य दुर्बुद्धिविलसितम् ।

श्रुत्वा पित्तकफात्मपङ्गुयुगलस्पष्टोपजापं तथा
हृद्रोगस्य विमोचनं च सचिवः स्वात्तिकिकराद्विस्मितः ।

(आकाशे लक्ष्यं बद्ध्वा ।)

पाण्डो साधु भवान्यदैव परमेशाराधने साधनं
चेतः स्थैर्यवदुद्यतस्तदरिणा तद्भेत्तुमित्यब्रवीत ॥ १५ ॥

इतःपरमपि स बुद्धिमान्पांडुर्मम रसौषधसेनासंधानव्यापृततां राज्ञ एकाकितां मनसश्चञ्चलतां च निरूप्यप्रबलांस्तद्भेदिनः कामादीन्प्रेषयिष्यतीति मत्वा किंकरमुखेनैव स्वनागरिकाय विचाराय नगरपर्यटनमपहाय तत्रैव कामादिभेदने सावधानेन स्थेयमिति विज्ञानमन्त्रिणा समादिष्टम् ।

मत्सर--मित्र ! क्या कहूँ ? उस दुष्ट मंत्री के कुटिल बुद्धि-नैपुण्य को ?

१५--विज्ञानशर्मा मंत्री पित्त और कफ रूपी पंगु युगलों से बताये भेद को तथा हृद्रोग नामक गुप्तचर का मोचन-छुटकारा अपने भृत्य से सुन कर विस्मित हुआ । (तब उसने कहा)--

(आकाश में लक्ष्य करके)

हे पांडु ! जो मन ईश्वर की उपासना में निश्चल होकर सफलता में कारण है, उस मन को, उसके छः शत्रु-कामादि के द्वारा हमारे पक्ष से हटाने के लिये आप प्रवृत्त हुए हैं, आप अच्छे हैं (ताने के रूप में व्यंग से), ऐसा उसने कहा ।

इसके आगे भी वह बुद्धिमान पांडु मुझको रसनिर्मित औषध रूप सेना की तैय्यारी में लगा, राजा की एकान्तता को और मन की चंचलता को पहिचान कर इसमें भेद करने वाले प्रबल काम आदि को भेजेगा, यह समझ कर विज्ञान शर्मा मंत्री ने नौकर के द्वारा ही अपने नगराध्यक्ष विचार को नगर का घूमना छोड़ कर वहीं पर काम आदि के भेदन में सावधानी से रहने की आज्ञा भेजी ।

कुष्ठः—ततो विचारेण किं कृतम् ।

मत्सरः—तेन च तत्सदृशबुद्धिना कामः कामपि योगकलामुत्पाद्योपजापेन ध्यानविषयतामापादितः ।

कुष्ठः—हा कामस्यापि परिणतिः । अथ क्रोधस्य को वृत्तान्तः ।

मत्सरः—

कमपि प्रदर्श्य दोषं विचारहतकेन सोऽपि च क्रोधः ।
अस्मास्वेव प्रत्युत झटिति परावृत्तिमेव नीतोऽभूत् ॥ १६॥

कुष्ठः—हा क्रोध, त्वमपि सखोनेवाभिद्रोग्धुं प्रवृत्तः अथ लोभः कथम्

मत्सरः—यादृशः कामः ।

कुष्ठः—

साधु लोभ सखे साधु सम्यग्व्यवसितं त्वया ।
यादृशीं प्रापितोऽवस्थां कामस्त्वमपि तादृशीम् ॥१७॥

कुष्ठ—तब विचार ने क्या किया ।

मत्सर—और उसने विज्ञान शर्मा के समान बुद्धि से निदिध्यासन रूप-विशिष्ट शक्ति वाली किसी विद्या को उत्पन्न करके उसके द्वारा काम को ध्यान के विषय में (परमात्मा के ध्यान में) लगा दिया ।

कुष्ठ—हा ! काम का भी यह दुःखदायी परिणाम ! क्रोध का क्या समाचार है ?

मत्सर—१६—उस दुष्ट विचार ने वह क्रोध भी कुछ दोष दिखाकर हम पर ही जल्दी से वापिस लौटा दिया (क्रोध भी यक्ष्मा के पक्ष में ही क्रोध करने लगा) ।

कुष्ठ—हा क्रोध ! तू भी मित्रों की ही शत्रुता करने में लग गया. लोभ का क्या हुआ ?

मत्सर—जैसा काम का हुआ ।

कुष्ठ—१७—हे लोभ अच्छा, हे मित्र अच्छा ! तुमने अच्छा किया, जिस अवस्था को काम प्राप्त हुआ उसी अवस्था को तुम भी प्राप्त हो गये ।

अथ दम्भः क ।

मत्सरः—

उपजप्तोऽपि बहुधा तैरस्माकं स केवलम् ।
सौहार्दमनुरुन्धानः शस्त्रघातंहतोऽजनि ॥ १८ ॥

कुष्ठः—धन्योऽसि दम्भ, धन्योऽसि । यतः सख्युरनृणतां गतोऽसि। अथ कथय किमध्यवसितं मदेन ।

मत्सरः—मदस्तु निगृह्य कारागारे स्थापितः ।

कुष्ठः—कुतः ।

मत्सरः—निर्गते च पुंडरीकनगराद्राजनि नर्मकर्मण्येनमुपयोदयामः इति ।

कुष्ठः—मत्सर, एवंस्थिते शत्रुमंडलादेक एव त्वं कथं निर्गतोऽसि ।

मत्सरः—श्रृणु तावत् । नहि मम स्वेच्छया ततो निर्गमो जातः । यतो रससिध्यनन्तरं संनद्धे च सैन्ये इममेव मत्सरमत्रत्यवृत्तान्तहारिणं करिष्याम इति निगृह्य स्थापितोऽस्मि ।

१८—दम्भ का क्या हुआ—

मत्सर—शत्रुओं द्वारा वह दम्भ नाना उपायों से भेद किये जाने पर भी हमारी मित्रता के अनुरोध से युद्ध में शस्त्रों द्वारा मारा गया ?

कुष्ठ—हे दम्भ तुम धन्य हो ! धन्य हो, क्योंकि मित्र का ऋण तुमने चुका दिया । अब यह कहो कि मद ने क्या किया ?

मत्सर—मद को पकड़कर कारागार में बन्द कर दिया ।

कुष्ठ—किस लिये ?

मत्सर—पुण्डरीक नगर से राजा के निकल आने पर विनोद कार्यों में इसका उपयोग करेंगे (इसलिये कारागार में बन्द कर दिया है) ।

कुष्ठ—मत्सर, इस स्थिति में शत्रु समूह में से तुम अकेले ही कैसे बाहर आ गये हो ।

मत्सर—सुनिये आप ! मैं वहाँ से अपनी इच्छा से नहीं आ गया

कुष्ठः—तर्हि सखे, तवागमनमिदानीं तत्र रससिद्धिं सेनासंनाहं च सूचयति।

मत्सरः—एवमेतत्। समनन्तरमेव।

राज्ञः संनिधिमृच्छ भद्र कथय त्वं पाण्डुमाविष्कुरु
स्वामिप्रीतिमुपेहि मंत्रकलनाकौशल्यमप्यश्लथम्।
मा ग्लासीरिति मास्तु भीतिरिति मामुक्त्वा चमूनायका-
न्नामग्राहमपि प्रदर्श्य नगरान्निःसारितोऽहं शनैः॥ १९॥

कुष्ठः—

प्रज्ञोन्मदः स सचिवस्तदनर्थो भविष्यति।
गत्वा निवेद्यतां राज्ञे मंत्रिणेऽहं निवेदये॥ २०॥

मत्सरः—

तप्स्यमानस्तपः सख्युरविकीर्त्यमिदं तव।

हूँ। क्योंकि रससिद्धि के पीछे और सेना के तैय्यार हो जाने पर यहां का समाचार इसी मत्सर के द्वारा भेजेंगे, इसलिये इसे पकड़ कर उसे रख रहे हैं (यह समाचार देने के लिये मुझे छोड़ा दिया था)।

कुष्ठ—तो मित्र! तुम्हारा यहाँ आना वहां के रस की सफलता और सेना की तैय्यारी को बताता है।

मत्सर—यह ठीक है। उन्होंने तैय्यारी करके ही—

१९—हे भद्र। राजा के पास जा, पाण्डु को कह, स्वामी में अपनी प्रीति दिखा, निश्चय पूर्वक राजनीति की विचारविदग्धता को प्राप्त कर। ग्लानि मत करो, डरो मत, सेना नायकों के नामों को बताकर और उनको देखाकर मुझको धीरे से नगर से निकाल दिया है।

कुष्ठ—२०—वह विज्ञानशर्मा मंत्री बुद्धि से बहुत उद्धत है, इस कारण अनर्थ होगा। तुम जाकर यक्ष्मा को कहो, मैं मंत्री को कहता हूँ।

मत्सर—२१—तुम्हारे मित्र हुए मेरा यह किया जाने वाला तप नहीं कहना चाहिये (मंत्री को यह नहीं कहना कि मत्सर तप करने जा रहा है)।

कुष्ठः—

फलिष्यति तपः किं ते न चेत्सख्यमजीगणः ॥ २१ ॥

ग्लानिर्मनसस्तपसे प्रवर्तयति शक्तिमन्तमपि पुरुषम् ।
अग्लानिस्तस्य यदि क्रमात्तदस्यापि साधयति कार्यम् ॥२२॥

तस्मादग्लानिरेव क्रियताम् ।

मत्सरः—का गतिः । (इति कुष्ठेन किंकरेण च सह निष्क्रान्तः ।)

शुद्धविष्कम्भकः ।

(ततः प्रविशति पाण्डुः कुष्ठश्च ।)

पाण्डुः—(सामर्षम् ।)

अग्राह्यमल्पमतिभिः सचिवस्य तस्य
वैयात्यमूर्जितमहो किमिति ब्रवीमि ।
यः प्रेषयन्किमपि तादृशवाचिकं द्रा-
गुन्मस्तकं निजमसूचयदूष्मलत्वम् ॥ २३ ॥

कुष्ठ—मैत्री की यदि परवाह नहीं करोगे; तो तेरा तप क्या फल देगा ! (कुछ भी फल नहीं देगा) ।

२२—मन की पीड़ा शक्ति सम्पन्न पुरुष को भी तप के लिये प्रवृत्त करती है । उसी पुरुष के मन में ग्लानि न होने पर शनैः शनैः कालान्तर में इसके इच्छित कार्य को पूरा करती है ।

इस लिये धैर्य का ही सहारा पकड़ना चाहिये ।

मत्सर—क्या करूँ ? (इस प्रकार कुष्ठ और किंकर के साथ निकल गया) ।

(शुद्ध विष्कम्भक)

(इसके पीछे पांडु और कुष्ठ आते हैं)

पाण्डु—(आवेश के साथ) ।

२३—उस विज्ञान शर्मा मंत्री का अति बलवान् प्रागल्भ्य थोड़ी बुद्धि वालों से नहीं जाना जा सकता है, उस विषय में मैं कह भी नहीं सकता

जीवसमाधिभङ्गाय प्रेषितेषु कामादिष्वपि तथाभूतेषु, भक्तिमूला खल्वेतस्याभिमतसिद्धिरिति तद्विघाताय प्रेषितो व्याक्षेपो नाम गूढचारः। स गतोऽपि तत्सख्या श्रद्धयापहतो व्यर्थयत्नोऽभूत्। किमतः प्रतिविधातव्यम्।

कुष्ठः—मम त्वेवं प्रतिभाति।

मंत्रिणामूर्जस्वलत्वं हि पश्यद्भिः प्रतिमंत्रिभिः।
शौर्येण प्रतिकर्तव्यं तथा चेदुचितं भवेत्॥ २४॥

पाण्डुः—मैवं वादीः। यतः परस्य मन्त्रिशक्तिः स्वस्य मन्त्रशक्त्यैव

श्रब विज्ञानशर्मा ने अनिवर्चनीय पराक्रम वाली उसी प्रकार की तेजस्वी वाणी को जल्दी से हमारे विरुद्ध भेजकर अपना ऊँचा मस्तक और तेजस्विता सूचित की।

जीव की समाधि में भंग करने के लिए भेजे हुए काम आदि का ऐसा हाल हो जाने पर, इस जीवराज को इच्छित सफलता भक्ति के ही कारण है, इसलिये इसमें विघ्न करने के लिए व्याक्षेप नामक गुप्तचर को भेजा है। वह गया हुआ भी भक्ति की सखि श्रद्धा से मारा जा कर व्यर्थ परिश्रम वाला हो गया। अब क्या करना चाहिये।

वक्तव्य—व्याक्षेप-विघात, रुकावट, यथा कालिदास ने कहा है—
"अव्याक्षेपो भविष्यन्त्याः कार्यसिद्धेर्हि लक्षणम्॥"

कुष्ठ—मुझे तो ऐसा दीखता है कि—

२४—मन्त्रियों की तेजस्विता देखते हुए शत्रु पक्ष के मन्त्रियों का शौर्य से प्रतिकार करना चाहिये। (शूरं भेदेन योजयेत्—पंचतंत्र)। ऐसा करना उचित होगा (कृते च प्रतिकर्त्तव्यम्)।

वक्तव्य—भारवि ने भी कहा है—

व्रजन्ति ते मूढधियः पराभवं भवन्ति मायाविषु ये न मायिनः।
प्रविश्यहि घ्नन्तिशठास्तथाविधानसंवृत्ताङ्गान्निशिताइवेषवः॥१।३०

माघ में भी कहा है—विधायवैरं सामर्षे नरोऽरौ य उदासते।
प्रक्षिप्योदर्चिषंकक्षे शेरतेतेऽभिमारुतम्॥ माघ २।

पाण्डु—ऐसा मत कहो, दूसरे की मंत्र शक्ति को अपनी मंत्र शक्ति से

प्रतिहन्तव्या । यथा खलु शास्त्रविद आचक्षते—"यो यादृशेन साधनेन प्रहरति स तादृशसाधनेनैव प्रतिहन्तव्यः" इति । अतो मन्त्रकृतं संविधानमुपान्तराभावे शौर्येण प्रतिक्रियतामित्यन्तिममिदमौपयिकम् । अहमिदानीं तदुचितं प्रतिकारमालोचयामि ।

कुष्ठः—आलोचयतु भवान् ।

आकर्णयिष्यति यदा वृत्तान्तमिमं स मत्सरमुखेन ।
दीपितरोषो हृदये देवोऽपि समागमिष्यति तदैव ॥ २५ ॥

तस्य पुरस्तादस्मदायत्तमुपायं सफलीकरिष्यामः ।

पाण्डुः—अस्त्वेवम् । भवानवहितस्तिष्ठतु ।

कुष्ठः—तथा । (इति निष्क्रान्तः ।)

पाण्डुः—कः कोऽत्र भोः ।

ही विफल करना चाहिए । जैसा कि शास्त्र ज्ञाता कहते हैं, "जो जैसे साधनों से चोट करता है, उस पर उसी प्रकार के ही उपायों से चोट करनी चाहिए ।" इसलिये मंत्र शक्ति से किये कार्य में अन्य उपाय के न होने पर ही शौय से प्रतिकार करना चाहिये, यह उपाय अन्तिम है । मैं अब उसके लिये प्रतिकार का उचित उपाय सोचता हूँ ।

वक्तव्य—मंत्र शक्ति तीन प्रकार की है, प्रभुशक्ति, मंत्रशक्ति और उत्साहशक्ति । मंत्रा-मंत्रणा ।

कुष्ठ—आप विचार करें ।

२५—जब वह यक्ष्मा राजा इस समाचार को मत्सर के मुख से सुनेगा, तब तुरन्त ही हृदय में उत्पन्न प्रबल क्रोधवाला यक्ष्मा यहां आयेगा ।

उसके सामने स्वीकृत उपाय को हम सफल करेंगे ।

पाण्डु—ऐसा ही हो । आप सावधान होकर रहें ।

कुष्ठ—ऐसा ही (ऐसा कहकर निकल गया) ।

पाण्डु—यहाँ पर कौन है ?

(प्रविश्य ।)

गलगण्डः—आज्ञापय करणीयम् ।

पाण्डुः—भद्र, अपथ्यतां प्रवेशय ।

गलगण्डः - (निष्क्रम्य पुनस्तया सह प्रविश्य ।) आर्य, इयमपथ्यता । कटकसीमनि देवः प्राप्त इति वल्लभपालो विज्ञापयति ।

पाण्डुः—(अपथ्यतां प्रति । अपवार्य ।) अयि त्वं क्वचिन्महति राजकार्ये नियोजयितव्यासि ।

अपथ्यता—अवहिदम्हि । [अवहितास्मि ।]

पाण्डुः—जीवं प्रविश्य तमपथ्येष्वाहार विहारादिषु नियोजय ।

(प्रविष्ट होकर)

गलगण्ड—आर्य ! करणीय कार्य की आज्ञा करें ।

पाण्डु—भद्र ! अपथ्यता को प्रविष्ट करो ।

गलगण्ड—(निकलकर और फिर उसके साथ प्रविष्ट होकर) आर्य ! यह अपथ्यता है । राजा सेना की सीमा में आ गये हैं; ऐसा वल्लभपाल सूचित करता है ।

पाण्डु—अपथ्यता की ओर—हाथ से मुख के पार्श्व में रोक करके गुप्त बात करने के लिये) आर्य ! तुझे मैंने किसी बड़े गुप्त राज्यकार्य में लगाना है ।

अपथ्यता—मैं तैय्यार हूं ।

पाण्डु—जीवराज के शरीर में जाकर उसे अपथ्य कारक आहार-विहार में लगाओ ।

वक्तव्य—पथ्य से विरुद्ध अपथ्य, यह समशन, विषमाशन और अध्यशन भेद से तीन प्रकार का है।

पथ्यापथ्यमिहैकत्र भुक्तं समशनं मतम् ।
विषमं बहुवाऽल्पं वाऽप्यप्राप्तातीतकालयोः ॥
भुक्तं पूर्वान्तशेषे तु पुनरध्यशनं मतम् ।
त्रीण्यप्येतानि मृत्युं वा घोरान्व्याधीन्सृजन्ति वा ॥ चरक

अपथ्यता—तह। तथा (इति निष्क्रान्ता।)

पाण्डुः—(पुरोऽवलोक्य।) अये, देवः प्राप्तः। गलगण्ड, गच्छाग्रतः।

(ततः प्रविशति राजयक्ष्मा मत्सरश्च।)

पाण्डुः—(प्रणम्य।) राजन्, कथमेतत्।

तन्वत्पुनः पुनरपि भ्रुकुटिं ललाटे
निःसीमनिःश्वसितमुच्चलिताधरोष्ठम्।
देवस्य शंसति मुखाम्बुजमन्तरङ्गे
रूढां रुषा रिपुजने सहसैव चिन्ताम्॥ २६॥

राजा—पाण्डो, विजने प्रासादे समुपविश्य सर्वं बोधयिष्यामि।

पाण्डुः—गलगण्ड, प्रासादमार्गमादेशय।

गलगण्ड—इत इतो देवः।

विहार में अपथ्यता अकरणीय कार्यों का करना और करणीय कार्यों का न करना है।

अपथ्यता—ऐसा ही (यह कहकर चली गई)।

पाण्डु—(सामने देखकर) अये, राजा आ गये, गलगण्ड! सामने से जा।

(इसके पीछे राजयक्ष्मा और मत्सर आते हैं)

पाण्डु—(नमस्कार करके) राजन्! यह किस प्रकार।

२६—मस्तक पर बार-बार भ्रुकुटी को तानते हुए, असीमित श्वास द्वारा जोर से हिलते हुए दोनों ओठ वाला देव का कमलमुख क्रोध के कारण शत्रु वर्ग में मनके अन्दर सहसा उत्पन्न हुई चिन्ता को प्रगट कर रहा है।

राजयक्ष्मा—पाण्डु! एकान्त महल में बैठकर सब बताऊँगा।

पाण्डु—गलगण्ड! प्रासाद का रास्ता बताओ।

गलगण्ड—इधर इधर से महाराज।

पाण्डुः—(विलोक्य ।) राजन्, आरुह्यतामयम्—

श्रीकण्ठक्षितिधरशृङ्गभङ्गदायी
प्रासादः शिखरविराजहेमकुम्भः ।
सोपानैः स्फटिकमयैः सुखेन गम्यो
रम्योऽयं भवति कलस्वनैः कपोतैः ॥ २७ ॥

(सर्वे प्रासादारोहणं नाटयित्वोपविशन्ति ।)

राजा—पाण्डो, किं न त्वया श्रुतो मत्सरात्परवृत्तान्तः ।

पाण्डुः—श्रुतं कुष्ठमुखात्परवृत्तान्तं विशेषतः श्रोतुमिच्छामि ।

राजा—पाण्डो, श्रूयतां मत्सरमुखात् । ततः समुचितं प्रतीकारं विधास्यसि । मत्सर, कथय ।

मत्सरः—

संनद्धैः पुररक्षणे परिगतं प्राणादिभिः पञ्चभि-
स्तत्तद्देशगतैश्च यत्ननिचयैस्तद्दुष्प्रवेशं पुरम् ।

पाण्डु—(देखकर) राजन् ! इस पर आप चढ़ें ।

२७—कैलाश पर्वत के शिखर को भी नीचा दिखाने वाला (बहुत ऊँचा), शिखर पर स्वर्ण कलश को धारण किये, स्फटिक से बनी सीढ़ियों के कारण सुगमता से जाने योग्य, सुन्दर बोलने वाले कबूतरों से भरा यह प्रासाद है ।

वक्तव्य—ऊँचे महलों में कबूतरों के रहने का वर्णन मिलता है—
"तां कस्यांचिद् भवन वलभौ सुप्तपारावतायां"—मेघदूत १।४० ।

राजयक्ष्मा—पाण्डु ! क्या तुमने मत्सर के मुख से शत्रुओं का समाचार नहीं सुना ?

पाण्डु—कुष्ठ के मुख से ही सुना है ! विशेष रूप में सुनना चाहता हूं ।

राजयक्ष्मा—पाण्डु ! सुनिये मत्सर के मुख से । इसके पीछे ही उचित प्रतिकार करोगे । मत्सर कहो ।

मत्सर—सुनिये—

रन्ध्रान्वेषितया कथं कथमपि प्राप्ताः स्म देवाज्ञया
यत्रान्तर्मुखतामुपेत्य नियतं जीवस्तपोऽतप्यत ॥२८॥

राजा—के ते प्राणादयः कतिविधाः कुत्र गताः किंनामधेयाश्च। यानि च तानि यन्त्राणि कीदृशानीति सप्रकारमावेदय।

मत्सरः—

हृदयसततावासः प्राणो महाबलविक्रमः
सकलमपि तद्यस्यायत्तं पुरं सपरिच्छदम्।
कलितनिलयोऽपानो मूलस्थले हितकृद्विभो-
र्वसति च समानाख्यो गुल्फे बली घनशूलभृत्॥ २९॥

किं च।

२८—पुर (शरीर) की रक्षा में तत्पर हुए प्राण आदि पांच के पुर में व्याप्त हो जाने से, उन उन स्थानों में (अवयवों में-भागों में) एकत्रित किये यंत्र समूहों के कारण वह पुर दुष्प्रवेश्य है। छेद का किसी प्रकार (कपट से) ढूँढकर, देव की आज्ञा से हम वहां पर पहुँचे थे, जहाँ पर जीव अन्तर्मुखता (अन्तः ध्यान) को प्राप्त करके निश्चल तप करता था।

राजयक्ष्मा—मत्सर! वे प्राण आदि कौन हैं, कितने प्रकार के हैं, कहाँ रहते हैं, और इनके नाम क्या हैं ? और वे यन्त्र कौन से हैं; किस प्रकार के हैं ? यह सब विस्तार से कहो।

मत्सर—२९—अतिशय पराक्रम वाला प्राण निरन्तर हृदय में रहता है, परिच्छद (अंग प्रत्यंग) के साथ यह पुर (शरीर) सम्पूर्ण रूप में उसके अधीन है। अपान नाम का वायु मूलस्थान में (गुदा स्थान में-मूलाधिष्ठान चक्र में) स्थान बनाकर प्राण राजा के हित करने में लगी रहती है। समान नाम की बलवान वायु गुल्म में (वस्तौ च नाभ्यां हृदि-पार्श्वयोर्वा स्थानानि गुल्मस्य भवन्ति पंच) अतिशय शूल को करता है।

और भी—

कण्ठोपकण्ठे निवसन्नुदानः करोत्यकुण्ठां किल राजभक्तिम् ।
व्यानस्तु सर्वत्रचरन् पुरेऽस्मिन्करोति जीवे सकलानुभूतिम्
॥ ३० ॥

३०—गले के अन्दर रहती हुई उदान वायु अकुण्ठित राजभक्ति को करती है। व्यान वायु इस पुर में सर्वत्र फैलती हुई जीव राजा को सम्पूर्ण ज्ञान देती है।

नगर में प्राण-सम्पूर्ण परिजनों के साथ रहता है; नगर पक्ष में अपान मूल दुर्ग में जहाँ बल है वहाँ पर रहता है। समान दृढ़ शूल (त्रिशूल) को धारण किए हुए है; उदान-अकुण्ठित राजभक्ति को कर रहा है और व्यान सम्पूर्ण बातें जीव राजा को बताता है।

वक्तव्य—वायु ही इस तंत्र यंत्र का धारण करता है (वायुस्तंत्र यंत्रधरः), यह प्राण, उदान, समान, व्यान और अपान भेद से पाँच प्रकार का है; यथा-"प्राणोदान समान व्यानात्मा"। इनके कार्य—"तत्र प्राणो मूर्द्धन्यवस्थितः कण्ठोरश्चरो बुद्धीन्द्रिय हृदयमनो धमनी धारणष्ठीवन क्षवथूद्गार प्रश्वासोच्छ्वासान्न प्रवेशादि क्रियः। उदान उरस्यवस्थितः कण्ठ नासिका नाभिचरो वाक्प्रवृत्ति प्रयत्नोज्जाबल वर्ण स्रोतः प्रीणन धी धृति स्मृति मनो बोधनादि क्रियः। व्यानो हृद्यवस्थितः कृत्स्न देहचरः शीघ्रतरगतिः गति प्रसारणाकुञ्चनोत्क्षेपावक्षेप निमेषोन्मेषजृम्भणान्नास्वादन स्रोतो विशोधन स्वेदासृक् स्रावणादि क्रियो योनौ च शुक्रप्रतिपादनो विभज्य चान्नस्य किट्टात् सारं तेन क्रमशो धातूस्तर्पयति। समानोऽन्तरग्नि समीपस्थस्तत सन्धुक्षणः पक्वामाशय दोषमल शुक्रार्त्तवाम्बुवहः स्रोतो विचारी तदवलम्बनान्न धारण पाचन विवेचन किट्टाधो नयनादि क्रियः। अपानस्त्वपानस्थितो वस्ति श्रोणिमेढ्र वृषण वंक्षणोरुचरो विण्मूत्रशुक्रार्त्तव गर्भ निष्क्रमणादि क्रिय इति ॥ संग्रह

गुल्म के स्थान पाँच हैं; वस्ति, नाभि, हृदय और दोनो पार्श्व।
इन सब में प्राण ही प्रधान है, यथा—

शल्यानि यानि किल देहभृतां शरीरे
नानाङ्गकेषु महतीं प्रथयन्ति बाधाम् ।
तेषां समुद्धरणकर्मणि साधनानि
यंत्राणि कानिचन संघटितानि तत्र ॥ ३१ ।

अथ ह प्राण उच्चिक्रमिषन्स यथा सुहयः पड्वीश शङ्कून्संखिदे देवमितरान्प्राणान्समखिदत्तं हाभिसमेत्योचुर्भगवन्नेधि त्वं नः श्रेष्ठोऽसि मोत्क्रमीरिति ॥ छान्दोग्य ५।१२

३१—मनुष्यों के शरीर में जो शल्य भिन्न भिन्न अंगों में बहुत अधिक पीड़ा को उत्पन्न करते हैं; उनको बाहर निकालने के साधन कुछ यंत्र वहाँ पर बनाये गये हैं।

नगर पक्ष में—मनुष्यों को दुःख पहुँचाने वाले जो शल्य हैं, उनको निकालने के लिये नगर में यंत्र तैयार किए हैं।

वक्तव्य—शल्य शब्द-हिंसा अर्थ में या पीड़ा देने के अर्थ में है; यथा—

"शल श्वल आशुगमने धातू, तयोराद्यस्य शल्यमितिरूपम् । तद् द्विविधं शारीमागन्तुकं च । सर्वं शरीराबाधकरं शल्यं । २—शल्यं नाम विविधतृण काष्ठपाषाणपांशु लोह लोष्टास्थि बाल नख पूयास्राव दुष्टव्रणान्तर्गर्भशल्योद्धरणार्थं यंत्र शस्त्रक्षाराग्नि प्रणिधान व्रण विनिश्चियार्थं च ॥ ३—यंत्र—तत्र मनः शरीरा बाधकराणि शल्यानि, तेषामाहरणो पायो यंत्राणि ॥"

इसके अतिरिक्त शल्य शब्द, शोक; चिन्ता के लिये, भी आता है। शर को शल्य, कालिदास ने भी कहा है—

"हा तातेति क्रन्दितमाकर्ण्य विषण्ण स्तस्यान्विष्यन्वेतसगूढं प्रभवं सः ।
शल्यप्रोतं प्रेक्ष्य सकुम्भं मुनिपत्रं तापादन्तः शल्य इवासीत् क्षितिपोऽपि॥
९—७५

यंत्र—आयुर्वेद में एक सौ एक कहे हैं, परन्तु यह संख्या अनिश्चित है, इनमें हाथ सब से मुख्य यंत्र है, यथा—

यानि किल—

अर्शोभगंदरमुखस्य रुजां गणस्य
क्षाराग्निशस्त्रपरियोजनमङ्गरक्षाम् ।
बस्त्यादिकर्मघटकादि च कार्यजातं
कुर्वन्त्यपायरहितानि च तत्र तत्र ॥ ३२ ॥

यंत्र शतमेकोत्तरम्, अत्र हस्तमेव प्रधानतमं यन्त्राणामवगच्छ । २—मनः शरीराबाधकराणि शल्यानि । तेषां नानाविधानां शल्यानां नानादेश निविष्टानामाहरणेऽभ्युपायो यंत्राण्यर्शो भगन्दरादिषु शस्त्र क्षाराग्न्यवचारणे शेषाङ्गरक्षणं च । तथा वस्ति प्रणयनादौ शृंगालाबु-घटिकादयो जाम्बवौष्ठादीनि । अन्यान्यपि चानेक रूपाण्यनेककर्माणि स्वस्थातुरोपकरणानि । अतः कर्मवशात्तेषामियत्तावधारणमशक्यम् ॥ संग्रह ।

स्वबुद्ध्या चापि विभजेद्यन्त्र कर्माणि बुद्धिमान् ।
असंख्येय विकल्पत्वात् शल्यानामितिनिश्चयः ॥ सुश्रुत

जिन यंत्रों का काम—

३२—पीड़ा देने वाले अर्श और भगन्दर रोग के मुख में क्षार, शस्त्र या अग्नि कर्म करने के लिये, तथा अंग रक्षा में, वस्ति आदि कार्यों में, घटिका (Cupping) आदि कार्यों में उपयोगी होते हैं, एवं अन्य स्थानों में हानि नहीं होने देते ।

वक्तव्य—अर्श—शत्रु के समान पीड़ा देने से इनको अर्श कहते हैं—

तस्मादर्शांसि दुःखानि बहुव्याधिकराणि च ।
सर्वदेहोपतापीनि प्रायः कृच्छ्रतमानि च ॥

चिकित्सा में—

तत्राहुरेके शस्त्रेण कर्त्तनं हितमर्शसाम् ।
दाहं क्षारेण चाप्येके दाहमेके तथाऽग्निना ॥
अस्त्येतद् भूरितंत्रेण धीमता दृष्टकर्मणा ।
क्रियते त्रिविधं कर्म भ्रंशस्तत्रदारुणा ॥ चरक

अपि च।

यद्धर्यक्षसदृक्षरुक्षवदनं तत्सिंहवक्त्राभिधं
यच्चर्क्षस्य मुखाभभीषणमुखं भल्लूकवक्त्रं हि तत्।
तत्कङ्काननामकं प्रतिभयं यत्कङ्कतुल्याननं
यंत्रं काकमुखं तदेव यदपि ध्वाङ्क्षातितीक्ष्णाननम् ॥३३॥

भगन्दर--"ते तु भग गुद वस्ति प्रदेश दारणाच्च भगन्दरा इत्युच्यन्ते। अभिन्न पिडकाः भिन्नास्तु भगन्दराः ॥

घटि यंत्र—कपिंग (Cupping) करने में उपयोग—

परिवेष्ठ्य प्रदीप्तांस्तु वल्वजानथवा कुशान्।
भिषक् कुम्भं समावाप्य गुल्मं घटमुखे क्षिपेत् ॥
संगृहीतो यदा गुल्मः तदा घटमथोद्धरेत्।
वस्त्रान्तरं ततः कृत्वा भिन्द्याद् गुल्मं प्रमाणवित् ॥ चरक

वाग्भट में यंत्र कर्म—

नाना विधानां शल्यानां नानादेश प्रबाधिनाम्।
आहर्तुमभ्युपायो यस्तद्यन्त्रं यच्च दर्शने ॥
अर्शो भगन्दरादीनां शस्त्रक्षाराग्नियोजने।
शेषाङ्गः परिरक्षायां तथा वस्त्यादि कर्मणि ॥
घटिकालाबुश्रृंगे च जाम्बौष्टादिकानि च।
अनेक रूपकार्याणि यंत्राणि विविधान्यतः ॥ वाग्भट

और भी—

३३—जिस यंत्र का मुख सिंह के मुख के समान क्रूर होता है, उसे सिंहमुख कहते हैं। जिस यंत्र का मुख भल्लूक के मुख के समान भीषण-डरावना होता है, उस यंत्र को भल्लूक मुख कहते हैं। जिस यंत्र का मुख कङ्क नामक पक्षि के समान डरावना होता है, उसे कङ्कानमुख (कङ्क मुख) कहते हैं। जिस यंत्र का मुख कौवे के मुख के समान अतितीक्ष्ण होता है, उसको काक मुख कहते हैं।

वक्तव्य—"तत्र नाना प्रकाराणां व्यालानां मृगपक्षिणां मुखैर्मुखानि

विस्तीर्णानि नवद्वयाङ्गुलपरीणाहानि कण्ठे परं
संनद्धानि च कीलकैः सुघटितैर्मूलेऽङ्कुशाभानि च ।
पर्यन्तेषु पुनर्मसूरसदृशाकाराणि तिष्ठन्त्यहो
तत्र स्वस्तिकनामकानि कतिचिद्यंत्राणि घोराणि च ॥ ३४ ॥
तान्येव सुदृढान्यस्थिलग्नशल्यापकर्षणम् ।
कुर्वन्ति स्वस्तिकाख्यानि यंत्राणि हि शरीरिणाम् ॥ ३५ ॥

यंत्राणां प्रायशः सदृशानि, तस्मात्तत्सारूप्यादागमादुपदेशादन्य यंत्र-दर्शनात् युक्तितश्च कारयेत् ॥ सुश्रुत

तुल्यानि कंकसिंह ऋक्ष काकादि मृगपक्षिणाम् ।
मुखैर्मुखानि यंत्राणां कुर्यात्तत्संज्ञकानि च ॥ वाग्भट

यंत्रों के कार्य--"निर्घातन बन्धन पूरण व्यूहन वर्त्तन चालन विवर्त्तन विवरण पीडन मार्ग विशोधन विकर्षणाहरण प्रक्षालन प्रधमन प्रमार्जनानि चतुर्विंशतिः ॥ सुश्रुत

३४—इस पुर के यंत्रों में स्वस्तिक नामक यंत्र अट्ठारह अंगुल लम्बे हैं; गले पर अच्छी प्रकार बनी कीलों से जड़े हुए हैं। मूल पर अंकुश के समान हैं। पार्श्वों पर मसूर के समान गोल-चिकने आकार के हैं। इनमें कुछ यंत्र बहुत भयानक हैं।

वक्तव्य—वाग्भट में—

अष्टादशाङ्गुलायामान्यायसानि च भूरिशः ।
मसूराकार पर्यन्तैः कण्ठेबद्धानि कीलकैः ॥
विद्यात् स्वस्तिक यंत्राणि मूलेऽङ्कुशनतानि च ।

३५—ये स्वस्तिक यंत्र अति दृढ़ता से बने होते हैं, शरीर धारियों के अस्थि में फँसे शल्य के खींचने के लिये इनका उपयोग होता है।

वक्तव्य—तत्र स्वस्तिक यंत्राणि अष्टादशाङ्गुल प्रमाणानि सिंह-व्याघ्र वृक्षतरक्ष्वृक्षद्वीपिमार्जार शृगाल मृगैर्वारुक काक-कंक-कुरर-चास-भास-शशघात्यूलूक-चिल्लि-श्येन-गृध्र-क्रौञ्च भृङ्गराजाञ्जलिकर्णावभञ्जन

अपि च।

एकान्येकमुखान्यपि नाडीयंत्राणि सूक्ष्मसुषिराणि।
स्रोतोगतशल्यानां दर्शनचूषणविधौ समर्थानि॥ ३६॥

एवमादिभिर्बहुविधैर्यन्त्रनिवहैरन्यैरपि परिगुप्ततया दुर्गममपि पुरं कथंचन प्रविश्य मनसः पारतन्त्र्यकरणाय वयं यावदितस्ततः संचरितुं प्रवृत्तास्तावदेव विज्ञानविधेयेन विचारनाम्ना नागरिकहतकेन परिज्ञाताः।

नन्दीमुखानि मसूराकृतिभिः कीलैरवबद्धानि मूलेऽङ्कुशवदावृत्त वाराङ्गाणि अस्थि विनष्ट शल्योद्धारणार्थमुपदिश्यन्ते॥ सुश्रुत

३६——नाड़ी यंत्र एक मुख वाले और अनेक मुख वाले, तथा अन्दर में बारीक छेद वाले होते हैं। इनका उपयोग स्रोतों गतशल्य को देखने, चूसने के लिये होता है।

वक्तव्य—स्रोत-अन्तःस्रोत और बाह्यस्रोत भेद से दो प्रकार के हैं। इनमें अन्तः स्रोत तेरह हैं, यथा——प्राणोदकान्नरस रुधिर मांसमेदोऽस्थि मज्जशुक्रमूत्र पुरीष स्वेदवहानीति।

बाह्यस्रोत——"स्रोतांसिनासिककर्णौ नेत्रेपाय्वास्य मेहनम्।
स्तनौ रक्तपथश्चेति नारीणामधिकं त्रयम्॥

नाड़ी यंत्र——"नाड़ी यंत्राणि अनेक प्रकाराणि अनेक प्रयोजनानि एकतोमुखान्युभयतोमुखानि च, तानि स्रोतोगतशल्योद्धरणार्थम् रोगदर्शनार्थम् आचूषणार्थम् क्रियासौकर्यार्थं चेति। तानि स्रोतोद्वार परिणाहानि यथा योग दीर्घाणि च।

इसी प्रकार के दूसरे बहुत से यंत्र समूहों द्वारा चारों ओर से सुरक्षित, इसीलिये कठिनाई से प्रवेश योग्य शरीर में किसी प्रकार से भी प्रविष्ट होकर मन को परतंत्र बनाने के लिए(जीवराज से उसका भेद करने के लिये) हम जब तक इधर उधर फिरने लगे, तब तक इतने समय में विज्ञानशर्मा से नियुक्त विचार नामक दुष्ट नगराध्यक्ष ने हमको जान लिया।

वक्तव्य—नाना प्रकार के [दूसरे यंत्र—स्वस्तिक यंत्र-२४, संदंश

पाण्डुः—ततस्ततः ।

मत्सरः—ततः कामादिषु तत्र तादृशीं दुरवस्थां प्रपन्नेष्वहमेक एव हतभाग्यतया वैरिवशं गतस्तत्कृतमवमानजातमशरणतया सहमानस्तदीय भटैरितस्ततो विकृष्यमाणस्तदुदितवाचिकमपि निशमयंश्चारवधविमुखैस्तैरेव कृपया विमुक्तः, प्रज्वलदवमानाग्निसंतप्यमानः स्वजनमुखावलोकने कृतलज्जतया क्वचन विजनकाननसीमनि कठोरतपश्चर्यया विनिपातिततनुर्भर्तुरानृण्यं भजेयमिति पुरान्निः सरन्नन्तरा सकिंकरेण कुष्ठेन देवपादमूलं प्रापित इत्येतद वसानं प्रवृत्तः श्रुत्वा देवः प्रमाणम् ।

यंत्र–२, तालयंत्र–२, नाड़ी यंत्र–२०, शलका यंत्र–२८, उपयंत्र–२५ हैं। "तत्र चतुर्विंशति स्वस्तिक यंत्राणि, द्वे संदंश यंत्रे, द्वे एव ताल यंत्रे, विंशतिर्नाड्यः, अष्टाविंशति शलाकाः, पंचविंशतिरूपयंत्राणि ॥

पाण्डु – इसके पीछे।

मत्सर—फिर काम आदि की ऐसी अवस्था हो जाने पर मैं अकेला ही दुर्भाग्य के कारण शत्रुओं के अधीन हुआ, उनके द्वारा किए हुए अपमान को अशरण बनकर सहते हुए, उनके सैनिकों द्वारा इधर-उधर खींचा जाकर, उनकी वाणी से कही हुई बातों को सुनते हुए, गुप्तचर के वध के अनौचित्य से विमुख हुए, उनकी ही कृपा से छोड़ दिया गया। इस अपमान की जलती हुई अग्नि से संतप्त हुआ। अपने कुटुम्बीजनों के मुख देखने में लज्जा अनुभव करके कहीं एकान्त जंगल में कठोर तपस्या से शरीर त्याग करके स्वामी के ऋण को चुकता करूँ, इस प्रकार सोचकर पुर से निकलते हुए बीच में ही भृत्य के साथ कुष्ठ ने देख लिया और आपके चरणों में उपस्थित किया। इस प्रकार मेरे सब वृत्तान्त को आद्योपान्त सुनकर देव जो उचित समझें वह करें।

वक्तव्य—अपमानित होकर जीना उत्तम नहीं, यथा—

माजीवन् यः परावज्ञा दुःखदग्धोऽपि जीवति ।
तस्या जननीरेवास्तु जननीक्लेशकारिणः ॥ शिशुपाल बध २।

राजा—कुमार, श्रुतं खलु निरवशेषमस्य मुखात् । किमत्र प्रतिविधेयम् ।

पाण्डुः—(विचिन्त्य ।) देव, किमन्यत् ।

सन्तु यंत्राण्यनेकानि सन्तु वा सैनिकाः परे ।
त्वत्कोपाग्नौ पतङ्गत्वं भजेरन्निति मे मतिः ॥ ३७ ॥

राजा—पाण्डो, सत्यमेव किं कालविलम्बेन । सर्वथा प्रविश्यान्तः कोशागारम्—

शस्त्रेण सर्वमपि खण्डश एव कृत्वा
गृध्रव्रजाय निखिलं बलिमर्पयामि ।
येनौदनो दिविषदां विकलीकृतोऽभू-
त्किं तस्य मे भयममी कितवा विदध्युः ॥ ३८ ॥

राजयक्ष्मा—कुमार, इसके मुख से सुना सब वृत्तान्त ; इसमें क्या करना चाहिए ।

पाण्डु—(सोचकर) देव ! दूसरा क्या ?

३७—यंत्र अनेक प्रकार के भले ही हों; दूसरे सैनिक भी बहुत हों; आपकी क्रोधाग्नि से पतंग (शलभ) की भांति वे नष्ट हो जायेंगे, यही मेरी बुद्धि है ।

राजयक्ष्मा—पाण्डो ! यह सत्य है, देर करने से क्या लाभ, सब रूप से कोशागार में प्रविष्ट होकर ;

३८—शस्त्र के द्वारा सम्पूर्ण शरीर के टुकड़े टुकड़े करके, सारे को गीधों के समूह के लिये बली देता हूँ । जिस मुझ यक्ष्मा ने देवताओं के ओदन-अमृतांशु चन्द्रमा को भी क्षीण कर दिया है; उस मेरे लिये ये गरीब धूर्त क्या भय उत्पन्न कर सकते हैं ?

वक्तव्य—शरीर पाँच कोशों से बना है, अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय, आनन्दमय, ये पाँच कोश हैं, जिनसे शरीर बनता है ।

चन्द्रमा देवताओं का आहार-ओदन है, ऐसा देवी पुराण में वर्णित है, यथा—

अपि च ।

अमृतनिधिरयं यः सोऽपि मत्पीडितः स-
न्न विसृजति मदीयेनाधिनाद्यापि कार्श्यम् ।
निजविकटजटालीकाननस्थापितस्य
प्रभवति स महेशोऽप्यस्य किं पूरणाय ॥ ३९ ॥

कलाःषोडश सोमस्य शुक्ले वर्धयते रविः ।
अमृतेनामृतं कृष्णे पीयते देवतैः क्रमात् ॥

और भी—

३९—यह जो अमृत-निधि चन्द्रमा है; वह भी मुझ से मेरी व्याधि द्वारा पीड़ित हुआ आज भी कृशता को नहीं छोड़ता । अपनी विकराल जटाजूटों के जंगल में सुख से रक्खे हुए इस चन्द्रमा को पूरण करने के लिये महादेव भी समर्थ नहीं हैं ।

वक्तव्य—यक्ष्मारोग सबसे प्रथम चन्द्रमा को हुआ था, इसकी कथा इस प्रकार है—

दिवौकसां कथयतामृषिभिर्वैश्रुता कथा ।
काम व्यसन संयुक्ता पौराणी शशिनं प्रति ॥
रोहिण्यामतिसक्तस्य शरीरं नानुरक्षतः ।
आजगामल्पतामिन्दोर्देहः स्नेह परिक्षयात् ॥
दुहितृणामसंभोगाच्छेषाणां च प्रजापतेः ।
क्रोधो निःश्वासरूपेण मूर्त्तिमान् निःसृतो मुखात्॥
प्रजापतेर्हि दुहितृरष्टाविंशतिरंशुमान् ।
भार्यार्थं प्रतिजग्राह न च सर्वास्ववर्त्तत ॥
गुरुणा तमवध्यातं भार्यास्वसमवर्त्तिनम् ।
रजः परीतमबलं यक्ष्मा शशिनमाविशत् ॥

यस्मात् सराज्ञः प्रागासीद् राजयक्ष्मा ततो मतः । चरक

प्रजापति की अट्टाईस कन्यायें—अट्टाईस नक्षत्र हैं । चन्द्रमा रोहिणी नक्षत्र पर अपेक्षया दूसरों के अधिक समय रहता है । इस

हन्त हन्त ।

स ददाति नाम गिरिशो रसमेतेषामुपासनपराणाम् ।
लब्धेनैतेनास्मानेते नाम प्रशमयन्ति ॥ ४० ॥

(विहस्य ।) अहो विचारचातुरी विज्ञानहतकस्य ।

(आकाशे ।)

अरे विज्ञानहतक,

आश्रित्य यं सततमुत्पतसि स्मयेन
निर्वापयामि तमहं सहसैव जीवम् ।
पश्चाद्विनङ्क्ष्यति भवानपि चाश्रयस्य
नाशान्न सिध्यति किमाश्रयिणोऽपि नाशः ॥ ४१ ॥

कथानक से यह स्पष्ट है कि अति आसक्ति-काम वासना से यक्ष्मा होता है, यथा विचित्र वीर्य को हुआ था--

विचित्र वीर्यो विषयी विपत्तिं क्षयेणयातः पुनरम्बिकायाम् ।
व्यासेन जातो धृतराष्ट्र एष लभेत् राज्यं जनकः कथं ते ॥ भास

रघुवंश में अग्निवर्ण के क्षय का भी कारण यही अति स्त्री आसक्ति बताई है । इसी से चरक में कहा है--

आहारस्य परं धाम शुक्रं तद्रक्ष्यमात्मनः ।
क्षयोह्यस्य बहून् रोगान्मरणं वा नियच्छति ॥

दुःख है, दुःख है—

४०—वह महादेव उपासना में लगे हुए इनको रस-पारद देता है; इस पारद को प्राप्त करके ये हमको शान्त करेंगे ? व्यंग में—हास्य रूप में उक्ति है ।

(हँसकर) अहो दुष्ट विज्ञानशर्मा की विषय विमर्श नैपुण्य (आकाश में देखकर) अरे विज्ञान हतक !

४१—जिस जीवराज का आश्रय लेकर सर्वदा गर्व से गरजते हो; उस जीवराज को मैं बहुत सरलता से ही देह से निकाल दूँगा । आश्रय भूत जीवराजा के नाश होने पर पीछे से आप भी स्वयमेव नष्ट हो जायँगे; क्या

राजा—कः कोऽत्र भोः, शस्त्रम् । (इत्युत्थातुमिच्छति ।)

पाण्डुः—ननुसंनिहितमेव शस्त्रम् । तथापि देव, किंचिद्विज्ञापयामि ।

राजा—श्रोतव्यं तर्हि ।

पाण्डुः—अस्त्येवायमन्तिमः प्रकारः । अपि तु ।

त्रिषूपायेषु सत्स्वन्त्यो न युक्त इति तांत्रिकाः ।
उपायमिममेवातो मनो मे प्रयुयुक्षते ॥ ४२ ॥

राजा—कोऽयमुपायः ।

पाण्डुः—(कर्णे ।) एवमेवम् ।

राजा—भवतु तथा । अस्त्येवैतदनन्तरकर्तव्यम् ।

आश्रयभूत वस्तु के नष्ट हो जाने पर आश्रयि वस्तु का नाश नहीं हो जाता? हो जाता है (पात्र के नष्ट होने से पात्र में रक्खा घी भी नष्ट हो जाता है)।

यहाँ पर कौन है ? शस्त्र, शस्त्र (इस प्रकार खड़ा होना चाहता है)

पाण्डु—शस्त्र तो पास में ही रखा है, तथापि देव ! कुछ कहना चाहता हूँ । ०

राजयक्ष्मा—तो सुनना चाहिए ।

पाण्डु—क्या यही अन्तिम उपाय है ? क्योंकि—

४२—समा-दान-भेद रूपी तीन उपायों के रहने पर अन्तिम उपाय-दंड का प्रयोग योग्य नहीं है, ऐसा राजनीति को जानने वाले कहते हैं। इस कारण मेरे से सोचा हुआ यह उयाय ही प्रयोग करने के लिए मेरा मन कहता है ।

वक्तव्य—शुक्रनीति में कहा भी है—

सामैव प्रथमं श्रेष्टं दानं तु तदनन्तरम् ।
सर्वदा भेदनं शत्रोर्भेदनं प्राण संशये ॥

राजयक्ष्मा—कौन सा उपाय ।

पाण्डु—(कान में कहता है)— इस प्रकार से ।

राजयक्ष्मा—ऐसा ही हो । इसके पीछे ही शस्त्रों की झनझनाहट का शब्द करना चाहिए ।

पाण्डुः—देव, मार्गश्रम इव दृश्यते, सिद्धं च सर्वं शयनादि ।

राजा—त्वमपि स्वकार्येऽवहितस्तिष्ठ । अहमपि भुक्त्वा निद्रास्थानं गच्छामि ।

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे ।)

इति पञ्चमोऽङ्कः

पाण्डु—देव ! रास्ते के श्रम से थके दीखते हैं; शयन आदि (स्नानोदक, पानादि) सब तैय्यार हैं ।

राजयक्ष्मा—तुम भी अपने कार्य में सावधान होकर रहो, मैं भी भोजन करके सोने के लिए जाता हूँ ।

[इस प्रकार कहकर सब चले गये]

पाँचवाँ अङ्क समाप्त

षष्ठोऽङ्कः

(ततः प्रविशति कर्मणा सह कालः ।)

कालः—वत्स कर्मन्, जीवस्य राज्ञः पुरबाधनार्थं यक्ष्मराजमन्त्रिणा पाण्डुना प्रयुक्तान्रोगरूपान्भटान्प्रतियुध्य जेतुं विज्ञानमन्त्रिणा नियुक्तं सरसंतत्प्रतिभटजातं किं करोतीति जिज्ञासते मे हृदयम् ।

छठा अङ्क

[इसके पीछे कर्म के साथ काल आता है]

वक्तव्य—आयुर्वेद में काल और कर्म भी रोग के कारण माने हैं, यथा—

"त्रीण्यायतनानीति, अर्थानां कर्मणः कालस्य चातियोगायोग॰ मिथ्यायोगाः ॥" चरक

निर्दिष्टं दैव शब्देन कर्म यत् पौर्वदेहिकम् ।
हेतुस्तदपि कालेन रोगाणामुपलभ्यते ॥
नहि कर्ममहत् किंचित् फलं यस्य न भुज्यते ।
क्रियाघ्नाः कर्मजा रोगाः प्रशमं यान्ति तत्क्षयात् ॥

चरक शा॰ अ॰ १।

पूर्वजन्म में किये हुए कर्म को यहाँ पर दैव शब्द से कहते हैं। काल से अभिप्राय-ऋतु विभाग जन्य काल से है। पुण्य-पाप, धर्म, अधर्म आदि कर्म रोग का कारण है, काल भी रोग का—जरा-मृत्यु का कारण है।

इस अंक में गर्भसन्धि है, जिसका लक्षण—

"गर्भस्तु दृष्टनष्टस्य बीजस्यान्वेषणं मुहुः ।"

काल—प्रिय कर्म! जीवराजा के पुर को घेरने के लिए यक्ष्माराजा के मन्त्री पाण्डु से भेजे रोग रूप सैनिकों के साथ युद्ध करके उनको जीतने

कर्म—भगवन्, सर्वानुस्यूतस्य तव किं नामाविदितमस्ति ।

कालः—भवानपि तादृश एव । महान्खलु तव प्रभावः । तथाहि ।

त्वामज्ञातमनुग्रहाय जगतां देवी विधत्ते श्रुति-
र्लोकः साधयतीप्सितं भवदनुष्ठानादिहामुत्र च ।
किं चायं समनुष्ठितेन भवता चित्तस्य शुद्धिं गत-
स्तत्त्वं वेदितुमात्मनः प्रभवति श्रुत्यन्तसंदर्शितम् ॥ १ ॥

के लिए विज्ञानशर्मा से नियुक्त रस के साथ, नाना प्रकार की रसौषध रूप सैनिक क्या कर रहे हैं, मेरा हृदय यह जानना चाहता है।

वक्तव्य—काल की अपेक्षा कर्म छोटा है, इसीसे सुश्रुत में कहा है—"कालो हि नाम भगवान् स्वयम्भूरनादि मध्यनिधनः । अत्र रस व्यापत्संपत्ती जीवितमरणे च मनुष्याणामायत्ते । स सूक्ष्मामपि कलां न लीयते इति कालः । सकलयति, कालयति वा भूतानीति कालः ॥" सुश्रुत सू० ६।३।

कर्म—भगवन् ! सर्वत्र अव्यवहित रूप में सदा रहने वाले आपसे क्या छिपा हुआ है।

काल—आप भी तो वैसे ही हैं, तुम्हारा प्रभाव बहुत अधिक है। क्योंकि—

१—देवी श्रुति तुझ कर्म को सब प्रजाओं का कल्याण करने के लिये आज्ञाधारक बनाती है, मनुष्य कर्म को करके ही इस लोक में और परलोक में इच्छित फल को प्राप्त करते हैं। यह लोक कर्म को करके ही अन्तःकरण की शुद्धि को प्राप्त करके ही वेदान्त में प्रतिपादित अपने वास्तविक रूप को जानने में समर्थ होता है।

वक्तव्य—गीता में तथा उपनिषद् में कर्म की प्रधानता-महत्त्व स्पष्ट है, यथा—

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः ।
एवं त्वयि नान्यथोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे ॥ ईशोपनिषद्

अपि च।

त्वं नित्यनैमित्तिककाम्यभेदात्स्थित्वा त्रिधानेकफलानि दत्से।
इन्द्रत्वमिन्द्रस्य विधेर्विधित्वं हरेर्हरित्वं च फलं त्वदीयम्॥२॥

कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षर समुद्भवम्।
तस्मात्सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम्॥ गीता ३।१५
कर्मणैव संसिद्धिमास्थिता जनकादयः।
लोकसंग्रहमेवापि संपश्यन् कर्त्तुमर्हसि॥ गीता ३।२०
न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत।
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः॥ गीता ३।५
नियतं कुरु कर्मत्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः।
शरीर यात्रापि च ते न प्रसिद्धयेदकर्मणः॥ गीता ३।८

नित्य कर्मों को तथा अन्य कर्मों के करने से ही आत्मा की शुद्धि होती है।

यज्ञ दान तपः कर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत्।
यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम्॥ गीता १८।५
हिंसास्त्योन्यथाकामं पैशुन्यं परुषानृते।
संभिन्नालापव्यापादमभिध्यादृग्विपर्ययम्॥
पापं कर्मेति दशधा कायवाङ्मानसस्त्यजेत्।
न पीडयेदिन्द्रियाणि न चैतान्यतिलालयेत्॥
त्रिवर्ग शून्यं नारम्भं भजेत्तं चाविरोधयन्।
इत्याचारः समासेनयं प्राप्नोति समाचरन्॥
आयुरारोग्यमैश्वर्यं यशो लोकश्च शाश्वतान्। वाग्भट

कर्म के करने से ही इस लोक में शरीर यात्रा चलती है, और परलोक में ज्ञान योग से ही ब्रह्म का स्वरूप–'तत्वमसि,' आनन्दं ब्रह्म,' अद्वितीयं ब्रह्म" इत्यादि बातों का साक्षात्कार होता है।

और भी—

२—तू (कर्म) नित्य; नैमित्तिक और काम्य रूप में तीन प्रकार से

कर्म—आर्य, अवाङ्मनसगोचरस्तव महिमा ।

सुमतिभिरनुमेयस्त्वं सहस्रांशुगत्या
भवति भवदधीनं मद्विधानं जनानाम् ।

(सविनयम् ।) भगवान्, किमन्यद्ब्रवीमि ।

परिणमयसि पुंसां दातुमर्थात्मना मां
त्वयि कृतिमति षोढा विक्रियन्ते च भावाः ॥ ३ ॥

स्थित होकर अनेक फलों को देता है । इन्द्र में इन्द्रत्व (ऐश्वर्यत्व) ब्रह्मा में ब्रह्मत्व(कर्तृत्व), विष्णु में विष्णुत्व (रसत्व) तेरे ही कारण से है ।

वक्तव्य—कर्मों का स्पष्टीकरण प्रथम अंक के ६ठे श्लोक में आ चुका है । कर्म ही इन सब में कारण है, कहा भी है—

ब्रह्मा येन कुलालवन्नियमितो ब्रह्माण्ड भाण्डोदरे
विष्णुर्येन दशावतार गहने क्षिप्तो महासंकटे ।
रुद्रो येन कपालपाणि पुटके भिक्षाटनं सेवते
सूर्यो भ्राम्यति नित्यमेव गगने तस्मै नमः कर्मणेः ॥

कर्म—आर्य ! तुम्हारी महिमा तो वाणी और मन से भी परे हैं ।

३—तुम (काल) सूर्य की गति द्वारा बुद्धिमानों से अनुमान किए जाते हो । मनुष्यों का मेरा करणीय आपके ही अधीन होता है ।

(विनय के साथ) भगवन्—और क्या अधिक कहूँ ।

(मनुष्यों को देने की इच्छा से आप मुझको बदल देते हैं; आपके उन उन कार्यों को करते हुए स्थावर जंगम पदार्थ वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद्, हेमन्त और शिशिर छैः ऋतुओं में बदल जाते हैं ।

वक्तव्य—काल ही सब में कारण है—

उप्तं स्थले फलति कालवशेन बीजं तप्तं तपः परिणमत्यपि कालयोगात् ।
कालेन नीरमपि वारिदतामुपैति कालः प्रभु सकल कर्म फलस्य पाके ॥

षोढा—शब्द से छैः ऋतुयें भी ग्रहण होती हैं, और पदार्थों के छै भाव—उत्पत्ति, स्थिति, वृद्धि, परिणाम, ह्रास, नाश ये भी ग्रहण होते हैं।

किं च।

त्रैधं जनः शंसति वर्तमानं भूतं भविष्यन्तमहं पुनस्त्वाम्।
ऐकध्यमापन्नमखण्डरूपमाधारमेषो जगतामवैमि ॥ ४ ॥
निमेषकाष्ठे च कलाक्षणा च मुहूर्तरात्रिंदिवपक्षमासान्।
भवत्तनूभृत्त्वयने तथाब्दं युगं च मन्वन्तरमप्यवैमि ॥ ५ ॥

सूर्य की गति से ही काल का ज्ञान होता है, इस बात को सुश्रुत में भी कहा है--

"तस्य सम्वत्सरात्मनो भगवानादित्यो गतिविशेषणाक्षिनिमेष-काष्ठा कला मुहुर्त्ताहोरात्र पक्षमासर्त्वयन संवत्सरयुग प्रविभागं करोति ॥

सुश्रुत सू० ६।४।

और भी--

४—मनुष्य आपकाल को वर्त्तमान, भूत और भविष्यत इस प्रकार से तीन प्रकार का कहते हैं। मैं (कम) तो एक ही होकर अखण्ड रूप में लोकों का आश्रय आपको जानता हूँ।

वक्तव्य—जगत की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय का कारण काल ही है, इसी से कहा है—

"कालः कलयते विश्वं तेन कालोऽभिधीयते।
कालस्यवशगाः सर्वे देवर्पि सिद्धकिन्नराः ॥
कालो हि भगवान् देवः स साक्षात्परमेश्वरः।
सर्गपालन संहर्त्ता सोऽखण्डः सर्वतो मुखः ॥

५—निमेष, काष्ठा, कला, क्षण, मुहुर्त्त, रात्रि, दिन, पक्ष, मास, ऋतु, अयन, अब्द, युग, मन्वन्तर ये सब आपके ही शरीर के अंग हैं, ऐसा मैं भी जानता हूँ।

वक्तव्य—सुश्रुत में—

"तत्र लघ्वक्षरोच्चारण मात्रोऽक्षि निमेषः पंचदशाक्षिनिमेषः काष्ठा, त्रिंशत्काष्ठा कला, विंशति कलोमुहुर्त्तः कला दश भागश्च, त्रिंशन्मुहुर्त्त महोरात्रम्, पंचदशहोरात्रिणी पक्षः, स च द्विविधः शुक्लः कृष्णश्च तौ

कालः—तदिदानीं पाण्डुविज्ञानमन्त्रिभ्यां युद्धाय नियुक्तानां भटानां विक्रमविलासानवलोक्य चक्षुषी कृतार्थयिष्यावः पाण्डुना खलु जीवराजें

मासः । तत्र माघादयो द्वादश मासाः द्विमासिकं ऋतुं कृत्वा षड्ऋतुवो भवन्ति ।

त एतेशीतोष्ण वर्षलक्षणाश्चन्द्रादित्ययोः कलाविभागकरत्वा-दयने द्वे भवतो दक्षिणमुत्तरं च । अथ खल्वयने द्वे युगपत् संवत्सरो भवति, ते तु पंचयुगमितिसंज्ञां लभन्ते । स एष निमेषादि युगपर्यन्ते कालश्चक्रवत् परिवर्तमानकालचक्रमित्युच्यत इत्येके ।

निमेष—लघु अक्षर के उच्चारण काल का नाम मात्रा; काष्ठा–१५ निमेष की, कला–३० काष्ठा की; क्षण–तीस कला का, मुहुर्त्त–बीस कला और तीन काष्ठा का, रात-दिन–तीस मुहुर्त का, पक्ष–पन्द्रह दिन का, मास–दो पक्ष का, ऋतु–दो मास की, अयन–तीन ऋतुओं से, वर्ष-दो अयनों से, युग–सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग, चार युगों की एक चतुर्युगी, जो कि ४३२०००० वर्ष का है । मन्वन्तर—७१ चतुर्युगी का एक मन्वन्तर–जो कि ३०६७२०००० वर्ष का है । (कुछ लोग चतुर्युंगी को एक मन्वन्तर मानते हैं, उनकी दृष्टि से ४३२०००० वर्ष का मन्व-न्तर है) ।

इसी से गीता में पढ़ते हैं—

सहस्र युगपर्यन्तमहर्यद् ब्रह्मणो विदुः ।
रात्रिं युगसहस्रां तां तेऽहोरात्रविदो जनाः ॥

सुश्रुत में पाँच युग जो कहे हैं, उनका कौटिल्य अर्थशास्त्र में भी उल्लेख आता है; यथा—

संवत्सरः परिवत्सरः, इन्द्रवत्सर, इदवत्सर, वत्सरः इत्येवं पंचवत्सराणि–ते पंचयुगमिति संज्ञां लभन्ते । कौटिल्य ने पाँच सम्वत्सर को एक युग कहा है ।

काल—तो इस समय पाण्डु और विज्ञानमन्त्री इन दोनों के द्वारा युद्ध के लिये नियुक्त सैनिकों के पराक्रम प्रकारों को देखकर आँखों को तृप्त

प्रयुक्तो भविष्यतो रोगस्य पुरो भावी बुभुक्षाजनको भस्मकरोगस्तद्गृहीतो राजेति जानामि ।

आवां यथा न विद्युः सर्वेऽपि दिविस्थितावुच्चैः ।
उभयेषामपि युद्धं पश्यावः संलपावश्च ॥ ६ ॥

किं च, ज्ञानशर्मणोपजापितोऽपि राजा भूयो विज्ञानशर्मणा प्रत्यावृत्य पर्यवस्थापितः ।

कर्म—भगवान्, कीदृशो ज्ञानशर्मणोपजापः ।

कालः—वत्स, श्रूयताम् ;

करें । पाण्डु के द्वारा जीवराजा में भेजे हुए भविष्य में होने वाले रोगों के पहिले होने वाली भूख को पैदा करने वाला भस्मक रोग है, उस भस्मक रोग से राजा पीड़ित है, ऐसा मैं जानता हूँ ।

वक्तव्य—भस्मक रोग को ही चरक में अत्यग्नि कहा है, यथा—

नरे क्षीण कफे पित्तं कुपितं मारुतानुगम् ।
स्वोष्मणा पावक स्थाने बलमग्नेः प्रयच्छति ॥
तदा लब्धवलो देहे विरुक्षे सानिलोऽनलः ।
परिभूय पचत्यन्नं तैक्ष्याद्दाशु मुहुर्मुहुः ॥
पक्त्वाऽन्नं स ततो धातूञ्छोणितादीन् पचत्यपि ।
ततो दौर्बल्यमातङ्कान्मृत्युं चोपयेनयेन्नरम् ॥
भुक्तेऽन्ने लभते शान्तिं जीर्णमात्रे प्रताम्यति ।
तृड्श्वास दाह मूर्छाद्या व्याधयोऽत्यग्नि संभवाः॥ चि-अ-१५।

६—सब आदमी जिस प्रकार से हम दोनों को न जा सकें; इस तरह से आकाश में बहुत ऊँचा स्थित होकर जीव और यक्ष्मा इन दोनों के युद्ध को देखेंगे और बातों को भी सुनेंगे ।

और भी—ज्ञानशर्मा के द्वारा भेद करने पर भी राजा फिर से विज्ञानशर्मा के द्वारा लौटाया जा कर पूर्व की भाँति कार्यों में लगा दिया गया है ।

कर्म—भगवन् ! ज्ञानशर्मा का किस प्रकार का भेद है ।

काल—मित्र, सुनिये ।

तत्तत्कार्यविशेषसाधनविधावुक्त्वेतिकर्तव्यतां
जीवस्यास्य विभोः स्वकीयपृतनासंनाहमालोकितुम् ।
निष्क्रान्ते सचिवे कदाचन भजत्येकाकितां राजनि
श्रुत्वा तत्समयं तदन्तिकभुवं स ज्ञानशर्मा ययौ ॥ ७ ॥

अनन्तरमायान्तमवलोक्य दूरादेव ।

अथ सुचिरवियोगात्संदिहानः सखित्वे
किमपि विवशचेता निर्भरैर्हर्षभारैः ।
कथमपि समुदश्रुर्बाष्पसंरुद्धकण्ठो
वचनमिदमवोचन्मत्तहंसस्वरेण ॥ ८ ॥

चेतः शीतलतामुपैति नयने विस्तारिणी कौतुका-
न्निर्भर्यादसुदेत्यमानिव तनौ कोऽप्यन्तरानन्दथुः ।

७—इस प्रभु जीव को उस उस कार्य विशेष की साधन प्रक्रिया को कहकर, अपनी सेना की तैयारी को देखने के लिये विज्ञानशर्मा मन्त्री के नगर से निकल जाने पर जीवराजा के एकान्त में हो जाने पर; ऐसा समय सुनकर (एकान्त पता लगाकर), वह ज्ञानशर्मा जीवराजा के पास गया ।

वक्तव्य—प्रभु के अर्थ में विभु शब्द कालिदास ने भी बरता है, यथा—

वसुतस्य न केवलं विभोर्गुणवत्तापि पर प्रयोजना ॥ रघुवंश ८।३१

इसके पीछे उस ज्ञानशर्मा को आता हुआ देखकर दूर से ही—

८—इसके पीछे जीव राजा अति दीर्घ कालीन वियोग से उस ज्ञानशर्मा की मित्रता में सन्देह करता हुआ कुछ विवश मन से विश्वास के साथ आनन्द के भार से, किसी प्रकार प्रसन्नता के आंसुओं द्वारा रुके हुए गले से मस्त हुए हंस की आवाज से (उच्च स्वर से) यह वचन बोला ।

वक्तव्य—शाकुन्तल में भी यह प्रसंग है—

कामं प्रत्यादिष्टां स्मरामि न परिग्रहं मुनेस्तनयाम् ।
बलवत्तुदूयमानं प्रत्याययतीव मे हृदयम् ॥ ५-३१

९—हे सखे ! आपको देखकर मेरे मन में शीतलता आती है । आँखें

बाहू मां परिरम्भणे त्वरयतस्त्वां वीक्ष्य कस्त्वं सखे
पुण्यैः पूर्वकृतैश्चिरान्मम दृशोः पन्थानमारोहसि ॥ ९

कर्म—ततस्ततः ।

कालः—ततोऽसौ जीवस्य वचनमिदमाकर्ण्य ज्ञानशर्माकथयत्—

सोऽहं जीव विभो चिरन्तनसखस्ते ज्ञानशर्मा तथा
प्राणेष्वन्यतमो मुहुस्तव हिताकांक्षी च सर्वात्मना ।
विज्ञानस्य कुमंत्रितैः परवति त्वय्यसद्व्यवस्थस्थितौ
शान्तस्त्वन्नगराद्विरक्तहृदयः प्रास्थामनास्थावशात् ॥१०॥

संप्रति हि

दुःसामाजिकबोधनैः कुपदवीसंचारमासेदुष-
स्तेनापज्जलधौ निराश्रतया राज्ञो वृथा मज्जतः ।

कुतूहल से फैल रही हैं, अनिर्वचनीय आनन्द मन में पर्याप्त स्थान न मिलने की भांति असीमित रूप से शरीर में फैल रहा है। तुझको देखकर मेरी भुजायें तुम्हारा आलिंगन करने के लिये उतावली हो रही हैं, पूर्व जन्म में किये पुण्यों के कारण मेरी आँखों के सामने बहुत देर से आ रहे हो, तुम कौन हो।

कर्म—इसके पीछे—

काल—इसके पीछे इस जीव के यह वचन सुनकर ज्ञानशर्मा ने कहा—

१०—हे जीवराज। मैं वह तुम्हारा पुराना मित्र ज्ञानशर्मा हूं। सम्पूर्ण रूप से आपका हित चाहने वाले प्राणों में से एक मैं भी हूं। विज्ञान शर्मा की कुत्सित मंत्रणा द्वारा आपके पराधीन हो जाने से सद् असद् का विचार छूट जाने पर शान्त एवं विरक्त हृदय से उदासीन होकर आपके नगर से (पुर से) चला गया था।

अब इस समय—

११—दुर्मन्त्रि के बुरे परामर्श से कुमार्ग में चलने से आपत्ति के समुद्र में बिना सहारे के राजा के डूबते हुए जो मंत्री अप्रिय परन्तु हित·

ब्रूते यो न हितं वचोऽप्रियमपि स्वेष्टं निगृह्याग्रहा-
त्स्वामिभ्यः स तु बु द्धमत्पशुरिति प्राप्नोति मंत्री प्रथाम् ।।११।।
अतः किल ।

विज्ञानशर्महतकस्य वृथा कुमंत्रै-
र्घोरामिमां सुमहतीं गतमापदं त्वाम् ।
आकर्ण्य देव हतवागुपदेशहेतो-
र्ध्यान्तिकं तव गतोऽस्म्यनृणो बुभूषुः ।। १२ ।।

कर्म—ततस्ततः ।

कालः—ततश्च राजा सरलप्रकृतितया 'सखे ज्ञानशर्मन्, चिरेण दृष्टोऽसि । त्वत्तोऽपि मे श्रेयःसंपादकः कोऽन्योऽस्ति । तत्कथय प्रस्तुतोचितं हितम्' इति तमन्वयुंक्त ।

कारी वाणी को आग्रह पूर्वक स्पष्ट रूप से स्वामी के लिये नहीं कहता; वह बुद्धिमान मंत्री, पशु इस पद को प्राप्त करता है ।

वक्तव्य – किरातार्जुनीय में भी कहा है—

(१) क्रियासु युक्तैर्नृप चारु चक्षुषो न वञ्चनीयाः प्रभवोऽनुजीविभिः ।
अतोऽर्हसि क्षन्तुमसाधुसाधु वा हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः ।।

(२) न विव्यथे तस्य मनो न हि प्रियं प्रवक्तुमिच्छन्ति मृषा हितैषिणः

इसके पीछे—१२—हे देव ! दुष्ट विज्ञानशर्मा की निरर्थक दुष्ट मंत्रणाओं के कारण आप इस भयानक बहुत बड़ी आपत्ति में फंस गये हैं, यह सुनकर हितकारी वाणी का उपदेश करने के लिए, तुम्हारे पास आज आया हूं, मैं मित्र भूठ से अनृण होना चाहता हूं ।

वक्तव्य—कहा भी है—

पापान्निवारयति योजयते हिताय गुह्यं निगूहति गुणान् प्रकटी करोति ।
आपद्गतं च न जहाति ददाति काले सन्मित्रलक्षणमिदं प्रवदन्ति सन्तः ।।

कर्म—इसके पीछे ।

काल—इसके पीछे राजा ने अपने सरल स्वभाव से, मित्र ज्ञानशर्मा ! बहुत दिनों में दिखाई दिये हो, तेरे सिवाय कौन दूसरा मेरा कल्याण करने

कर्म—ततस्ततः ।

कालः—ततो ज्ञानशर्मा राजानमुपह्वरे स्वैरमित्थं बोधयामास ।

शश्वन्नश्वरमेव विश्वविदितं पापप्ररोहस्थलं
मेदोमज्जवसास्थिमांसरुधिरत्वग्रोमरूपं वपुः ।
एतस्मिन्मलमूत्रभाण्डकुहरे हेये मनीषावतां
दुःखे न्यायविदो विमोहमिह के तन्वन्ति तन्वन्तिमे ॥ १३ ॥

वाला है । इसलिये उपस्थित कार्य में हितकारी और उचित कहो, ऐसा उससे कहा ।

कर्म—इसके पीछे ।

काल—तब ज्ञान शर्मा ने राजा को एकान्त में बिना शङ्का के इस प्रकार का उपदेश दिया—

१३—यह शरीर सदा नाशवान् है, पाप के अंकुरित होने का स्थान है, मेद, मज्जा, वसा, अस्थि, मांस, रक्त, त्वचा, रोम से बना है, यह बात सम्पूर्ण संसार जानता है । इस मलमूत्र के पात्र, बुद्धिमानों से सदा त्याज्य, दुःख स्वरूप इस अधम वस्तु में, इस लोक के अन्दर कौन विवेकी आदमी मोह करता है ?

वक्तव्य—मेद-शरीर के अन्दर स्थित स्निग्ध धातु, मज्जा-अस्थियों के अन्दर रहने वाला, खोखले भाग को भरने वाला षष्ठधातु, वसा-मांस का स्नेह (शुद्ध मांसस्य यः स्नेहः सा वसा परिकीर्तितः ॥ सुश्रुत)

संकल्प सूर्योदय में भी यह विषय वर्णित है—

वर्ष्मेदं सप्तधातुत्रिविधमलमयं योनियुग्मप्रसूतं
चातुर्विध्योपन्नस्थिरचर विविधाहारसारात्मकं च ।
इत्थंत्वेऽनन्तदोषाकर इति मुनिभिर्घोषिता योषिदाख्या
मीमांस्या मांसरेतो रुधिरकफवसा निर्मिता चर्मभस्त्रा ॥ ८।६३

और भी—

जगत्प्रोतं यस्मिन्विविध इव सूत्रे मणिगणः
समस्तं यद्भासा तदपि च विभाति स्फुटमिदम् ।
अखण्डानन्दं यन्निरवधिकसच्चित्सुखमयं
निराकारं यत्तत्त्वमसि परमं ब्रह्म न परः ॥ १४ ॥
तत्तादृशः सुखघनस्य निरञ्जनस्य
सर्वात्मनापि ननु हेयतरे पुरेऽस्मिन् ।

१४—जिस ब्रह्म में सूत्र की भाँति नाना प्रकार के मणि समूहों की भाँति यह संसार पिरोया हुआ है, जिसके प्रकाश से यह सम्पूर्ण स्पष्ट रूप में दीखता है, जो ब्रह्म केवल आनन्दमय ही है, अनन्त है, सत्य, चित्, सुख रूप है, निराकार है, ऐसा परब्रह्म तुम हो, इससे भिन्न नहीं।

वक्तव्य—गीता और उपनिषद् में भी ब्रह्म को ऐसा ही कहा है, यथा—

मत्तः परतरं नान्यत् किञ्चिदस्ति धनञ्जय ।
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रेमणिगणा इव ॥ गीता
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं बिभाति ॥

सत्-सत्यरूप, चित्-ज्ञानमय, सुख-निर्वृत्ति रूप । "तत्त्वमसि श्वेतकेतोः"—इस श्रुति का यहाँ लक्ष्य है । जिस प्रकार लवण को पानी में घोल कर उसको ऊपर, मध्य और नीचे में से कहीं पर से भी चखें, वह नमकीन ही लगता है, इसी प्रकार से ब्रह्म सब रूप में आनन्दमय है, इसी से उसे अखण्डानन्द-केवलानन्दमय कहा है। यथा प्रबोधचन्द्रोदय में—

यस्माद्विश्वमुदेति यत्र रमते यस्मिन् पुनर्लीयते—
भासायस्य जगद्विभाति सहजानन्दोज्वल यन्महः ।
शान्तं शाश्वतमक्रियं यमपुनर्भावाय भूतेश्वरं
द्वैतध्वान्तमपास्य यान्ति कृतिनः प्रस्तौमि तं पूरुषम् ॥ ६।१०

१५—सानन्दानन्दमय, निर्मल (अपहतपाप्मा-श्रुति) तुझ जीवात्मा के विज्ञानशर्मा के वचनों से विपरीत कार्य में प्रवृत्त होकर; सब प्रकार से

विज्ञानशर्मवचनैर्विपरीतवृत्ते-
र्मन्ये न युक्त इव ते ममताभिमानः ॥ १५ ॥
इत्यादिभिर्बहुविधैरुपपत्तिपूर्वै-
स्तैस्तैर्वचोभिरथ तेन रहः प्रयुक्तैः ।
कोषे बले रिपुवधे च बभूव सद्यो
जीवो विरक्तहृदयो विगताभिमानः ॥ १६ ॥

कर्म—भगवन्, इत्थं ज्ञानशर्मणोपजप्तस्यापि जीवस्य राज्ञः कथमधुना रिपुवधे प्रवृत्तिः ।

कालः—श्रूयताम् । इत्थं ज्ञानशर्मा राज्ञो रहस्युपजापं कुर्वन्सेनासंनि·

गर्हित-निन्दित इस पुर में (शरीर में) तपश्चर्या आदि करने की ममता करना उचित नहीं है ।

वक्तव्य—श्रुति भी है—"आनन्दरूपममृतं यद् विभाति ।" "निरञ्जनः परमं साम्यमुपैति" । प्रबोधचन्द्र में भी श्रीकृष्ण मिश्र ने कहा है—

शान्तेऽनन्त महिम्नि निर्मलेचिदानन्दे तरंगावली
निर्मुक्तेऽमृतसागराम्भसि मनाङ्मग्नो ऽपि नाचामति ।
निस्सारे मृगतृष्णिकार्णवजले श्रान्तोऽपि मूढः पिब
त्याचाम त्यवगाहते ऽभिरमते मज्जत्यथोन्मज्जति ॥

१६—इस प्रकार से नाना प्रकार के युक्ति संगत, एकान्त में कहे हुए वचनों से जीवराजा कोष, बल, शत्रुनाश में जल्दी से ही विरक्त हृदय और अभिमान-ममता रहित हो गया ।

वक्तव्य—मनुष्यों के मल का नाश हो जाने पर ज्ञान का प्रकाश जल्दी होता है, जिस प्रकार कि निर्मल मणि में चन्द्रमा की किरणें जल्दी प्रविष्ट हो जाती हैं—

कर्म—भगवन् ! इस प्रकार ज्ञानशर्मा द्वारा भेद किया हुआ भी जीवराजा अब क्यों रिपुवध में प्रवृत्त हुआ ।

काल—सुनिये ! इस प्रकार से ज्ञानशर्मा एकान्त में राजा के अन्दर

वेशादागतस्य विज्ञानशर्मणो वचनमाकर्ण्य नेतः परमिह स्थातव्यमिति राजनमामंत्र्य जगाम ।

कर्म—ततस्ततः ।

काल:—ततश्च निष्क्रान्ते ज्ञानशर्मणि प्रविश्य विज्ञानशर्मा राजानमालोक्य अये, किमयमपूर्व इव राजा पुरादिषु परित्यक्ताभिमान इव दृश्यते । तद्बहुधा ज्ञानशर्मणोपजापितः स्यात् । भवतु । सर्वमिदं स्वयमेव व्यक्तीभविष्यति । (इति राजसमीपं गतः ।)

कर्म—ततस्ततः ।

काल:— राजा च तमालोक्य सावहित्थस्तमनुसरन्निव सादरमपृच्छत् । 'मंत्रिन्, कथय कीदृशः पुरवृत्तान्तः परवृत्तान्तश्च' इति ।

कर्म—ततस्ततः ।

भेद को करते हुए सेना के पड़ाव से आये हुए विज्ञानशर्मा की आवाज सुनकर अत्र अधिक यहाँ पर नहीं ठहरना चाहिए, ऐसा राजा को कहकर चला गया ।

कर्म—इसके पीछे—

काल—और इसके पीछे ज्ञान शर्मा के चले जाने पर विज्ञानशर्मा जाकर राजा को देखकर 'अये, यह क्या है कि राजा पुर आदि में ममत्व को छोड़े हुये नये रूप में प्रतीत हो रहा है। तो अवश्य ही ज्ञानशर्मा ने नाना प्रकार से भेद डाल दिया होगा । अच्छा, यह सब कुछ अपने आप ही स्पष्ट हो जायेगा ।' ऐसा सोच कर राजा के पास गया ।

कर्म—फिर इसके पीछे ।

काल—और राजा ने उसको देखकर अपने अभिप्राय को छिपा कर उसका ही अनुसरण करते हुए आदर के साथ पूछा—हे मंत्रि ! कहो नगर का वृत्तान्त कैसा है और शत्रुओं का क्या समाचार है ?

कर्म—इसके आगे ।

कालः—

इति राज्ञा समाज्ञप्तो नयज्ञो मंत्रिशेखरः ।
प्रत्युत्तरं तदादत्त प्रज्ञावज्ञातवाक्पतिः ॥ १७ ॥

स्वायत्तं पुरमेव नः समजनि स्वामिन्भवच्छासना-
त्तत्तद्देशनिविष्टयंत्रनिचयव्यापारसंरक्षितम् ।
निर्दग्धा भवतः प्रतापमहसा नूनं पतङ्गा इव
प्रत्यर्थिप्रकरा भवेयुरधुना नामावशेषाः क्षणात् ॥ १८ ॥

कर्म—ततस्ततः ।

कालः—इत्याकर्ण्य राजा ज्ञानशर्मवचोऽनुस्मरन्नुभयोर्मतयोरपि दोलायमानमानस इतिकर्तव्यतामव्यवस्यन्नित्थमाक्षेपमुखेन व्याजहार ।

निसर्गतो ये रिपवो हि रोगा वातादिभिस्तज्जनकैःसमन्तात् ।
अधिष्ठितेऽस्मिन्कुटिलैः प्रवृत्त्यास्वायत्तता हन्त कथं पुरे नः
॥ १९ ॥

काल—१७—इस प्रकार राजा के पूछने पर तब व्यवहार कुशल, अपनी बुद्धि से बृहस्पति को भी तिरस्कृत करने वाले प्रधान मंत्री विज्ञान शर्मा ने प्रत्युत्तर दिया ।

१८—हे स्वामिन् ! आपकी आज्ञा से उन उन स्थानों में लगाये हुए, यंत्र समूहों के प्रयोग से सुरक्षित सम्पूर्ण नगर हमारे अधीन हो गया है । आपकी ओजश्शक्ति से शत्रु समूह पतंगों की भांति क्षण में ही सम्पूर्ण रूप में जल गये, उनका केवल नाम ही शेष रह गया है ।

कर्म—इसके पीछे ।

काल—ऐसा सुनकर राजा ज्ञानशर्मा के वचनों को याद करता हुआ दोनों बुद्धियों के बीच में झूलता हुआ क्या करना चाहिये यह निश्चय न करके व्यंग रूप में इस प्रकार कहने लगा ।

१९—हमारे जो रोग स्वभाव से ही शत्रु हैं, इनको उत्पन्न करने वाले, स्वभाव से कुटिल वातादि पर सम्पूर्णतः आश्रित इस शरीर में अपना अधिकार कैसे ? दुःख है ।

किं च ।

संरक्ष्यते निजवशंवदसेवकेन
यः पाण्डुना विमतखण्डनपण्डितेन ।
सोऽयं प्रतापपरिदग्धपुरो विसर्प-
ञ्जेयः कथं कथय संप्रति राजयक्ष्मा ॥ २० ॥

कर्म—ततस्ततः ।

वक्तव्य—रोग मनुष्य के शत्रु हैं, यथा—

"शारीरमानसागन्तुभिर्व्याधिभिर्विविधवेदनाभिघातोपद्रुतान् सनाथानप्यनाथवद् विचेष्टमानान् विक्रोशतश्च मानवान् अभिसमीक्ष्य मनसि नः पीड़ा भवति ॥" सुश्रुत

"सर्वएव निजाविकारी नान्यत्र वातपित्तकफेभ्यो निर्वर्त्तन्ते यथा हि शकुनिः सर्वं दिवसमपि परिपतन्स्वां छायां नातिवर्त्तते, तथा स्वधातुवैषम्यनिमित्ताः सर्वविकारा वातपित्तकफान्नातिवर्तन्ते ॥

नित्याप्राणभृतां देहे वात पित्तकफास्त्रयः ।
विकृताः प्रकृतिस्था वा तान्वुभुत्सेत् पण्डिताः ॥
नास्ति रोगो विना दोषैः यस्मात्तस्माद् विचक्षणाः ।
अनुक्तमपि दोषाणां लिंगैः व्याधिमुपाचरेत् ।

और भी—

२०—अपने वश में रहने वाले सनिकों से, विरोधियों के मारने में कुशल पाण्डु से जो राजयक्ष्मा सुरक्षित है, वह राजयक्ष्मा अपने तेज से जलाये नगर में फैलता हुआ इस समय किस प्रकार से जीता जा सकता है, यह कहो ?

वक्तव्य—राजयक्ष्मा के तेज से सब धातु क्षीण हो जाते हैं, यथा—

क्षीयन्ते धातवः सर्वे ततः शुष्यति मानवः ।

"ततः सोऽप्युपशोषणैरेतैरुपद्रवैरुपद्रुतः शनैः शनैरुपशुष्यति ।"

चरक० नि० अ० ६।७

कर्म—इसके पीछे ।

कालः—इति राज्ञो वचनमाकर्ण्य विज्ञानशर्मा समञ्जसयुक्तिकं वचोऽब्रवीत् । राजन्, श्रूयताम् ।

वातादिजा यद्यपि सर्वरोगास्तथापि तानेव विनाशयन्ति,
यथारणेर्बहिरुदर्चिरुद्यन्दहत्ययत्नादरणिं तमेव ॥ २१ ॥

अपन्थानं त्विति न्यायादात्मद्रोहिषु तेष्वमी ।
आत्मजेष्वपि न स्नेहमातन्वन्त्यधुना प्रभो ॥ २२ ॥

अतस्तदधिष्ठितमपि पुरं स्वाधीनमेवेति निश्चिनु । किं च ।

स्वायत्ते नगरे तस्मिन्स्वामिपादप्रसादतः ।
जयश्रियं हस्तगतां जानातु भगवान्क्षणात् ॥ २३ ॥

काल—इस प्रकार से राजा के वचनों को सुनकर विज्ञानशर्मा ने योग्य एवं युक्ति पर्वक वचन को कहा । राजन्—सुनिये ।

२१—सब रोग यद्यपि वातादि दोषों से ही उत्पन्न होते हैं, तथापि वे रोग उन्हीं दोषों को नष्ट कर देते हैं, जिस प्रकार कि अरणी से उत्पन्न वह्नि की ज्वाला असुरक्षित रक्खी उसी अरणी को जला देती है ।

२२—हे राजन्! अपन्थानं इस न्याय के अनुसार इन रोगों में दोषों का द्रोह हो जाने पर ये वातादि दोष अब अपने से उत्पन्न पुत्र रूप रोगों में प्रीति नहीं करते ।

वक्तव्य—अपन्थानम् न्याय—

"यान्तिन्याय प्रवृत्तस्य तिर्यञ्चोऽपि सहायताम् ।
अपन्थानं तु गच्छन्तं सोदरोऽपिविमुञ्चति ।। मुरारि १ ।

वातादि से उत्पन्न रोग जब वातादि दोषों से ही द्रोह करके उनको ही नष्ट करना चाहते हैं, तब उल्टे मार्ग में चलने के कारण से दोष, रोगों का साथ छोड़ देते हैं, इसलिये रोग शान्त हो जाते हैं ।

इसलिये वातादि दोषों के अधीन इस पुर को अपने अधीन ही जानो । और भी—

२३—स्वामी के चरणों की कृपा से उस नगर के अपने अधीन हो

कर्म—ततस्ततः ।

काल:—इत्थं मन्त्रिवरवचननिशमनेन किंचिदिव निर्वृतचेतसा राज्ञा मन्त्रिन्, 'नियते कालेन पुरस्य स्वायत्तत्वे किमनेन फलं पश्यसि' इति पृष्टो मन्त्री कथयामास—

जाने पर-रसादि प्राप्त आप जय लक्ष्मी को तत्काल अपने हाथ में आई जानें।

कर्म—इसके पीछे—

काल— इस प्रकार से श्रेष्ठ मन्त्री के वचन को सुनने से कुछ बेचैनी के दूर होने पर राजा मन्त्री को कहने लगा कि हे मन्त्री ! नगर के अपने अधीन होने पर भी काल के नियत होने पर इससे क्या लाभ तुम देखते हो; ऐसा पूछने पर मन्त्री ने कहा—

वक्तव्य—काल के निश्चित होने से-मनुष्य के शरीर का नाश अवश्यम्भावी है, फिर यह सब किस लिये करते हो। इसी का विचार चरक और सुश्रुत में काल मृत्यु और अकाल मृत्यु के विचार में किया है। सुश्रुत में १०१ मृत्युयें बताई हैं, उनमें एक काल मृत्यु है और शेष अकाल मृत्यु हैं। यदि शरीर को ठीक प्रकार से चलाते हुए जो मृत्यु होती है, तो वह काल मृत्यु है, और यदि इसी शरीर को ठीक प्रकार से न रखने से जो मृत्यु होती है, वह अकाल मृत्यु है। सामान्यतः कलियुग में आयु का प्रमाण एक सौ वर्ष है, परन्तु इससे भी अधिक जीने वाले पुरुष हैं। जिस प्रकार कि एक गाड़ी में ठीक भार लाद कर अच्छे रास्ते से ठीक प्रकार चलाते हुए समय पर उसका नाश होता है, वह उसकी काल मृत्यु है, वही गाड़ी अधिक बोझ भर कर ठीक रास्ते पर न चलाने से जैसे शीघ्र टूट जाती है, वह अकाल मृत्यु है, इसी प्रकार से मनुष्य की भी काल मृत्यु और अकाल मृत्यु है। जिस प्रकार कि वृक्षों में पुष्प-फल काल में और असमय में मिलते हैं, उसी प्रकार से मनुष्यों में भी काल मृत्यु और अकाल मृत्यु मिलती है। इस

पुरस्य दार्ढ्ये योगस्य सिद्धिः सर्वार्थसाधिनी ।
अखण्डानन्दसिद्धिश्च फलं तेनैव जायते ॥ २४ ॥

कर्म—ततस्ततः ।

कालः—इत्याकर्ण्य क्षुद्राभिमानेन न भवतीष्टसिद्धिः । प्रत्युत हानिरेव

अकाल मृत्यु से बचने के लिये ही आयुर्वेद का ज्ञान है । इसी से कहा है—

इहाग्निवेश ! भूतानामायुर्युक्तिमपेक्षते ।
दैवे पुरुषकारे च स्थितं ह्यस्य बला बलम् ॥ चरक.वि. अ. ३
एकोत्तरं मृत्युशतमथर्वाणः प्रचक्षते ।
तत्रैकः कालसंयुक्तः शेषा आगन्वः स्मृताः ।
दोषागन्तुजमृत्युभ्यो रसमंत्रविशारदौ ।
रक्षेतां नृपतिं नित्यं यत्तौवैद्यपुरोहितौ ॥ सुश्रुत ३४।६-७
नाकाले म्रियते कश्चित् नास्ति मृत्युरकालजः ।
यो यस्मिन् म्रियतेकाले मृत्युकालः स तस्य हि ॥
नाकाले म्रियते कश्चिद् विद्धःशरशतैरपि ।
काल प्राप्तस्य कौन्तेय ! वज्रायन्ते तृणान्यपि ॥
यथा वर्षमकाले च यथा पुष्पं यथा फलम् ।
यथा स्याद् दीप निर्वाणमकाले मरणं तथा ॥
जलमग्निर्विषं शस्त्रं स्त्रियो राजकुलानि च ।
अकाल मृत्यवो ह्येते तेभ्यो विद्यति पण्डितः ॥
विष्वगवातादिभिर्यद् दीपो वर्त्याढि संयुतः ।
निर्वात्यते क्षणाद्देही तथैवागन्तु मृत्युभिः ॥

२४—पुर के दृढ़ हो जाने पर सम्पूर्ण श्रेय को करने वाली योग की सिद्धि होती है । इसी दृढ़ शरीर से वास्तविक आनन्दरूप ब्रह्म की सिद्धिरूप फल होता है ।

कर्म—इसके पीछे;

काल—यह सुनकर, इस नश्वर शरीर में तुच्छ अभिमान करने से

फलम् । अतः स्वयमेव त्यक्तेष्वेतेषु सिद्धैवात्मनो दृढयोगसिद्धिरखण्डानन्दता च । कुत एतावान्यत्न इति वदति राजनि पुनरपीत्थं समाहितवान्मन्त्री—

प्रारब्धरहितस्यैवं भवेदेव न संशयः ।
प्रारब्धपरतंत्रं त्वां ते मुञ्चन्ति कथं पुनः ॥ २५ ॥

इच्छित सफलता नहीं होती, अपितु हानि ही है । इसलिये इन वातादि के स्वयमेव ही मुझको छोड़कर चले जाने पर दृढ़योग सिद्धि और अखण्डानन्दता (जो तुमने कही है) सिद्ध ही है । फिर किस लिए इतना यत्न है; राजा के ऐसा कहने पर मन्त्री ने निम्न प्रकार से उसका समाधान किया—

वक्तव्य—प्रबोध चन्द्रोदय में श्रीकृष्ण मिश्रजी ने भी कहा है—

भूत्वा कल्पशतायुषोऽम्बुजभुवः सेन्द्राश्च देवासुरा
मन्वाद्या मुनयो महीजलधयो नष्टाः परं कोटयः ।
मोहः कोऽयमहो महानुदयते लोकस्य शोकावहः
सिन्धोः फेनसमे गते वपुषि यत् पंचात्मके पंचताम् ॥

२५—परिक्षीण प्रारब्ध कर्म वाले पुरुष में ही ऐसा होता है, इसमें कोई संशय नहीं । प्रारब्ध के अधीन आपको वे किस प्रकार से छोड़ सकते हैं ।

वक्तव्य—कर्म का क्षय बिना भोगे नहीं होता । यथा—

नहि कर्म महत् किञ्चित् फलं यस्य न विद्यते ।
क्रियाघ्नाः कर्मजा रोगाः प्रशमं यान्ति तत्क्षणात् ॥ चरक.शा.अ.१
कर्मकिंचित्क्वचित्काले विपाके नियतं महत् ।
किंचित्त्वकाल नियतं प्रत्ययैः प्रतिबोध्यते । इति ॥ चरक०वि.अ.३
दैवमात्मकृतं विद्यात् कर्म यत् पौर्वदेहिकम् ।
स्मृतः पुरुषकारस्तु क्रियते यदिहापरम् ॥

(१) प्रारब्धं परिभुज्यैव कर्मशकलं, (२) नाभुक्त्वा क्षीयते कर्म (३) "येषांत्वन्तगतं पापं जनानां पुण्यकर्मणाम् । तेद्वन्द- मोह निर्मुक्ता भजन्ते मां दृढ़व्रताः ॥ गीता ॥७।२८ ।

किं च ।

अथाभिमाने पुरि हन्त देवे क्षोभो भवेत्त्वत्प्रकृतिष्वकस्मात् ।
ततोऽवकाशं प्रतिलभ्य सर्वे प्रत्यर्थिनस्ते प्रबला भवेयुः ॥२६॥

किं च ।

यक्ष्मणि जाग्रति तस्मिन्पाण्डुज्वरसंनिपातपरिवारे ।
देवस्य कथं भविता स्थितिरिह यत्नादपि स्वरूपेण ॥ २७ ॥

इममर्थमप्रतिहतया प्रतिभया स्वयमेय विचारयतु देवः ।

कर्म—ततस्ततः ।

और भी—

२६—हे राजन् पुर के सम्बन्ध में आपकी श्रद्धा हट जाने पर आपकी वातादि प्रकृतियों में अकस्मात् विक्षोभ (कलह-कोलाहल) होगा (आपका नगर के प्रति उदासीन हो जाने से प्रजाजनों में सहसा कोलाहल या विक्षोभ होगा) । तब आपके सब शत्रु समय को देख कर प्रबल हो जायेंगे ।

वक्तव्य—इसी से माघ में कहा है—

"स्वशक्त्युपचये केचित् परस्य व्यसने परे ।
यानमाहुः । माघ २।५५ ।

और भी—

२७—पाण्डु, ज्वर, संनिपात परिवार वाले आपके शत्रु यक्ष्मा के जागरुक रहने पर, आपकी इस शरीर में, आनन्दमय अपने स्वरूप से प्रयत्न पूर्वक स्थिति कैसी होगी ?

वक्तव्य—माघ में कहा भी है—

"विधाय वैरं सामर्षे नरौऽरौ य उदासते ।
प्रक्षिप्योदर्चिषं कक्षे शेरतेतेऽभिमारुतम् ॥ २।४२ ।

इस अर्थ को अव्याकुलित बुद्धि से आप स्वयमेव सोचें ।

कर्म—इसके पीछे,

कालः—तत इत्यादीन्यात्मनीनानि वचनान्याकर्णयन्कुतूहलाकुलितहृदयः समरचत्वरकृतत्वरो मुहुर्मुहुस्तमित्थं प्रशंसन्नवोचत्—

त्वयि दत्तभरस्य मेऽधुना किं बहुनानेन विचारणश्रमेण ।
भवते ननु रोचते यथा वा यतितव्यं हि तथैव निर्विशङ्कम् ॥२८॥

कर्म—ततस्ततः ।

कालः—ततश्च किल यदेवं देवस्य मनसो व्याकुलीभावः स सर्वोऽपि शत्रूपजाप इति मन्तव्यम् । अतो विज्ञापयामि । तिष्ठतु दार्ढ्यं मद्वचसि इति राजानं पर्यवस्थाप्य स्वकार्ये एव व्याप्रियते ।

कर्म—भगवन्, ज्ञानविज्ञानयोरेकरूपयोरिव सतोः कुत इयान्विरोधः ।

काल—इसके पीछे अपनी आत्मा के हितकारी वचनों को सुनकर उत्सुकता से बेचैन हृदय के साथ रणांगण में जाने की जल्दी करते हुए-बार-बार प्रशंसा करते हुए इस प्रकार से बोला—

२८—अब तुम मन्त्री पर सम्पूर्ण राज्यभार को सौंप देने से मुझको इस नाना प्रकार के विचार श्रम से क्या प्रयोजन ? आपको जैसा अच्छा लगे, बिना शंका के वैसा यत्न करना चाहिये ।

कर्म—इसके पीछे—

काल—फिर; आपके मन में इस प्रकार की जो बेचैनी हैं; वह सब शत्रु का किया हुआ भेद ही है, ऐसा समझना चाहिये । इसलिये निवेदन करता हूँ कि आप मेरे बचनों में दृढ़ बने रहें । इस प्रकार से राजा को फिर से पुरानी स्थिति में लाकर अपने राज्य कार्य में सेना की तैय्यारी में लग गया ।

कर्म—भगवन् ! ज्ञान और विज्ञान रूप में एक जैसे होने पर भी क्यों आपस में इतना अधिक विरोध करते हैं ?

वक्तव्य—गीता में भी कहा है कि ज्ञान और विज्ञान एक ही है ।

ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा कूटस्थो विजितेन्द्रियः ।
युक्तइत्युच्यते योगी समलोष्टाश्म काञ्चनः ॥ ६।८।
पाप्मानं प्रजहि ह्येनं ज्ञानविज्ञाननाशनम् ॥ ३।४१

कालः—वत्स,

मोक्षे धीर्ज्ञानमन्यत्र विज्ञानं शिल्पशास्त्रयोः ।
तयोर्विरोध इत्येतत्किमाश्चर्यकरं तव ॥ २९ ॥

श्रुतिश्चभवति—'दूर मेते विपरीते विषूची अविद्या या च विद्येति विज्ञाता' इति ।

कर्म—भवतु नाम तयोर्विरोधः । तदेवान्तरमुपलभ्य क्रियतां च

काल—प्रिय ।

२९—मोक्ष के विषय में जो बुद्धि है, वह ज्ञान है, मोक्ष शास्त्र से अन्यत्र शिल्प शास्त्रादि में जो बुद्धि है, वह विज्ञान है । इन ज्ञान-विज्ञान में इतना ही परस्पर विरोध है । तुम कर्म को इसमें क्यों आश्चर्य है ?

श्रुति भी है--विद्या और अविद्या ये दोनों परस्पर अतिशय भिन्न गति वाली हैं ।

वक्तव्य—कठोपनिषद् की दूसरी वल्ली में विद्या अविद्या का वर्णन है । यथा—

दूरमेते विपरीते विषूची अविद्या या च विद्येति ज्ञाता ।
विद्याभीप्सितं नचिकेतसं मन्ये नत्वं कामावहवोऽलोलुपन्त ॥

इसी विद्या-अविद्या को श्रेय और प्रेय रूप में भी उपनिषद् में कहा है ।

श्रेयश्च प्रेयश्च मनुष्यमेतस्तौ सम्परीत्य विवनक्ति धीरः ।
श्रेयो हिधीरोऽभिप्रेयसो वृणीते, प्रेयो मन्दो योगक्षमाद् वृणीते ॥

इसी को परा और अपरा विद्या से भी कहा है, परा विद्या से ब्रह्म को जाना जाता है, यथा—

"तस्मै सहोवाच । द्वे विद्ये वेदितव्ये इति हस्म यद् ब्रह्मविदो वदन्ति परा चैवापरा च । तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषमिति । अथ परा यया तदक्षरमधिगम्यते । मण्डक । ५

कर्म—इन दोनों में परस्पर विरोध भले ही हो । इसी विरोध को

द्विषद्भिरुपजापः । ज्ञानशर्मणा तु स्वामिहितैषिणा विपक्षानुकूलं पुराभिमानशैथिल्यं कथमुपदिष्टम् ।

कालः—नहि विपक्षानुकूलमिति न च तदीयोपजाप इति वा प्रवृत्तिरेतस्य । किं तु वस्तुतत्त्वमुपदेष्टव्यमित्येव तस्य स्वभावः ।

ज्ञानमद्वैतसन्मात्रं विपक्षस्तत्र को वद ।
स्वरूपस्थितिरेतस्य स्मारिता पारमार्थिकी ॥ ३० ॥
मूढवद्देहतादात्म्यं राजा न प्रतिपद्यताम् ।
बाधितं तद्दग्धपटन्याये नास्त्विति तस्य धीः ॥ ३१ ॥

तदुक्तमभियुक्तैः—

पाकर शत्रुओं द्वारा भेद किया गया है। स्वामीके हितैषी ज्ञानशर्मा ने शत्रुओं के अनुकूल पुर में ममत्व की शिथिलता क्यों समझाई ?

काल—यह शत्रुओं के अनुकूल नहीं है, और न उसका किया यह भेद है, उसकी ऐसी प्रवृत्ति भी नहीं है । परन्तु वास्तविक तत्व का उपदेश करना ही उसका स्वभाव है ।

३०—तत्व ज्ञान अद्वैत ज्ञान के उत्पन्न करने तक ही सीमित है । इसमें विरोध क्या है, यह कहो ? इसकी वास्तविक स्वरूप स्थिति का ही उसने स्मरण कराया । राजा मूर्ख की भांति शरीर में एकत्व ही न समझे [देह और आत्मा में भेद न समझे] । दग्धपट न्याय से प्रतिहत हो, यह उस ज्ञान शर्मा की बुद्धि (विचार) है ।

वक्तव्य—आत्मा शरीर से भिन्न है, "आत्मास्ति देहव्यतिरिक्तमूर्त्तिर्भोक्तासलोकान्तरितः फलानाम् ॥" प्रबोधचन्द्रोदय ।

दग्धपट न्याय—वस्त्र जलकर भी जैसे पूर्वस्थिति में रहने पर भी वस्त्र रूपी कार्य को नहीं कर सकता उसी प्रकार अद्वैत ज्ञान होने पर देह और आत्मा का एकत्व नष्ट हो जाने से इनमें पृथकत्व समझना चाहिये ।

ऐसा जानने वालों ने कहा भी है—

३१—बाधित-मिथ्या ज्ञान को इन्द्रियों से देखते हैं, उस देखने से

'बाधितं दृश्यतामक्षैस्तेन बाधो न शक्यते ।
जीवन्नाखुर्न मार्जारं हन्ति हन्यात्कथं मृतः ॥ ३२ ॥

किं च ।

मायया बहुरूपत्वे सत्यद्वैतं न नश्यति ।
मायिकानां हि रूपाणां द्वितीयत्वमसंभवि ॥ ३३ ॥

कर्म—भगवन्, युज्यत एतत् ।

कालः—एवं च ज्ञानशर्मणोपजप्तोऽपि विज्ञानशर्ममन्त्रिमन्त्रवशात्प्रोत्साहितो राजा यदाचरिष्यति तदालोकयिष्यावहे । (भुवमवलोक्य ।) कथं विदूषकेण सहायमागच्छति राजा तत्रैव गच्छावः ।

मिथ्या ज्ञान का नाश होना सम्भव नहीं । जीता हुआ चूहा बिल्ली को नहीं मार सकता, फिर मरा हुआ चूहा बिल्ली को कैसे मारेगा ?

और भी—

३३—माया शक्ति के बहु रूपी होने से मनुष्य का अद्वैत–अद्वितीय रूपी निश्चय–ज्ञान नष्ट नहीं होता । मायात्मक वस्तु रूपों का एक से अतिरिक्त होना सम्भव नहीं है ।

वक्तव्य—उपनिषद् में पुरुष को ब्रह्म और प्रकृति को माया कहा है । इसी से गीता में कहा है—

नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमाया समावृतः ।
मूढोऽयं नाभिजानाति लोको मामजमव्ययम् ॥

उपनिषद् में तो "एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म; (२) एकोदेवो बहुधा संनिविष्टः (तैत्ति० ३-१४)

गीता में भी—

अजोऽपिसन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपिसन् ।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठस्य संभवाम्यात्ममायया ॥ ४।६ ।

कर्म—भगवन्–ठीक भी है ।

काल—इस प्रकार से ज्ञानशर्मा द्वारा भेद किया हुआ राजा विज्ञानशर्मा मन्त्रि के मन्त्र के बल से प्रोत्स   होकर जो कुछ करेगा उसको

(इति परिक्रामतः ।)

(ततः प्रविशति राजा विदूषकश्च ।)

राजा—

संख्यापेततया रसानपि भृशं षट् सेवमानस्य मे
तेष्वेवातिबुभुक्षुता प्रतिमुहुर्हाहा सखे जायते ।
एवं व्यापृतिरैच्छिकी मम यतो भुञ्जेऽन्नराशीनतः
पीयन्ते च रसालमाक्षिकदधिक्षीराज्यकुल्या मया ॥३४॥

अपि च

हम दोनों देखेंगे। (पृथ्वी को देखकर) क्या विदूषक के साथ यह राजा आ रहा है ! इसलिये वहीं पर चलें (इस प्रकार कहकर घूमते हैं)।

[इसके पीछे राजा और विदूषक आते हैं]।

राजा--३४—हे मित्र ! आश्चर्य है कि षड्रस वाले भोजनों के अति अधिक मात्रा में खाने पर भी मुझे उन भोजनों में प्रतिक्षण बहुत खाने की इच्छा होती है। इस कारण से स्वेच्छा प्रवृत्ति के बलवान होने के कारण मैं अन्न समूह को खाता हूँ; रसाला, मधु, दही, दूध, घी इनकी नदियाँ मुझसे पी जाती हैं।

वक्तव्य—रसाला-श्रीखण्ड;

"वस्त्रे बद्ध्वाथ गलितं दधि द्विप्रस्थमानकम् ।
तस्मिन् घृतं माक्षिकञ्च प्रत्येकञ्चपलंपलम् ॥
निक्षिप्य शर्करा तस्मिन् मानिका द्वितीयं तथा ।
नागकेशरमेलात्वक् पत्रन्त्वामलसंज्ञकम् ॥
अर्धकर्षाङ्क्षयेद्विश्वां मरिचे द्विपले तथा ।
सर्वमेकीकृत् तत्तु भाण्डेकर्पूरवासिते ॥
गृहीत्वा चैव वस्त्रेण मुखम्बद्ध्वाथ गालयेत् ।
हस्तेनालोड्य यत्नेन सा रसालाभिधा स्मृता ॥

और भी—

अन्नान्येव निरन्तरं वितृणुतां सर्वाणि सस्यानि भू-
वारि प्रावृषि कोऽपि वर्षतु दधिक्षीरात्मकं वारिदः ।
सर्वोऽयं लवणाम्बुराशिरपि चेद्दुग्धाम्बुधिर्जायतां
भुञ्जानस्य तथापि हन्त पिबतो न क्षुत्पिपासाशमः ॥ ३५ ॥

तदतिशयेन संपादनीयो मम पानभोजनविधिरिदानीम् ।

विदूषकः—(सहर्षम् ।) अज्जएव्व एदं करणिज्जं । जेण अहं वि एदस्सिं कज्जे तुअ सहाअत्तणे वखो होमि । जम्मेण तु विण्णाणेण भवं मिदभोअणे सव्वदा सिक्खीअदि, तेण विण्णत्तो वि तुमं तस्स वअणं मा करेहि । [अद्यैवैतत्करणीयम् । येनाहमप्येतस्मिन्कार्ये तव सहायत्वे दक्षोभवामि । जाल्मेन तु विज्ञानेन भवान्मितभोजने सर्वदा शिक्ष्यते, तेन विज्ञप्तोऽपि त्वं तस्य वचनं मा कुरु ।]

राजा—साधु सखे, साधु । सम्यगुपदिष्टम् । तथा करिष्ये ।

कालः—वत्स, श्रुतं भवता ।

कर्म—श्रुतमेव । एष पाण्डुना प्रहितामपथ्यताजननीं स्वस्य बहु

३५—भूमि सम्पूर्ण धान्य आदि को तथा सिद्ध अन्नों को (फल आदि तुरन्त खाने योग्य को) सदा बढ़ाये । वर्षा ऋतु में कोई मेघ पानी की दही दूध के रूप से वर्षा करे । यह सम्पूर्ण नमकीन जल वाला समुद्र—मेरे लिये क्षीर समुद्र हो जाये ; तो भी खाते और पीते हुए मेरी भूख और प्यास की शान्ति नहीं होगी ।

इसलिये विशेष रूप से मेरे खान-पान का प्रबन्ध अब करना चाहिये ।

विदूषक—(आनन्द के साथ) यह आज ही करना चाहिये; जिससे मैं भी इस कार्य में आपकी सहायता करके सफल होऊँ । जालिम विज्ञानशर्मा आपको सदा थोड़ा भोजन करने की शिक्षा देता है । उससे कहे हुए भी आप उसकी आज्ञा को न मानें ।

राजा—साधु-मित्र साधु ! ठीक कहा है; वैसा ही करूँगा ।

काल—मित्र ! आपने राजा और विदूषक की बात सुनी ।

कर्म—सुनी है; यह राजा पाण्डु से भेजी हुई अपथ्यता को उत्पन्न

बुभुक्षां न जानाति । विदूषकोऽप्यजानन्नेवं भाषते ।

राजा—कः कोऽत्र भोः ।

विदूषकः—सिक्खिदो हि मए किं तुमं पडिऊलकारिणो अमच्चस्स आआरणत्थं दोआरिअं आमन्तेसि । [शिक्षितोऽपि मया किं त्वं प्रतिकूलकारिणोऽमात्यस्याकारणार्थं दौवारिकमामंत्रयसि ।]

राजा—वयस्य, मा बिभिहि । तव मतमेवानुसरामि ।

विदूषकः—जइ एव्वं थिरप्पडिण्णो होहि एदस्स अविम्हरणत्थं वसणन्ते मए बद्धो गण्ठी । अहं जेव्व तं आणेमि । [यद्येवं स्थिरप्रतिज्ञो भव । एतस्याविस्मरणार्थं वसनान्ते मया बद्धो ग्रन्थिः । अहमेव तमानयामि ।] (इति निष्क्रम्यामात्येन सह प्रविशति ।)

अमात्यः—सति दौवारिके राज्ञा किमर्थं त्वं प्रहितः ।

विदूषकः—एत्थ कज्जे अहं जेव्व दोवारिओ । [अत्र कार्येऽहमेव दौवारिकः ।]

अमात्यः—कीदृशे कार्ये ।

की हुई अपनी बहुत भूख को नहीं जानता । विदूषक भी बिना जाने ही ऐसा कह रहा है ।

राजा—यहाँ पर कौन है ?

विदूषक— मुझसे सिखाये हुए भी आप विरुद्ध कार्य करने वाले मन्त्री को बुलाने के लिये क्यों द्वारपाल को बुलाते हैं ।

राजा—(हँसकर) मित्र; डरो मत; तुम्हारे मत के अनुसार ही करूँगा ।

विदूषक—यदि ऐसा है, तो आप स्थिरप्रतिज्ञा वाले बनो; इसको भूल न जाऊँ इसलिये वस्त्र के किनारे पर गाँठ बाँध लेता हूँ । मैं ही उसको बुलाता हूँ ।

[इस प्रकार निकलकर मन्त्री के साथ आता है]

मन्त्री—द्वारपाल के रहने पर राजा ने तुमको क्यों भेजा है ।

विदूषक—इस कार्य में मुझे ही द्वारपाल समझो ।

मन्त्री—कैसे कार्य में—

कालः—कर्मन्, मन्त्रिणापि न विज्ञाता औपाधिकी राज्ञो बुभुक्षा।

कर्म—बाढम्।

विदूषकः—अमच्च, रण्णो दाणिं बहुभक्खणणामहेए उवट्ठिदे कज्जे। [अमात्य, राज्ञ इदानीं बहुभक्षणनामधेये उपस्थिते कार्ये।]

मन्त्री—कीदृशी बहुभक्षणता।

विदूषकः—किमण्णं बुभुक्खिदो वग्घो विअ सव्वपकिदीणं अम्हाणं जीवणं भक्खिदुकामो राआ। मा खु णं णिवारेहि जं पलअकालकुविदो रुद्दो विअ चिट्ठदि। [किमन्यत्। बुभुक्षितो व्याघ्र इव सर्वप्रकृतिनामस्माकं जीवनं भक्षितुकामो राजा। मा खल्वेनं निवारय यत्प्रलयकालकुपितो रुद्र इव तिष्ठति।]

मन्त्री—(विहस्य। स्वगतम्।) राज्ञः पानभोजनसंपादने स्वस्यापि

काल—हे कर्म! मन्त्री ने भी राजा की छल प्रयोग जन्य बहुत भूख को नहीं पहिचाना।

कर्म—हाँ।

विदूषक—मंत्री! इस समय राजा बहुत खाने के उपस्थित कार्य में है।

मंत्री—कैसा बहुत खाना?

विदूषक—दूसरा क्या? भूखे व्याघ्र की तरह हम सब प्रजाजनों का जीवन राजा खाना चाहता है, इसको मत हटाना, क्योंकि प्रलय काल के महादेव के समान क्रुद्ध हुआ बैठा है।

प्रलय काल के महादेव—

गते परार्धद्वितीये काले लोकक्षयोद्यतः।
कालाग्नि भस्मसात्कर्त्तुं करोति भुवनं मतिम्॥
आत्मन्यात्मनमावेश्य भूत्वा देवो महेश्वरः।
दहेदशेषं ब्रह्माण्डं स रुद्रः प्रलयोत्थितः॥

मंत्री—(हंसकर अपने आपही) राजा के खान पान की तैयारी में

तद्भविष्यतीत्येतस्य हृदयम् । (प्रकाशम्) गच्छाग्रतः । अहमप्यागमिष्यामि । (आकाशे दत्तदृष्टिः ।) किं न्वेतत्स्यात् ।

कार्यान्ववेक्षणविधौ सदसि स्थितेन
येन क्षमाजनि चिरं सहितुं बुभुक्षा ।
भुक्त्वा च यस्य कियदप्यशनं नितान्तं
तृप्तिर्भवेत्स कथमीदृशबुद्धिमेति ॥ ३६ ॥

कालः—अहं खलु प्राणिनामव्यवस्थितामवस्थां करोमि ।

कर्म—बाढम् । अलमिदम् । अन्यदप्यचिन्तनीयं बुद्धिविलसितमिति जानामि । यत्किल ।

दृष्ट्वा दक्षकृतापराधजनितक्रोधोज्झिताङ्गीं सतीं
यः शान्तस्तपसि स्थितःस गिरिशः स्वं प्रत्युपात्तायुधम् ।

अपना भी काम हो जायेगा; यह इसके मन में है । (स्पष्ट रूप में) आगे चलो, मैं भी आऊँगा । (आकाश में दृष्टि लगाकर) यह क्या हो सकता है ?

३६—राजकृत्यों के परीशीलन कार्य में लगे होने पर मंत्रिसभा में बैठे हुए जो जीव राजा भोजन काल के अतिक्रमण से उत्पन्न भूख को देर तक सहने की शक्ति रखते थे, जिस राजा के कुछ भी थोड़ा सा आहार खा लेने पर सम्पूर्ण रूप में तृप्ति हो जाती थी, उसी राजा में ऐसी बुद्धि (बहुत खाने का विचार) कैसे आ गई ।

काल—मैं प्राणियों में अनियमता की दशा को उत्पन्न करता हूँ ।

वक्तव्य—इसी से कहा है—"कालस्य कुटिलागतिः । और भी

यत्रानेकः क्वचिदपिगृहे तत्र तिष्ठत्यथैको
यत्राप्येकस्तदनु बहवस्तत्र नैकोऽपि चान्ते ।
इत्थं नेये रजनीदिवसौ लोलयन् द्वाविवाक्षौ
कालः कल्यो भुवन फलके क्रीड़ति प्राणिशारैः ॥

कर्म—ठीक है, यह तो बहुत थोड़ा है, आपका किया दूसरा कार्य भी अवर्णनीय है, ऐसा मैं जानता हूँ, जिनमें से कुछ कार्य—

३७—जिस भगवान शम्भु ने दक्ष प्रजापति के किये अपराध से

कोपोद्घाटितनैढिलेक्षणपुटप्रोद्दामधूमज्वल-
ज्ज्वालाजालविजृम्भणेन सहसा भस्मीचकार स्मरम् ॥ ३७ ॥

उत्पन्न क्रोध के कारण नष्ट शरीर वाली सती को देखकर, तथा शान्त रूप में तप के अन्दर स्थित होने पर अपने को लक्ष्य बनाकर शस्त्र (कुसुम शरात्मक संमोहनास्त्र को) लिये हुए कामदेव को क्रोध के कारण मस्तक में स्थित आँख के खुलने से निकलती हुई अग्नि की धूम सहित अति उग्र तीव्र ज्वाला से सहसा जला दिया था।

वक्तव्य—दक्ष के यज्ञ में अपने पिता से अपने पति शम्भु का अपमान होने के कारण दक्ष की प्रथम पुत्री सती ने अपना शरीर उसी यज्ञाग्नि में जला दिया था, तथा कामदेव को शिव ने अपनी तीसरी आँख खोलकर भस्म कर दिया था। इस कथा का उल्लेख पार्वती परिणय और कुमार सम्भव में, महाभारत में (शान्ति पर्व २९० अध्याय में) है। ऐसे शान्त तपस्वी में भी तुम काल ने क्रोध उत्पन्न कर दिया है, यह तुम्हारा प्रताप है। यथा—

(१) अथापमानेन पितुः प्रयुक्ता दक्षस्य कन्याभवपूर्व पत्नी।
सती सती योग विसृज्यदेहा तां जन्मने शैलवधूं प्रपेदे ॥
"यदैवपूर्वे जनने शरीरं सा दक्ष रोषात् सुदती ससर्ज।
तदा प्रभृत्येव विमुक्तसङ्गः पतिः पशूनामपरिग्रहोऽभूत् ॥
सकृत्तिवासास्तपसे यतात्मा गंगाप्रवाहोक्षित देवदारु।
प्रस्थं हिमाद्रेर्मृगनाभिगन्धे किञ्चित् क्वणत् किन्नरमध्युवास ॥

(२) प्रतिग्रहीतुं प्रणयि प्रियत्वात् त्रिलोचनस्तामुपचक्रमे च।
सम्मोहनं नाम च पुष्पधन्वा धनुष्यमोघं समधत्त वाणम् ॥
हरस्तु किञ्चित् परिलुप्तधैर्यश्चन्द्रोदयारम्भ इवाम्बुराशिः।
उमामुखे बिम्बफलाधरोष्ठे व्यापारयामास विलोचनानि ॥
अथेन्द्रियक्षोभमयुग्मनेत्रः पुनर्वशित्वाद् बलवन्निगृह्य।
हेतुं स्वचेतो विकृतेर्दिदृक्षुर्दिशामुपान्तेषु ससर्ज दृष्टिम् ॥
स दक्षिणापांगनिविष्टमुष्टिं नतांसमाकुञ्चित सव्यपादम्।

कालः—(विहस्य ।) शृणु तावत् ।

मारुतं यः पिबन्नेव महर्षिस्तपसि स्थितः ।
तमहं कुम्भजन्मानं तोयराशिमपाययम् ॥ ३८ ॥

मंत्री—अतिबुभुक्षया राज्ञः किमप्याशङ्कते मे हृदयम् । यथाहुर्नीतिज्ञाः—'अतिबुभुक्षा राज्ञो राज्यच्युतिसूचिका' इति । (राजानं निरूप्य ।)

शुष्यन्त्या धृतशोषणे रसनया शश्वल्लिहन्सृक्किणी
किंचिन्मग्नविलोचनः श्रमजलक्लिद्यत्कपोलालिकः ।
आरूढभ्रुकुटीभयंकरमुखो निःश्वासदूनाधरो
दृष्ट्या कूणितया विलोकयति मामायान्तमेवान्तिके ॥ ३९ ॥

ददर्श चक्रीकृत चारुचापं प्रहर्तुमभ्युद्यतमात्मयोनिम् ॥
तपः परामर्श विवृद्धमन्योर्भ्रूभंग दुष्प्रेक्ष्य मुखस्य तस्य ।
स्फुरन्नुदर्चिः सहसा तृतीयादक्ष्णः कृशानु किल निष्पपात ॥
क्रोधं प्रभो संहर संहरेति यावद्गिरः खे मरुतां चरन्ति ।
तावत् स वह्निर्भवनेत्रजन्मा भस्मावशेषं मदनं चकार ॥

काल—(हंसकर) और सुनो ।

३८—जो महर्षि अगस्त्य वायु का भक्षण करके ही तप में स्थित थे, उस मुनि को भी समुद्र मैंने पिला दिया था ।

मंत्री—राजा की अतिबुभुक्षा से मेरे हृदय में कुछ अनिष्ट की शंका है (अति स्नेहःपाप शंकी), जैसा कि नीति जानने वालों ने कहा है, "राजा की अति भूख राज्य हानि को सूचित करती है (राजा को देखकर ।)

वक्तव्य—कालिदास ने मेघदूत में इसी तरह का उल्लेख किया है कि प्रिय व्यक्ति में अनिष्ट की आशंका का होना बहुत सरल है—यथा—

अव्यापन्नः कुशलमबले पृच्छति त्वां वियुक्तः ॥
पूर्वाभाष्यं सुलभविपदां प्राणिनामेतदेव ॥ २।४१

३९—प्यास के कारण शुष्क ओठों के प्रान्त भागों को जीभ से निरन्तर चाटते हुए, अन्दर को धंसी आँखों से, थकान के कारण उत्पन्न

(उपसृत्य ।) जयतु जयतु देवः ।

राजा—उपविश्यताम् । (इत्यासनं निर्दिशति ।)

विदूषकः—वअस्स, मए गहिदत्थो किदो अमच्चो । [वयस्स, मया गृहीतार्थः कृतोऽमात्यः ।]

राजा—अमात्य, सज्जीक्रियतामनेनोक्तं सर्वमपि ।

मन्त्री—

किमियमपूर्वा बुद्धिर्देवस्य विजृम्भते ससंरम्भम् ।
ननु कुर्वे यदिदानीमनेन दुर्मेधसा कथितम् ॥ ४० ॥

विदूषकः—दाणिं वअस्स, तुमं जेव्व मह सरणं, जं कुविदो अमच्चो । [इदानीं वयस्य, त्वमेव मम शरणम् , यत्कुपितोऽमात्यः ।]

स्वेद विन्दुओं से गालों और माथे को गीला किये, भृकुटी के चढ़ने से भयंकर मुख; निःश्वास की वायु से अधरोष्ठ के परिवर्त्तित रंग वाला यह राजा अपने समीप में आते हुए मुझको कुञ्चित दृष्टि से आज देख रहा है ।

(पास में जाकर) देव की जय हो ।

राजा—इस आसन पर बैठिये (ऐसा कहकर आसन की ओर इशारा करता है) ।

विदूषक—देव ! मैंने मंत्री को आपकी बात बता दी है ।

राजा—मंत्री इससे कहा हुआ सब कुछ तैय्यार कीजिये ।

मंत्री—४०—हे राजन् ! आपकी आज यह नई बुद्धि वेग के साथ अतिशय रूप में क्यों बढ़ रही है । इस समय विपरीत बुद्धि वाले इस मूढ़ विदूषक से कही हुई वस्तु को क्या मैं करूँ ? (मैं नहीं करूँगा) ।

वक्तव्य—इसी से माघ में कहा है—

अतिरभस कृतानां कर्मणामाविपाकात् परिणतिरवधार्या यत्नतः पण्डितेन ।
अतिरभस कृतानां कर्मणामासमाप्तेः भवति हृदयदाहीशल्यतुल्योविपाकः ॥

विदूषकः—देव ! अब आप ही मेरे रक्षक हैं ? क्योंकि मंत्री कुपित हो गया है ।

राजा—अलं चापलेन ।

मन्त्री—तिष्ठ तूष्णीम् । जानामि ते दौष्ट्यम् ।

(विदूषको लज्जितस्तिष्ठति ।)

मन्त्री—(स्वगतं विचिन्त्य ।)

स्यादेतत्किं नात्र पश्यामि हेतुं राज्ञो न क्षुद्राज्यविभ्रंशचिह्नम् ।
अस्य श्रेयः सिद्धये बद्धकक्षः किं नाहं स्यां किं न मे स्वामिभक्तिः ॥ ४१ ॥

परं त्वेवं निश्चिनोमि द्विषद्राजमन्त्रिणा पाण्डुना कृतमिदं वैकृतमिति । भवतु । अस्य चित्तं बहुभक्षणायत्तमन्यत्र व्याक्षिपामि । स एवास्य प्रतीकारः । (प्रकाशम् । प्रासादस्योपरि चलतु देवः । तत्रैव संपाद्यते महती तृप्तिः ।

राजा--व्यर्थ की चंचलता मत दिखाओ ।

मन्त्री—चुप बैठो, तुम्हारी दुष्टता को मैं जानता हूँ ।

(विदूषक लज्जित होकर बैठ जाता है)

मन्त्री—अपने आपही कुछ सोचकर ।

४१- यह क्या होगा ? इसमें कोई कारण नहीं देखता हूं, राजा की भूख-राज्य के लोप का चिन्ह नहीं है । इस राजा के श्रेय की सफलता के लिये क्या मैं भी दृढ प्रतिज्ञ नहीं हूँ, (अवश्य दृढ़ प्रतिज्ञ हूँ), क्या मेरे में स्वामि-भक्ति नहीं है ! (अवश्य स्वामी भक्ति है) ।

परन्तु इस प्रकार का विचार करता हूँ कि शत्रु पक्ष के राजमंत्री पांडु ने यह विकार (अति बभुक्षा रूप) किया है । अच्छा । बहुत खाने के अधीन हुए इसके चित्त को दूसरे स्थान में लगाता हूँ, वही इसका ठीक प्रतीकार है । (स्पष्ट रुप में) महाराजा प्रासाद के उपर चलें, वहीं पर पूर्णतः तृप्ति होगी (खाने के पीछे जब चाह नहीं रहती उसका नाम तृप्ति है) ।

वक्तव्य—'तृप्ति—तृप्तमिवात्मानं सर्वदा मन्यते' तृप्ति-कफजन्य एक रोग का नाम भी है, परन्तु यहां पर संतुष्टि-भरे पेट से अभिप्राय है ।

राजा—बाढम् ।

(सर्वे प्रासादाधिरोहणं नाटयन्ति ।)

विदूषकः—(सर्वतो विलोक्य ।) भो वअस्स, किं एदं भासिणी-प्पाआरे अपुव्वं किं वि दीसइ । [भो वयस्य, किमेतद्भासिनीप्राकारेऽपूर्वं किमपि दृश्यते ।]

राजा—अमात्य, किमिदम् ।

राजा—हाँ ।

(सब प्रासाद पर चढ़ने का अभिनय करते हैं)

विदूषक—(चारों ओर देखकर) हे मित्र ! भासिनी के परकोटे पर (चार दिवारी पर) यह नई वस्तु क्या दीख रही है ।

वक्तव्य—शरीर की सात त्वचायें हैं, उन्हीं को प्राकार रूप में वर्णित किया है, इनके नाम-अवभासिनी (भासिनी), लोहिता (लोहिनी) श्वेता, ताम्रा, वेदिनी, रोहिणी, मांसधरा, (स्थूला), यथा—

तस्य खल्वेवं प्रवृत्तस्य शुक्रशोणितस्याभिपच्यमानस्य क्षीरस्येव सन्तानिका सप्तत्वचो भवन्ति । तासां प्रथमाऽवभासिनी नाम, या सर्वान् वर्णानवभासयति, पञ्चविधां च छायां प्रकाशयति, सा व्रीहेरष्टा-दश भाग प्रमाणा, सिध्म पद्मकण्टकाधिष्टाना । सुश्रुत शा० ४

राजा—अमात्य ! यह क्या है ?

मंत्री—राजन् ! सिध्मक पद्मक और कण्टक ।

वक्तव्य—सिद्मक-सिद्म, पद्मिनी कण्टक—क्षुद्र रोगों में आये हैं जिसमें (बड़े-बड़े-मुहासे निकलते हैं) ।

श्वेतं ताम्रं तनु च यद्रजो घृष्टं विमुञ्चति ।
अलाबुपुष्पवर्णं तत्सिद्मं प्रायेण चोरसि ॥
कण्टकैराचितं वृत्तं मण्डलं पाण्डु कण्डुरम् ।
पद्मिनीकण्टकप्रख्यैस्तदाख्यं कफवातजम् ॥

मन्त्री—राजन्, सिध्मकपद्मककण्टकाः ।

विदूषकः—(सभयम् ।) वअस्स, एदाणं एदे भटा पहारं कुणन्ति तदो ते वि अम्हाणं उवरि पडिस्सन्ति । ता अस्मदो सिग्घं पलाअणं करेम्ह । [वयस्य, एतेषामेते भटाः प्रहारं कुर्वन्ति तदा तेऽप्यस्माकमुपरि पतिष्यन्ति । तदस्माच्छीघ्रं पलायनं कुर्मः ।]

मन्त्री—विदूषक, मा भैषीः ।

गुञ्जाफलाग्निलेपः प्रतियोद्धा सिध्मपद्मयोः समरे ।
एष हरिद्राहारः कण्टकहृतये मया प्रहितः ॥ ४२ ॥

राजा—सुष्ठु कृतममात्येन ।

विदूषक—(भय से) मित्र! इनके ये सैनिक चोट करते हैं, इससे वे भी हमारे ऊपर गिरेंगे, इसलिये दूसरे स्थान पर शीघ्र भाग जाना चाहिए ।

मन्त्री—विदूषक मत डरो ।

४२—रत्ती (चिनौटी) और चित्रक का लेप युद्ध में सिध्म और पद्मक के विरुद्ध लड़ने वाला है । यह हरिद्राहार कण्टक नामक चर्म कील के परिहार के लिये मैंने भेजा है ।

वक्तव्य—रसराजसुन्दर में कहा भी है । "गुञ्जाफलाग्निचूर्णं च लेपनं श्वेत कुष्ठजित्" । कण्टक से अभिप्राय सम्भवतः चर्मकील या मस्सों से है, यथा—

व्यानस्तु प्रकुपितः श्लेष्माणं परिगृह्य बहिः स्थिराणि कीलवदर्शांसि निवर्तयति । तानि चर्मकीलान्यर्शांसीत्याचक्षते ।। चर्मकील को सुश्रुत में क्षुद्र रोगों में पढ़ा है, समुत्थान निदानाभ्यां चर्मकील प्रकीर्त्तितम् ।। अ० वाग्भट में मस्सों से थोड़े बड़ों को चर्मकील कहा है—

मशकेभ्यस्तून्नततरान् चर्मकीलान् सितासितान् ।।" उत्तर तंत्र अ० ३६

राजा— मंत्री ने बहुत अच्छा किया ।

कालः—गुञ्जाफलाग्निलेपहरिद्राक्षारानौषधिविशेषान्प्रहरतो दृष्ट्वा विदूषको बिभेति ।

कर्म—एवमेतत् ।

विदूषकः—अज्ज, को एसो । [आर्य क एषः ।]

मंत्री—व्यङ्गनामा रोगः ।

अभिमुखमवेक्षमाणः शशरुधिरालिप्ततनुरिमं हन्तुम् ।
तिष्ठति मुखमावृण्वन्मञ्जिष्ठाप्रमुखसाधनो लेपः ॥ ४३ ॥

काल—गुञ्जाफल, चित्रकका लेप, हरिद्राक्षार विशेष औषधियों को चोट करता हुआ देख कर विदूषक डरता है ।

कर्म—ऐसा ही है ।

विदूषक—आर्य यह कौन है ।

मन्त्री—व्यंग नाम का रोग है ।

वक्तव्य—व्यंग का लक्षण--

क्रोधायास प्रकुपितो वायु पित्तेन संयुतः
मुखमावृत्य सहसा मण्डलं विसृजत्यतः ।
नीरुजं तनुकश्यावं मुखे व्यङ्ग तमादिशेत् ॥

४३—सामने की ओर देखने वाले, शशक के रक्त से लिप्त शरीर की भांति इस व्यंग रोग को मारने के लिये, मञ्जिष्ट प्रमुख द्रव्यों से बना लेप मुख को ढाँपे हुए खड़ा है ।

वक्तव्य—व्यंग में खरगोश का रक्तभी लाभ करता है, यथा—व्यंगिनां लेपनं शस्तं रुधिरेण शशस्य च" । चक्रदत्त

मंजिष्ठा प्रमुखलेप (मंजिष्ठाद्य तैल चक्रदत्त से)

मंजिष्ठा मधुकं लाक्षा मातुलुंगं सयष्टिकम् ।
कर्षप्रमाणैरेतैस्तु तैलस्य कुड़वं तथा ॥
आजं पयस्तद् द्विगुणं शनैः मृद्वग्निनापचेत् ।
नीलिका पिड़का व्यंगानभ्यंगादेव नाशयेत् ॥

विदूषकः—किं एदं मल्लाणं आजोहणं विअ जं रत्तप्पवाहो दीसइ ।
[किमेतन्मल्लानामायोधनमिव यद्रक्तप्रवाहो दृश्यते ।]

मन्त्री—

वैधेय शस्त्रधाराक्षुण्णं प्रवहति पुरो न रक्तं यत् ।
तव मूढतां धिगेष प्राकारो लोहिनी नाम ॥ ४४ ॥

कालः—त्वग्रूप एष द्वितीयः ।

कर्म—तथैव ।

विदूषकः—अहो पमादो ! सुवेदाए उपरि सव्वत्थ गअकण्णा वित्थिण्णा । [अहो प्रमादः । श्वेताया उपरि सर्वत्र गजकर्णा विस्तीर्णाः ।]

कालः—कर्मन्, श्वेतनाम्नि तृतीयत्वक्प्रकारे चर्मदलं नाम रोगं पृच्छति विदूषकः ।

मुखंप्रसन्नोचितं वलीपलित वर्जितम् ॥
सप्तरात्रप्रयोगेण भवेत् कनक सन्निभम् ॥

विदूषकः—सैनिकों के युद्ध की तरह यह कैसा रक्त प्रवाह दीख रहा है !

मंत्री—४४—हे मूर्ख ! शस्त्र की धार से कटे हुए अंगों से यह रक्त नहीं बह रहा, तुम्हारी अज्ञानता को धिक्कार है, यह लोहिनी नाम का प्राकार है ।

वक्तव्य—"द्वितीयालोहिता नाम; षोडषभागप्रमाण, तिलकालन्यच्छव्यंगाधिष्ठाना," ॥

काल—त्वचा के रूप में यह दूसरी चार दिवारी है ।

कर्म—ऐसा ही ।

विदूषक—अहो आलस्य श्वेता के ऊपर सर्वत्र गज कर्ण (दद्रु) फैल गई ।

कर्म—हे कर्म ! श्वेता नामक तीसरे प्रकार के चर्मदल नामक रोग

राजा—क एते संवर्तन्ते श्वेतायाम् ।

मन्त्री—

देव योधेन तत्रापि नियुक्तेन मया पुरा ।
आम्रपेश्यभिधानेन लेपेनाकुस्य भूयते ॥ ४५ ॥

विदूषकः वअस्स, पेक्ख एत्थ का वि दुद्धतरङ्गिणी विअ वहइ । ता अञ्जलीहिं गेण्हिअ पिअ । [वयस्य, पश्यात्र कापि दुग्धतरङ्गिणीव वहति । तदञ्जलिभिर्गृहीत्वा पिब ।]

मन्त्री—घिगौदर्य, सर्वत्राभ्यवहारभ्रान्तिः । भ्रान्त,

को विदूषक पूछता है ।

वक्तव्य—तृतीया श्वेता नाम, द्वादश भाग प्रमाणा चर्मदलाजगल्ल मषकाधिष्ठाना ॥

चर्मदल भी कुष्ठ का ही भेद है, यथा—

रक्तं सकण्डू सस्फोटं सरुग्दलति चापि यत् ।
तच्चर्मदलमाख्यातं संस्पर्शासहमुच्यते ॥ चरक

स्युर्येन कण्डूव्यथनौष चोषा स्तलेषु तच्चर्मदलं वदन्ति ॥ सुश्रुत
चर्माख्यं वहलं हस्तिचर्मवत् ॥

राजा—श्वेता नामक त्वचा में सर्वत्र फैले हुए ये कौन हैं ?

मन्त्री—४५—हे राजन् ! श्वेता में भी मुझ से सैनिक रुप में भेजा हुआ आम की पेशी नामक लेप हमारे सामने चर्मकुष्ठ को तिरस्कृत कर रहा है ।

वक्तव्य—"कोशाम्रः कुष्ठ शोथास्रपित्त व्रण कफापहः ॥ सुश्रुत ने अंग राग के अन्दर आम की छाल का उल्लेख किया है, यथा—

"हरीतकी चूर्णमरिष्टपत्रं चूतत्वचोदाडिमपुष्पवृन्तम् ।
पत्रं च दद्यान्मदयन्तिकाया लेपोऽङ्गरागो नरदेव योग्यः ॥ सुश्रुत

विदूषक—मित्र ! देखो, यहाँ पर दूध की नदी की भाँति कुछ वह रहा है, इसको अंजली में लेकर हम पिये ।

मंत्री—धिक् पेटू ! सब स्थानों में खाने का ही मन है, हे मूढ़ ।

नेयं दुग्धतरङ्गिणी प्रवहति श्वित्रोऽयमिन्दुप्रभः
प्राकारं किल तुर्यतामुपगतं ताम्राख्यमाक्रामति ।
संरम्भो भवतो वृथा स्मरयसि त्वं किं तृषं विस्तृतां
पातुं शक्यत एष किं तव ततो मौढ्यं त्वयाविष्कृतम् ॥ ४६ ॥

(इति सभ्रूक्षेपं तर्जयते ।)

राजा—क एनमभिसरति ।

मंत्री—एष मया नियुक्तो महातालेश्वरः

कालः--कर्मन्, औषधविशेषोऽयम् ।

४६--यह दूध की नदी नहीं वह रही, यह चन्द्रमा की चांदनी की भांति चमकने वाला श्वित्र है। यह ताम्रा नामक चौथे प्राकार में पहुंचकर आक्रमण कर रहा है। तुम्हारी बेचैनी, व्यर्थ में आपकी भूली हुई प्यास को क्यों फिर से स्मरण कराती है, क्या यह तुमसे पीना सम्भावित है? इससे तुमने अपनी मूर्खता को स्पष्ट कर दिया।

वक्तव्य—"चतुर्थी ताम्रा नामाष्टभागप्रमाणा, विविध किलास कुष्ठाधिष्ठाना।"

कुष्टैक संभवं श्वित्रं किलासं वारुणं भवेत् ।
निर्दिष्टमपरिस्त्रावि त्रिधातूद्भव संभवम् ॥
वाताद्रुक्षारुणं पित्तात्ताम्रं कमलपत्रवत् ।
सदाहं रोमविध्वंसि कफाच्छ्वेतं घनं गुरु ॥

(इस प्रकार भ्रू विक्षेप से डराता है)

राजा—इसकी ओर कौन दौड़ रहा है।

मंत्री--मैंने इस महातालेश्वर को नियुक्त किया है।

काल—हे कर्म, यह विशेष औषधि है।

वक्तव्य—महातालेश्वर का योग—

तालं ताप्यं शिला सूतं शुद्धं सैन्धवटङ्कणे ।
समांशं चूर्णयेत् खल्वे सूतात् द्विगुण गन्धकम् ॥



विदूषकः—अध वेदिणीलोहिदाणं उवरि के वि उल्लुठअन्तो विअ दीसन्ति। [अथ वेदिनीलोहितयोरुपरि केऽप्युल्लुठन्त इव दृश्यन्ते।]

मन्त्री—सर्वेऽपि कुष्ठा गलगण्डादयश्च नृत्यन्ति।

कर्म—भगवन्, वेदिनीलोहिते पञ्चमीषष्ठ्यौ त्वचौ। तत्र कुष्ठादेरुत्पत्तिः।

कालः—अस्त्येतत्।

गन्धतुल्य मृतं ताम्रं जम्बीरैः दिनपंचकम्।
मर्द्यं षड्भिः पुटै पाच्यं भूधरे सम्पुटोदरे॥
पुटे पुटेत् द्रवैर्मर्द्यं सर्वमेतत्तुषट्पलम्।
द्विपलं मारितं ताम्रं लोह भस्म चतुष्पलम्॥
जम्बीराम्लेन तत्सर्वं दिनमर्द्यं पुटेल्लघु।
त्रिंशदंशविषं चास्य क्षिप्त्वा सर्वं विचूर्णयेत्॥
माहिषाज्येन संमिश्रं निष्कार्धं भक्षयेत् सदा।
मध्वाज्यैर्वाकुची चूर्णं कर्ष मात्रं लिहेदनु॥
सर्वं कुष्ठानि हन्त्याशु महातालेश्वरोरसः॥ शार्ङ्गधर

विदूषक—वेदनी और रोहित इन दो प्राकारों के उपर कौन घूमते हुए दीख रहे हैं?

मंत्री—सब कुष्ठ और गलगण्ड आदि नाच रहे हैं।

कर्म—भगवान्! वेदनी और रोहित ये दोनों पाँचवीं और छठी त्वचायें हैं, इसमें कुष्ठ आदि रोग उत्पन्न होते हैं।

काल—यह ठीक है।

वक्तव्य—"पंचमी वेदनी नाम पंच भाग प्रमाणा कुष्ठविसर्पाधिष्ठाना, षष्ठी रोहिणी नाम, व्रीहिप्रमाणा ग्रन्थि अपच्यर्बुदश्लीपदगलगण्डाधिष्ठानाः।

निबद्धश्वयथुर्यस्य मुष्कवल्लम्बते गले।
महान् वा यदि वा ह्रस्वो गलगण्डतमादिशेत्॥
कर्कन्धुकोलामलकप्रमाणैः कक्षांसमन्या गलवंक्षणेषु।

विदूषकः—एत्थ उण थूलाणाम्मि सत्तमे पाआरे को वि लोह-आरभत्थिआ विअ पूरिज्जमाअसरीरो दीसइ । [अत्र पुनः स्थूलानाम्नि सप्तमे प्राकारे कोऽपि लोहकारभस्त्रिकेव पूर्णमाणशरीरो दृश्यते ।]

मन्त्री—स्थूलायां विद्रधिरेष शत्रुमल्लः ।

विदूषकः—(सभयम । संस्कृतमाश्रित्य ।)

प्राकारसप्तकमपि प्रसभं गृहीत्वा
क्षेत्राणि सप्त च विशोष्य तथैव कोषान् ।

मेदः कफाभ्यां चिरमन्दपाकैः स्याद् गण्डमालाबहुभिश्चगण्डैः ॥
गात्रप्रदेशे क्वचिदेव दोषाः संमूर्च्छिता मांसमसृक प्रदूष्य ।
वृत्तं स्थिरं मन्दरुजं महान्तमनल्प मूलं चिरवृद्ध्यपाकम् ॥
कुर्वन्ति मांसोच्छ्रयमत्यगाधं तदर्बुदंशास्त्रविदोवदन्ति ॥
ते ग्रन्थयः केचिदवाप्तपाकाः स्रवन्ति नश्यन्ति भवन्ति चान्ये ।
कालानुबन्धः चिरमादधाति तां चापचीति प्रवदन्ति तज्ज्ञाः ॥
वातादयो मांसमसृक् प्रदुष्टाः संदूष्य मेदश्चकफानुविद्धम् ।
वृत्तोन्नतं विग्रथितं च शोथं कुर्वन्त्यतो ग्रन्थिरिति प्रदिष्टः ॥

विदूषक—इस सातवें स्थूला नामक प्राकार में लुहार की धौंकनी के समान भरे हुये शरीर वाला कौन है ?

मंत्री—स्थूला में विद्रधि नामक शत्रु सैनिक है—

वक्तव्य—सप्तमी मांसधरा नाम, व्रीहिद्वय प्रमाणा, भगन्दर विद्रधि अर्शोऽधिष्ठाना ।

त्वग्रक्तमांस मेदांसि प्रदूष्यास्थिसमाश्रिताः ।
दोषाः शोफं शनैर्घोरं जनयन्त्युच्छ्रिता भृशम् ॥
महामूलं रुजावन्तं वृत्तं चाप्यथवाऽऽयतम् ।
तमाहुर्विद्रधिं धीराः विज्ञेयः स च षड्विधः । सुश्रुत निदान
तप्तैः शस्त्रैर्यथा मथ्येतोल्मुकैरिव दह्यते ।
विद्रधी व्यम्लतां याता वृश्चिकैरिव दृश्यते ॥ चरक. सूत्र. अ. १७

विदूषक—(भय के साथ में) ।

उल्लुण्ठयिष्यति रिपोर्निवहो भटानां
श्लाघ्यंस्त्वमन्ध इव मूढ इव स्थितोऽसि ॥ ४७ ॥

राजा—धिक् प्रमादम् । हन्त विज्ञानशर्मन्, आक्रान्तमेवाभ्यन्तरम् ।

मंत्री—देव, धीरो भव । यदि नाहं प्राणिष्यं स्तदिदमभविष्यत् ।

विदूषकः—(सकोपोपहासम् । एदं पच्चक्खं खु वट्टइ । तुमं उण अणुमाणेण एदं णत्थित्ति वण्णेसि । तां अच्छरिअं तक्को विण्णाणसम्मन्तिणो । वअस्स, आकण्णेहि मे वअणं । एसो अमच्चो एव्व सव्व दुवारेसु सत्तुहिं आक्कन्तेसु भिक्खुवेसं गेह्णिअ पलाइस्सदि । तुह पुणो दुल्लहो मोक्खो। ता एहि । सुरङ्गादुवारेण तुमं णइस्से । (इत्युत्थाय सर्वतो विलोक्य ।) हद्धी हद्धी । किं करेमि मन्दभग्गो । जलमत्तं विकहिं वि ण दीसइ । सत्ता वि जं परिहाओ रित्ताओ विअ दीसन्ति । (पुनर्दृष्ट्वा ।) वअस्स, किं एदं

४७—शत्रुओं के सैनिक समूह सात प्रकारों (त्वचाओं) को बलपूर्वक अधीन करके, सात परिखाओं को (रस, रक्त, माँस, मेद. अस्थि, मज्जा और शुक्र) सुखाकर कोशों को (अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय) भी शुष्क करके, इस पुर को नष्ट करेंगे, तू अन्धे के समान, मूढ़ की भाँति उदास हुआ बैठा है !

राजा—(देखकर) धिक्कार है, असावधानी की, दुःख है विज्ञान शर्मा ! शत्रुवों ने अन्दर का शरीर आक्रान्त कर लिया है ।

मंत्री—राजन् ! धैर्य धारण करो, यदि मैं विज्ञानशर्मा जीवित न होता, तो यह होता ।

विदूषक--(क्रोध के साथ हंसते हुए) यह तो सामने ही है । तुम तो केवल अनुमान से ही यह कह रहे हो कि यह नहीं है । विज्ञान शर्मा मंत्री का यह तर्क विचित्र है । मित्र ? मेरा कहा सुनो, सब द्वारों के शत्रुवों से घिर जाने पर यह मंत्री ही भिक्षुक के वेश को धारण करके भाग जायेगा । तुम्हारा छुटकारा कठिन है । इसलिये यहाँ आओ । सुरंग के मार्ग से तुझे ले जाऊँगा । हा धिक्कार है, धिक्कार है । मैं अभागा क्या

इन्दजालं बिअ दीसइ जं सत्ता वि परिहाओ दाणिं एव्व सुक्काओ पुणो वि अपरिमिदरसाओ दीसन्ति । कह इमाओ उत्तरिअ गच्छम्ह । [एतत्प्रत्यक्षं खलु वर्तते । त्वं पुनरनुमानेनैतन्नास्तीति वर्णयसि । तदाश्चर्यं तर्को विज्ञानधर्मर्मज्ञिणः । वयस्य, आकर्णय मे वचनम् । एषअमात्य एव सर्वद्वारेषु शत्रुभिराक्रान्तेषु भिक्षुवेषं गृहीत्वा पलायिष्यते । तव पुनर्दुर्लभो मोक्षः । तदेहि । सुरङ्गाद्वारेण त्वां नेष्ये । हा धिक् हा धिक् । किं करोमि मन्दभाग्यः । जलमात्रमपि कुत्रापि न दृश्यते । सप्तापि यत्परिखा रिक्ता इव दृश्यन्ते । वयस्य, किमेतदिन्द्रजालमिव दृश्यते यत्सप्तापि परिखा इदानीमेव शुष्काः पुनरप्यपरिमितरसा दृश्यन्ते । कथमिमा अवतीर्य गच्छामः ।]

राजा—अामात्य, श्रुतमेतस्य वचनम् ।

मंत्री—

एतन्न किंचन ततस्तव मास्तु भीति-
रोजायितं रिपुजनस्य निरीक्ष्य किंचित् ।
यत्खेयपूरणविशोषणयोः समर्थं
तन्मूलमेव हि विजृम्भणमप्यरीणाम् ॥४८॥

करूँ ? कहीं जल भी दिखाई नहीं देता । सातों परिखायें भी सूखी सी दीखती हैं । मित्र ! यह क्या इन्द्रजाल की भाँति दीखता है, कि सातों परिखायें अभी अभी सूख गई हैं; फिर भी असीमित-अगाध रस वाली दीखती हैं, इनको लांघकर कैसे जायँगे ।

राजा--मंत्री ! क्या सुना इसका बचन ?

मंत्री—४८—विदूषक ने जो कहा है, वह सब कुछ नहीं है, इसलिये शत्रु समूह के कुछ थोड़े से किये हुए पराक्रम को देखकर आप मत डरें । परिखाओं के भरने और सूखने का जो सामर्थ्य है वह शत्रुवों के ही कारण से है, क्योंकि उनका यह काम अपने पराक्रम को दिखाने के लिए ही किया गया है ।

अपि च।

रिपवो लब्ध्वा मार्गं रसादिपरिखाः प्रकोप्य तन्मूलम्।
देव भवन्ति यथेष्टं पुरमुल्लुण्ठयितुमपीशानाः॥ ४६॥

कालः—रसरक्तमांसमेदोस्थिमज्जशुक्ररूपाः परिखात्वेन निरूपिताः।

कर्म—एषां वृद्धौ श्लेष्मविद्रधिरक्तविसर्पादयो भवन्ति। कार्श्ये तु रौक्ष्यश्रमशोषादयः।

और भी—

४६—हे प्रभु! शत्रु परिखा रूप रस आदि धातुवों को कुपित करके (परिमाण से अधिक बढ़ाकर) इनके मूल भूत मार्ग को प्राप्त करके पुर को इच्छानुसार लूटने में भी समर्थ होते हैं।

काल—रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, शुक्र रूप सात धातुओं को परिखा रूप से कहा है।

कर्म—इन धातुओं के बढ़ने से श्लेष्म विद्रधि, रक्त विद्रधि विसर्प आदि होते हैं, इनके शुष्क हो जाने पर रूक्षता, श्रम, शोष आदि होते हैं।

वक्तव्य—धातुवों के क्षीण होने के लक्षण—

घट्टते सहते शब्दं नोच्चैर्द्रवति शूल्यते।
हृदयं ताम्यति स्वल्प चेष्टस्यापि रस क्षये॥
परुषास्फुटताम्लाना त्वग्रूक्षा रक्त संक्षये।
मांसक्षये विशेषेण स्फिग् ग्रीवोदर शुष्कता॥
सन्धीनां स्फुटनं ग्लानिरक्ष्णोरायास एवच।
लक्षणं मेदसि क्षीणे तनुत्वं चोदरस्य च।
केश लोमनखश्मश्रु द्विज प्रपतनं श्रमः॥
ज्ञेयमस्थिक्षये रूपं सन्धिशैथिल्यमेव च।
शीर्यन्त इव चास्थिनी दुर्बलानि लघूनि च॥
प्रततं वातरोगीणि क्षीणे मज्जनिदेहिनाम्॥

कालः—युक्तं भवतोक्तम् ।

दौर्बल्यं मुखशोषश्च पाण्डुत्वं सदनं श्रमः ।
क्लैब्य शुक्राऽविसर्गश्च क्षीण शुक्रस्य लक्षणम् ॥ चरक.सू.अ १७

रसक्षये हृत्पीड़ा कम्पः शून्यता तृष्णा च, शोणित क्षये त्वक् पारुष्यमम्लशीतप्रार्थनो सिरा शैथिल्यं च, मांसक्षये स्फिग्गण्डौष्ठोपस्थोरु वक्ष; कक्षापिण्डिकोदर ग्रीवा शुष्कता रौक्ष्यतोदौगात्राणां सदनं धमनी शैथिल्यं च, मेदः क्षये प्लीहाभिवृद्धिः सन्धिशून्यता, रौक्ष्य मेदुर मांस प्रार्थना च, अस्थिक्षये अस्थिशूलं दन्त नख भंगो रौक्ष्यं च, मज्जक्षयेऽल्प शुक्रता पर्वभेदोऽस्थितिस्तोदोऽस्थिशून्यता च, शुक्रक्षये मेढ्रवृषणवेदनाऽशर्क्तिर्मैथुने चिराद्वा प्रसेकः, प्रसेकं चाल्परक्त शुक्रदर्शनम् ॥

सुश्रुत. सूत्र. अ. १५ ।

रसोऽतिवृद्धो हृदयोत्क्लेदं प्रसेकं चापानयति, रक्त रक्तांगाक्षितां सिरापूर्णत्वं च, मांसं स्फिग्गण्डौष्ठोपस्थोरुबाहुजंघासु वृद्धिं गुरुगात्रता च, मेदः स्निग्धातांगतामुदरपार्श्ववृद्धिं कास श्वासादीन् दौगन्ध्यं च, अस्थ्यध्यस्थीन्यधिदन्तांश्च, मज्जासर्वाङ्गनेत्र गौरवं च, शुक्रं शुक्राश्मरी प्रादुर्भावं च ॥ सुश्रुत. सूत्र. अ. १५ ।

संग्रह में—प्रसेकारोचकास्यवैरस्यहल्लासस्रोतोरोध स्वादुद्वेषांगमर्दादिरन्यैश्चश्लेष्म विकारप्रायैः रसः । कुष्ठविसर्पपिटकासृग्दराक्षिमुखमेढ्र गुददाह गुल्म विद्रधिप्लीह व्यंग कामिलाग्निनाशतमः प्रवेश रक्तांग नेत्रता वातरक्तपित्तादिभिरन्यैश्च पित्त विकार प्रायैरसृक् । गलगण्डमालार्बुद ग्रन्थितालुह्विद्वाकण्ठरोग स्फिग् गलौष्ठबाहूदरोरु जंघा गौरव वृद्धिभिः श्लेष्मरक्तविकार प्रायैश्चमांसम् । प्रमेहपूर्वरूपैः स्थौल्योपद्रवैश्चान्यैरपि श्लेष्म रक्त मांस विकारप्रायैर्मेदः । अध्यस्थिभिरधिदन्तैश्चास्थि । नेत्रांग रक्तगौरवैः पर्वसु च स्थूलमूलारुर्भिर्मज्जा । अतिस्त्रीकामताशुक्राश्मरी संगवाभ्यां शुक्राधिक्यम् ॥

काल—आपने ठीक कहा है ।

मंत्री – एवमेते स्वामिकार्यें बद्धपरिकरा यतन्तु नाम । सन्त्येवैषां प्रतिकारशस्त्राण्यस्मदायत्तानि ।

विदूषकः—किं एसा वादाली विश्र मह श्रक्खीहिं श्राउलेदि । [किमेषा वातालीव ममाक्षिणी आकुलयति ।]

राजा—श्रहो प्रचंडोऽयमनिलः । तथाहि ।

ताराश्च्यावयितुं घनान्विकिरितुं कृत्वार्कतूलोपमा-
न्भित्त्वा पातयितुं भुवि क्षितिभृतां तुङ्गानि शृङ्गाणि च ।
सद्यः शोषयितुं समुद्रमवनीकर्तुं तु पांस्वात्मना
द्रागुन्मूल्य च भूरुहान्भ्रमयितु शक्तो भवत्यम्बरे ॥ ५० ॥

मंत्री—इस प्रकार से ये स्वामि के कार्य में पूर्ण तैय्यारी के साथ प्रयत्न करें । इनके प्रतिकार के लिये शस्त्र हमारे श्रधीन हैं ।

विदूषक—यह क्या झंझावात की भाति मेरी श्राँखों को बेचैन कर रहा है ।

राजा—यह प्रचण्ड वायु है, क्योंकि—

५०—श्रति बलवान् यह वायु श्राकाश में नक्षत्रों का स्खलन करने में, बादलों का श्राक वृक्ष की रुई के समान इधर उधर विखेरने में, पर्वतों के ऊँचे शृंगों को तोड़कर भूमि पर गिराने में, समुद्र को तुरन्त सुखाने में, पृथ्वी को धूल रूप करने में, वृक्षों को जल्दी से उखाड़ कर श्राकाश में घुमाने के लिये समर्थ है ।

वक्तव्य—चरक में—

"प्रकुपितस्य खल्वस्य लोकेषु चरतः कर्माणीमानि भवन्ति, तद्यथा—शिखरि शिखरावमथनम्, उन्मथनमनोकहानाम्, उत्पीडनं सागराणाम्, उदवर्त्तनं सरसाम्, प्रतिसरणमापगानाम्, साकम्पनं च भूमेः, आधमनमम्बुदानाम्, नीहार निर्ह्रादपांशुसिकतामत्स्य भेको रुग क्षाररुधिराश्माशनि विसर्गः, व्यापदनं च षण्णां ऋतुनाम्, शस्यानामसङ्घातः, भूतानां चोपसर्गः, भावानांचाभावकारणम्, चतुर्युगान्तकराणां मेघ सूर्यानलानिलानां विसर्गः ॥

मंत्री—अयमेव वृद्धिशोषहेतुः परिखाणाम् । एनमुपजीव्योत्कुप्यन्ति शुष्यन्ति च सर्वतः परिखाः ।

विदूषकः—किं मूढो विअ पेक्खसि । करेहि एदाणं पडिआरं । [किं मूढ इव पश्यसि । कुर्वेतेषां प्रतीकारम् ।]

मंत्री—अदृष्ट्वा किमेवं प्रलपसि ।

विदूषकः—(उष्ट्रग्रीविकया विलोक्य ।) अच्छरिअं । अच्छरिअं । एत्थ सत्ता सत्ति वट्टइ । वड्ढन्तेसु सत्तुसु एदे वीरा रोअउलं पहरन्दि । [आश्चर्यमा- श्चर्यम् । अत्रशस्त्राशस्त्रि वर्तते । वर्धमानेषु शत्रुषु एते वीरा रोगकुलं प्रहरन्ति ।]

मंत्री—तत्र श्लेष्मप्रभृतीन्सपुत्रांश्चन्द्रप्रभा प्रहरति ।

मंत्री—परिखाओं की वृद्धि और सूखाने में यही कारण है । इसी का आश्रय लेकर परिखयें सम्पूर्ण रूप में कुपित होती हैं और सुखती हैं ।

विदूषक—मूढ़ की तरह क्या देख रहे हो; उनका प्रतीकार करो ।

मंत्री—विना देखे ही ऐसा क्यों कर रहे हो ।

विदूषक—(उष्ट्रग्रीवा क भांति-गर्दन को लम्बी करके देखकर) आश्चर्य है, आश्चर्य है, यहाँ तो शस्त्रों से युद्ध हो रहा है । शत्रुवों के बढ़ते हुए कौन से ये वीर रोगकुल को मार रहे हैं ।

मंत्री—वहाँ पर पुत्रों सहित कफ आदि को चन्द्रप्रभा मार रही है ।

वक्तव्य—चन्द्रप्रभा गुटिका और चन्द्रप्रभा वटी नाम से दो पाठ हैं । चन्द्रप्रभा गुटिका का पाठ अर्श अधिकार में और चन्द्रप्रभा वटिका का पाठ प्रमेह अधिकार में है । यहाँ पर स्त्री रूप से चन्द्रप्रभा वर्णित है ।

चन्द्रप्रभा गुटिका (अर्श अधिकार की)—

क्रिमिरिपुदहन व्योषत्रिफलमरदारु चव्यभूनिम्बम् ।
मागधिमूलं मुस्तं सशटीवचाधातुमाक्षिकञ्चैव ॥
लवणक्षार निशायुग कुस्तुम्बुरुगजकणातिविषाः ।
कर्षांशकान्येव समानि कुर्यात् पलाष्टकं चाश्मजातोविदश्मात् ॥

विदूषकः—कथं इत्थिआ वि सूराअदि। [कथं स्त्री अपि शूरायते।]

मंत्री—रक्तपुत्राणां विसर्पप्लीहप्रभृतीनाममृतगुग्गुलु लवणपञ्चकादयः प्रहर्तारः। तथा मांसपुत्राणां शाखोटकतैलप्रभृतयः। मेदसः पुत्राणां कफकेसरिप्रभृतयः।

निष्पन्नशुद्धस्य पुरस्य धीमान् पलद्वयं लोहरजस्तथैव।
सिताचतुष्कं पलमत्रवांशया निकुम्भकुम्भ त्रिसुगन्धि युक्तम्॥
चन्द्रप्रभेयं गुटिका प्रयोज्या अर्शांसि निर्णाशयते षडेव॥

चन्द्रप्रभा वटिका (प्रमेह अधिकार की)—

चन्द्रप्रभा वचा मुस्ता भूनिम्ब सुरदारवः।
हरिद्रातिविषादार्वी पिप्पलीमूल चित्रकम्॥
त्रिवदन्ती पत्रकञ्च त्वगेलावंशलोचना।
प्रत्येकं कर्षमात्राणि कुर्यादेतानि बुद्धिमान्॥
धान्यकं त्रिफलाचव्यं विडङ्गं गजपिप्पली।
स्वर्णमाक्षिकं व्योषं द्वौक्षारौ लवणत्रयम्॥
एतानि टंकमात्राणि संगृहणीयात् पृथक् पृथक्।
द्विकर्षं हतलौहं स्यात् चतुष्कर्षा सिता भवेत्॥
शिलाजत्वष्टकर्षं स्यात् अष्टौकर्षाश्च गुग्गुलोः।
विधिना योजितैरेतैः कर्त्तव्या गुटिका शुभा॥
चन्द्रप्रभेति विख्याता सर्वरोग प्रणाशिनी।

सामान्यतः यही चन्द्रप्रभा वटिका बरती जाती है।

विदूषक—क्या स्त्री भी शूर की तरह काम करती है।

मंत्री—विसर्प प्लीहा आदि रक्त के पुत्रों पर अमृतागुग्गुलु, लवण पंचक आदि प्रहार कर रहे हैं। इसी प्रकार मांस पुत्रों पर शाखोटक तैल आदि प्रहार करते हैं। मेद के पत्रों पर कफकेसरी आदि प्रहार कर रहे हैं।

वक्तव्य—विसर्प का रक्त के साथ बहुत निकटतम सम्बन्ध है यथा—

(१) विविधं सर्पतियतो विसर्पस्तेन स स्मृतः ।
परिसर्पोऽथवा नाम्ना सर्वतः परिसर्पणात् ॥
रक्तंलसीकात्वङ्मासं दूष्यं दोषास्त्रयोमलाः ।
विसर्पाणांसमुत्पत्तौ विज्ञेयाः सप्त धातवः ॥
(२) वक्ष्यन्ते रक्तदोषजाः ।
कुष्टविसर्प पिड़का रक्त पित्तमसृग्दरः ॥
गुदमेढ्रास्य पाकश्च प्लीहा गुल्मोऽथ विद्रधिः ।
नीलिका कामला व्यंग पिप्लवस्तिलकालकाः ॥
दद्रुश्चर्मदलं श्वित्रं पाभा कोठोऽस्त्र मण्डलम् ।
रक्तप्रदोषाज्जायन्ते ॥
(३) यानीहोक्तानि कर्माणि विसर्पाणां निवृत्तये ।
एकतस्तानि सर्वाणि रक्तमोक्षणमेकतः ॥
विसर्पो नह्यसंस्टा रक्तपित्तेन जायते ॥

प्लीहोदर—

विदाह्यभिष्यन्दिरतस्य जन्तोः प्रदुष्टमत्यर्थमसृक्कफश्च ।
प्लीहाभिवृद्धिं सततं करोति प्लीहोदरं तत् प्रवदन्ति तज्ज्ञाः ॥

अमृतागुग्गुलुः—के दो पाठ हैं, यथा—

(१) प्रस्थमेकं गुडूच्याश्च सार्धप्रस्थं च गुग्गुलोः ।
प्रस्थमेकं त्रिफलायाश्च तत्प्रमाणं विनिर्दिशेत् ॥
सर्वमेकत्र संक्षिप्य क्वाथयेल्लवणाऽम्भसि ।
पाद शेषं परिस्राव्य कषायं ग्राहयेद् भिषक् ॥
पुनः पचेत् कषायेतु यावत् सान्द्रत्वमाप्नुयात् ।
दन्ती व्योष विडंगानि गुडूची त्रिफलात्वचः ॥
ततश्चार्धपलं पूतं गृह्णीयात् त्रिवृत्ता सह ।
तच्चूर्णं क्वाथयित्वाथ कोष्णं पात्रे विनिक्षिपेत् ॥
ततश्चाग्निवलं दृष्ट्वा तस्य मात्रां प्रयोजयेत् ॥ सिद्धयोग

(२) अमृतात्रुटिवेल्ल वत्सकं कलिंगपथ्यामलकानिगुग्गुलुः ।

क्रमवृद्धिमिदं मधुप्लुतं पिड़कास्थौल्य भगन्दरं जयेत् ॥ भै. र.

पंचलवण—सौवर्चलं सैन्धवं च विडमौद्भिदमेव च ।
सामुद्रेण समायुक्तं ज्ञेयं लवण पंचकम् ॥
मधुरं सृष्ट विण्मूत्रं स्निग्धसूक्ष्मं वलापहम् ।
वीर्योष्णं दीपनं तीक्ष्णं कफ पित्त विवर्धनम् ॥

विसर्प में अमृतागुगुग्लु और प्लीहा रोग में पंचलवण देते हैं, प्लीहा में अर्क लवण और समुद्राद्य चूर्ण का प्रायः व्यवहार है ।

मांसपुत्र—मांस जन्य रोग, यथा—

..............शृणु मांस प्रदोषजान् ।
अधिमांसावुर्दं कील गलशाल्लूक शुण्डिकाः ॥
पूतिमांसालजीगण्ड गण्डमालोपजिह्विकाः ।
विद्यात्मांसाश्रयान्— ॥

इनमें गण्डमाला रोग के लिये शाखोटक तैल का उपयोग होता है, यथा—

गण्डमालापहं तैल सिद्धं शाखोटक त्वचा ॥ चक्रदत्त
शाखोटकल्कस्वरसेन सिद्धं तैलं हितं नस्य विरेचनेषु ॥ सुश्रुत

मेदस पुत्र-मेद जन्य रोग—यथा—

..............मेदः संश्रयांस्तु प्रचक्ष्महे ।
निन्दितानि प्रमेहाणां पूर्वरूपाणि यानि च ॥

प्रमेह में सबसे प्रथम कफ दूषित होता है, यथा—"त्रयाणामेषां निदानादि विशेषाणां सन्निपाते क्षिप्रंश्लेष्मा प्रकोपमापद्यते प्रागतिभूयस्त्वात् ॥ चरक । इसी लिये कफनाशकयोग का उल्लेख है । कफकेसरी का दूसरा नाम कफ कुञ्जर है, यथा—

रसगन्धौ समांशौच स्नुह्यर्कपयसोःपलम् ।
पलं च पञ्चलवणमेकीकृत्यावचूर्णयेत् ॥
आलोड्य चार्कदुग्धे तत् पूरयेच्छंखमध्यतः ।
पिप्पलीभकणा चूर्णं सजलं तत्र प्रक्षेपयेत् ॥

कालः—कर्मन्, एवं वातपित्तकफेषु वात एको रसरक्तमांसादिधातूनां शोषकः पोषकश्च ।

कर्म—एवमेवैतत् । धातूनां प्रकोपे धातुकार्श्ये च भिषजो वदन्ति 'कटुकादयो मांसवृद्धिहेतवः' इति ।

'कटुकाद्वर्धते मांसं कषायाच्छोणितो रसः ।
लवणाद्वर्धते ह्यस्थि मज्जा त्वम्लात्प्रवर्धते ।
मधुराद्वर्धते शुक्रं तिक्तान्मेदः प्रवर्धते ॥'

विदूषकः—(परिवृत्यावलोकितकेन ।) अज्ज एदं होदु जुज्झदंसणम् । पेक्खदु भवं पुरट्ठिदं अच्चरिअं । [अद्यैतद्भवतु युद्धदर्शनम् । पश्यतु भवान्पुरः स्थितमाश्चर्यम् ।]

प्रज्वालयेद्याममात्रं सूक्ष्म चूर्णं च कारयेत् ।
कफमेदोद्भवं रोगं नाशयेत् कफकुंजरः ॥ योगरत्नाकर

काल—हे कर्म ! इस प्रकार से वात-पित्त कफ में एक वायु ही रस-रक्त मांसादि धातुओं का शोषक और पोषक है ।

वक्तव्य—"दोष धातु मलमूलोहि देहः । तमुच्छ्वासनिश्वासोत्साह प्रस्पन्दनेन्द्रियपाटववेग प्रवर्त्तनादिभिः वायुरनुगृह्णाति । (२) कार्श्य-कार्ष्ण्य गात्रकम्पस्फुरणोष्ण कामिता संज्ञा निद्रानाश बलेन्द्रियोपघातास्थि-शूल मज्जा शोष मलसङ्गाध्मानाटोप मोह दैन्य भय शोक प्रलापादि-भिवृद्धो वायुः पीडयति ॥ (३) प्रसेकारुचिहल्लास संज्ञामोहाल्पवाक्-चेष्ठता प्रहर्षाङ्ग सादाग्नि वैषम्यादिभि क्षीणो वायुः पीडयति ॥ संग्रह

कर्म—यह इसी प्रकार से है । वैद्य लोग मांस आदि धातुओं की वृद्धि में और धातुओं के क्षीण होने में कटु आदि रसों को कारण कहते हैं ।

कटु रस से मांस बढ़ता है, कषाय रस से रक्त और रस बढ़ते हैं, लवण रस से अस्थि, अम्ल से मज्जा बढ़ती है । मधुर रस से शुक्र बढ़ता है, तिक्त रस से मेद बढ़ता है ।

विदूषक—(घूमकर देखते हुए) आज युद्ध का दर्शन होने दो,

राजा—आर्य, किमेतत्पश्यसि ।

मंत्री—(विहस्य) पश्यमेतत् ।

एतत्पङ्गुद्वितयमनिलश्चारयत्याशयेषु
त्रिष्वश्रान्तं जरठगणिका काचिदेषा परस्तात् ।
आजान्वग्रप्रविततकुचा लोभयन्ती प्रसूते
हन्तानर्थाङ्कुरमनुगता सर्वदा देहभाजाम् ॥ ५१ ॥

कालः—सम्यगुक्तं मंत्रिणा यत्पित्तकफौ पंगू इति भिषक्प्रसिद्धिः । आशयेष्विति कफपित्तवातानामाशया विवक्षिताः । अपथ्यतां जरठगणिकेति निरूपयति । अनर्थाङ्कुर इति च तत्प्रभवरोगसमुदायम् ।

आप सामने स्थित आश्चर्य को देखें ।

राजा—मंत्रिन् ! यह क्या देखते हो ।

मंत्री—(हंसकर) देखता हूँ इसे—

५१—वायु इन दोनों पंगुओं को (पित्त और कफ को) तीनों आशयों में (वाताशय, पित्ताशय और कफाशय में) निरन्तर ले जाती है, घुटनो तक लटकते हुए स्तन वाली, दोषों के पीछे चलने वाली, कोई वृद्धा स्त्री (अपथ्यता) सदा प्रलोभन देती हुई मनुष्यों में अनर्थके अंकुरों को (रोग रूप कन्दली को) उत्पन्न करती है ।

वक्तव्य—पित्त और कफ दोनों पंगु हैं, इनको वायु ही चलता है, यथा—

पित्तं पंगु कफः पंगु पंगवो मलधातवः ।
वायुना यत्र नीयन्ते तत्र गच्छन्ति मेघवत् ॥

जरठ गणिका—वृद्धा स्त्री, इसका उल्लेख माघ ने भी किया है, यथा—
अयमतिजरठाः प्रकाम गुर्वीरलघुविलम्बिपयोधरोपरुद्धाः, ४-२९ ।

काल—मंत्री ने ठीक कहा है, पित्त और कफ पंगु हैं, यह वैद्यों में प्रसिद्ध है । आशयों से अभिप्रायः कफाशय, पित्ताशय और वाताशय से है । अपथ्यता को वृद्धा स्त्री कहा है । अनर्थांकुर का अभिप्राय, अपथ्यता से उत्पन्न रोग समूह है ।

कर्म—साधु निरूपितम् ।

राजा—किमिदप्यरिभिरेवं कृतम् ।

मंत्री—कः संदेहः । श्रूयताम् ।

पाण्डुः स्वस्य निशम्य मत्सरमुखात्तूलायितं विक्रमं
सेर्ष्यो मामकवाचिकेन हृदये राज्ञा निषिद्धोऽपि सन् ।
प्रज्ञागर्ववशान्मदीयविजये जाताभिलाषोऽब्रवी-
दित्थं सान्त्वमपथ्यतां निजकुलेस्नेहप्रकर्षान्वितां ॥ ५२ ॥

विदूषकः—कहं सन्तं उत्तवन्तो पांडु अपथ्यदम् । [कथं सान्त्वमुक्त-वान्पाण्डुरपथ्यताम् ।]

मंत्री—एवम् ।

अप्यस्मत्कुलपक्षपातिनि यथा कामोपभोगप्रदे
किं नात्मप्रभवं कुलं गणयसि प्रक्षीयमाणं शनैः ।

कर्म—आपने ठीक बताया ।

राजा—क्या यह भी शत्रुओं ने ही किया है ?

मंत्री—इसमें क्या सन्देह, सुनिये—

५२—पाण्डु अपना पराक्रम को रुई के समान निष्फल हुआ मत्सर के मुख से सुनकर मेरे वचनों के कारण हृदय में ईर्षा उत्पन्न होने से यक्ष्मा राजा द्वारा रोका जाने पर भी, अपनी बुद्धि के गर्व से मेरे को जीतने के लिये उत्पन्न इच्छा वाला अपने कुल में (रोग कुल में) अतिशय स्नेह रखने वाली अपथ्यता को उसके अनुकूल वचनों से इस प्रकार बोला ।

विदूषक—किस प्रकार से पाण्डु ने सुन्दर वचन उस अपथ्यता को कहे ।

मंत्री—इस प्रकार से ।

५३—हमारे कुल में पक्षपात रखने वाली, यथेष्ट सुख के अनुभव को देने वाली; अयि अपथ्यता ! अपने से उत्पन्न कुल (रोग समूह) को धीरे धीरे नष्ट होते हुए क्या तुम नहीं देखती । तेरी यह उदासीनता किस लिये

औदासीन्यमिदं कुतस्तव विनोपेक्षां यदि व्यापृता
त्वं नालं बलवानपि प्रभुररिः स्थातुं कुतोऽस्यानुगाः ॥ ५३ ॥

अतस्त्वां विज्ञापयामि । संप्रति शत्रुपुरं प्रविशन्ती तत्तदभिमतेन तेन तेन रसेनाशयगतानस्मत्कुलकारकान्रसवाहिनीभिर्नाडीभिश्च पोषयन्ती राजानमपि स्ववशं नयन्ती भेदय विज्ञानहतकात् इत्युपदिश्य मन्दाग्निना सह प्रेषितवान् ।

है ! यदि इस उपेक्षा को छोड़कर तू प्रवृत्त होगी तो बलवान (षड् गुणय सम्पन्न) नृपति शत्रु भी तेरे सामने ठहर नहीं सकता, इस शत्रु राजा के पीछे चलने वालों का फिर क्या कहना (वह तो सामने आयेंगे भी नहीं, दूर से ही भाग जायेंगे) ।

इस लिये तुम से विनती करता हूँ कि अब शत्रुपुर में (शरीर में) जाते हुए उस उस व्यक्ति विशेष के इच्छित उस उस रस से आशयों में हमारे कुल को उत्पन्न करने वालों (बढ़ाने वाले, दोष समूह) दोषों को रस वह स्रोतों से पुष्ट करती हुई, राजा को भी अपने वश में करके दुष्ट विज्ञान शर्मा से उसका भेद करा दे. ऐसा कहकर मन्दाग्नि के साथ उसको भेज दिया—

वक्तव्य—स्रोत—"स्रोतांसि दीर्घाण्याकृत्या प्रतानसदृशानि ।"
आहारश्च विहारश्च यःस्याद्दोष गुणैः समः ॥
धातुभिर्विगुणश्चापिस्रोतसां स प्रदूषकः ।
प्राणधातुमलाम्भोऽन्नवाहिन्यतिसेवनात् ।
तानि दुष्टानिरोगाय विशुद्धानिसुखाय च ॥

मन्दाग्नि से विदग्धाजीर्ण आदि का ग्रहण है, मन्दाग्नि से सब रोग होते हैं, यथा—

आमं विदग्धं विष्टब्धं कफपित्तानिलैस्त्रिभिः ।
अजीर्णं केचिदिच्छन्ति चतुर्थं रसशेषतः ॥ सुश्रुत
अग्नि दोषान्मनुष्याणां रोगसंघा पृथग्विधः :

विदूषकः—अच्छरिअं एदाए दूतत्तणं जाए पङ्गुणो वि चालिदा । पेक्ख दाणिं वि किं वि मन्तअन्ती चिट्ठदि । सुणाहि दाव तूंहीओ भविअ । [आश्चर्यमेतस्या दूतत्वं यया पङ्गवोऽपि चालिताः । पश्येदानीमपि किमपि मंत्रयन्ती तिष्ठति । शृणु तावत्तूष्णीको भूत्वा ।

(ततः प्रविशन्त्यपथ्यतया सह मन्दाग्निवातकफपित्ताः)

मन्दाग्निवातकफपित्ताः—अयि रसवति, किमु वक्तव्यमस्मदीया रोगा इति । यतस्त्वत्संततिः खल्वेते । त्वैव वशीकृतेऽस्मिन्राजनि एतत्पुरे सुकरस्तेषां प्रवेशः । वयं तु तत्र निमित्तमात्रम् ।

कालः—कर्मन्, रसवतीत्यपथ्यताया नामान्तरेण भवितव्यम् ।

कर्म—रुचिमतीत्याप्येतस्या नाम ।

विदूषकः— एसा ताडआ विअ भीसणा अणुवट्टदिमम । [एषा ताडकेव भीषणानुवर्ततेमाम् ।]

मल वृद्धया प्रवर्त्तन्ते विशेषेणोदराणि तु ।।
मन्देऽग्नौमलिनैः भुक्तेरपाकाद् दोषसंचयः ।। चरक

विदूषक—इसका यह दूत कार्य विचित्र है, जिसने पंगुओं को भी चला दिया है, देखो अब भी कुछ गुप्त मंत्रणा कर रही है, चुपचाप होकर सुनो ।

(इसके पीछे अपथ्यता के साथ मन्दाग्नि-वात पित्त कफ आते हैं)

मन्दाग्नि वात पित्त कफ—अयि रसवति । रोग भी हमारे ही हैं, इसमें क्या कहना, क्योंकि ये रोग भी तेरी ही सन्तति है । इस पुर में राजा के तेरे वश में हो जाने पर इनका प्रवेश सरल है । हम तो वहाँ पर केवल निमित्त मात्र ही हैं ।

काल—कर्मन्—रसवती यह नाम अपथ्यता का ही होना चाहिये ?

कर्म—रुचिमती नाम भी इसी अपथ्यता का है ।

विदूषक—यह अपथ्यता ताटका राक्षसी के समान मुझे डरा रही है ।

मंत्री—राजा चाहं च रामलक्ष्मणाविव वर्तावहे ।

विदूषकः—अहं वि कोसिओ विअ । [अहमपि कौशिक इव ।]

राजा—(विहस्य ।) तादृक्प्रभावो महर्षिः खलु भवान् ।

विदूषकः—भो वअस्स, एसो अमच्चो एदाए मं बलिं दाऊण अत्ताणं मोचेदुं अहिलसन्तो विअ दीसइ । दाणिं भवं जेव मह सरणम् । [भो वयस्य, एषोऽमात्य एतस्या मां बलिं दत्वा आत्मानं मोचयितुमभिलषन्निव दृश्यते । इदानीं भवानेव मम शरणम् ।]

मंत्री—वैधेय क्षणं तूष्णीं तिष्ठ । शृणुमः शेषमपि वचनमेषाम् ।

वातादयः—अयि रुचिमति,

त्वां वीक्ष्य जागरूकां तस्यां तस्यां रुचौप्रविष्टायाम् ।
स्वत एव भिद्यतेऽसौ विज्ञानादञ्जसा राजा ॥ ५४ ॥

राजा—

मंत्री—राजा और मैं, इसके साथ राम और लक्ष्मण के समान व्यवहार करेंगे ।

विदूकष—मैं भी विश्वामित्र के समान (बरतूंगा) ।

राजा—(हंसकर) जरूर उसी के समान प्रभाव वाले आप महर्षि हैं ।

विदूषक—हे मित्र ! यह मंत्री मुझे वलि रुप में इसे देकर अपने को छुटाने की इच्छा करता है । अब आपही मेरे रक्षक हैं ।

मंत्री—मूर्ख ! थोड़ी देर चुप रह, इनकी शेष रही बात को भी सुन ले ।

वातादि—अयि रुचिमति ।

५४—सावधानी से उन उन मधुर लवणादि रसों में तुझे प्रविष्ट हुआ जानकर यह जीवराजा अपने आपही विज्ञानशर्मा से तुरंत अलग हो जायगा ।

राजा—मन्त्रि ।

आलापादेतेषां कुलालदण्डावघट्टनादिव मे ।
हृदयं भ्रमतीदानीं सहसा चक्रमिव किं न्वेतत् ॥ ५५ ॥

विदूषकः—अण्णं किम् । दिढं क्खु णिग्गिहीदो सि तुमं एदाए अपत्थदापिसाचिआए । अहं उण छव्वेदो बह्मणो होमि त्ति सज्झसेण इमाए विसज्जिदो म्हि । [अन्यत्किम् । दृढं खलु निगृहीतोऽसि त्वमेतया अपथ्यतापिशाचिकया । अहं पुनः षड्वेदा ब्राह्मणो भवामितिसाध्वसेनानया विसर्जितोऽस्मि ।

मंत्री—(विहस्य ।) षड्वेदा इत्यनया संख्ययैव सूचितं वेदविज्ञानम् ।

राजा—किं विस्मृतं त्वया यत्प्रागेव मम मनीषितार्थं विदूषकेण बोधितोऽसि ।

मंत्री—(स्वगतम् ।) अहो त्रुटितसंघटिताया दास्यादुर्विलसितं यदियन्तं कालं विस्मृतापि बुभुक्षा स्मृता सति राज्ञो हृदयमाकुलयति । (प्रकाशम् ।) तदप्यग्रे भविष्यति । देवेन तु एतद्वैरिप्रयुक्तमिति निश्चित्य तद्वशे न भवितव्यमिति बहुशः प्रार्थये ।

५५—इनकी बातों से मेरा मन इस समय कुम्हार के दण्डे से चलाये हुए चक्र की भाँति घूम रहा है, यह है क्या ?

विदूषक—और क्या ? तू इस अपथ्यता पिशाची द्वारा मजबूती से पकड़ा गया है । मैं चूँकि छैः वेदों को जानने वाला ब्राह्मण हूँ इसलिये डर से इसने मुझे छोड़ दिया है ।

मन्त्री—(हँसकर)—छैः वेद, इस संख्या से ही तुमने अपना वेद का ज्ञान बता दिया है ।

राजा—तुम क्या भूल गये हो, मेरी इच्छित वस्तु को, जिसे विदूषक ने पहिले ही तुमको कह दिया था ।

मन्त्री (अपने आप ही)—अहो, टूटकर फिर जुड़ी हुई इस कुलटा-अपथ्यता का दुश्चरित, जो कि इतने समय तक भूली भूख फिर याद आकर राजा के हृदय को बेचैन कर रही है । (स्पष्ट रूप में)—वह भी आगे होगा । यह शत्रु द्वारा किया हुआ है, ऐसा निश्चय करके, आपको

राजा—(सबहुमानम् ।) तथ्यं पथ्यं चाह भवान् । तदहमवहितोऽस्मि ।

विदूषकः—को एसो विज्जुपुञ्जो विअ धगधगाअमाणो सव्वदो वि मह अच्छी आउलेदि । [क एष विद्युत्पुञ्ज इव धगधगायमानः सर्वतोऽपि ममाक्षिणी आकुलयति ।]

मंत्री—परिवारपरिवृतो ज्वरराज एषः । यमेनमुपरुध्य सर्वेऽपि रोगाः प्रहरन्ति । अत एवायं राजपदभागिति भिषग्व्यवहारः ।

कर्म—युक्तमाह मन्त्री । तथाहि ।

> **ज्वरो रोगपतिः पाप्मा मृत्युरोजोशनोऽन्तकः ।**
> **क्रोधो दक्षाध्वरध्वंसी रुद्रोर्ध्वनयनोद्भवः ॥ ५६ ॥**
> **जन्मान्तयों मोहमयः संतापात्मापचारजः ।**
> **एवंविधैर्नामभिः क्रूरो नानायोनिषु वर्तते ॥ ५७ ॥**

उसके वश में नहीं होना चाहिए; यह अनेक बार प्रार्थना करता हूँ ।

राजा—(बहुत आदर के साथ) आपने सत्य और हितकारी वचन कहा है, इसलिये मैं सावधान हूँ ।

विदूषक—यह कौन ! विद्युत समूह की भाँति धम धमाता हुआ सब ओर से मेरी आँखों को बेचैन कर रहा है । (धम धमाना—अग्नि से तपाये-लाल किये हुए लोहखण्ड की भाँति) ।

मन्त्री—परिवार से घिरा यह ज्वर राजा है । जिसका अनुसरण करके सब रोग आक्रमण करते हैं । इसीलिये वैद्य लोग इसको राजा शब्द से सम्बोधित करते हैं ।

कर्म —मन्त्री ने ठीक ही कहा है । क्योंकि—

५६-५७—ज्वर के नाम —ज्वर, रोगपति, पाप्मा, मृत्यु, ओजोऽशन (ओज-बल को नष्ट करने वाला) अन्तक, क्रोध, दक्ष ध्वरध्वंसी, शंकर की तृतीय आँख (मस्तक वाली आँख) से उत्पन्न, जन्म और मृत्यु काल में मोह (मूर्च्छा) रूप से होने वाला, संताप, अपचार से उत्पन्न, तथा भिन्न भिन्न नामों द्वारा यह क्रूर ज्वर नाना योनियों में होता है ।

कालः—कर्मन्, नानायोनिष्विति सुष्ठूक्तं त्वया।

पाकलस्तद्यथेभानामभितापो हयेषु च।
वान्तादानामलर्कः स्यान्मत्हयेष्विन्द्रमदः स्मृतः॥ ५८॥

वक्तव्य—ज्वर महादेव से उत्पन्न हुआ है, इसका कथानक चरक संहिता में दिया है, उसी में से—

स्पृष्ट्वाललाटे चक्षुर्वै दग्ध्वा तानसुरान् प्रभुः।
बाल क्रोधाग्नि सन्तप्तमसृजत् शत्रुनाशनम्॥

....

तमुवाचेश्वरः क्रोधं ज्वरो लोके भविष्यति।
जन्मादौ निधने च त्वपचान्तरेषु च॥
सतापःसारुचिस्तृष्णा सांगमर्दो हृदि व्यथा।
ज्वर प्रभावो, जन्मादौ निधने च महत्तमः॥

ज्वरस्तु खलु महेश्वर कोप प्रभवः, सर्वप्राणिनां प्राणहरो, देहेन्द्रिय-मनस्तापकरः, प्रज्ञाबलवर्ण हर्षोत्साहह्रासकरः श्रमक्लममोहाहारोपरोध संजननो ज्वरयति शरीराणीति ज्वरः, नान्ये व्याधयस्तथा दारुणा बहूपद्रवा दुश्चिकित्स्याश्च यथाऽयमिति। स सर्व रोगाधिपतिर्नाना-तिर्यग् योनिषु च बहुविधैः शब्दैरभिधीयते। सर्वे प्राणभृतश्च सज्वरा एव जायन्ते सज्वरा एव म्रियन्ते च, स महामोहः। तेनाभिभूताः प्राग्दै-हिकं देहिनः कर्मकिंचिदपि न स्मरन्ति, सर्वप्राणिभृतां च ज्वर एवान्ते प्राणानादत्ते॥ चरक

जन्मादौ निधने चैव प्रायो विशति देहिनम्।
अतःसर्वविकाराणामयं राजा प्रकीर्त्तितः॥ सुश्रुत
मिथ्याहार विहाराभ्यां दोषाह्यामाशयाश्रयाः।
बहिर्निरस्य कोष्ठाग्निं ज्वरदास्यु रसानुगाः॥

काल—कर्म ! नाना योनियों में होता है; यह तुमने ठीक कहा है—

५८-५९—यथा, हाथियों में ज्वर पाकल नाम से, घोड़ों में अभिताप,

ओषधीषु तथा ज्योतिश्चुर्णपो धान्यजातिषु ।
जलेषु नीलिका भूमावूषो नृणां ज्वरो मतः ॥ ५६ ॥

राजा—पश्य सखे, पश्य ।

त्रिकूटाद्रेः कूटैस्त्रिभिरिव शिरोभिः प्रतिभयो
दिशः पश्यन्दृग्भिः शशरुधिरसोदर्यरुचिभिः ।
त्रयाणां पादानां तृणतरुसमुच्छ्रायजयिना-
मयं न्यासैर्भूमिं नमयति गदानामधिपतिः ॥ ६० ॥

कालः—कर्मन्, पश्यायं यस्मिन्नुदेष्यति तस्य जनस्य ।

अलर्क (कुत्तों) में वान्ताद, मछलियों में इन्द्रमद, औषधियों में ज्योति, धान्यों में चूर्ण, जलों में नीलिका, भूमि में ऊष, मनुष्यों में ज्वर कहा जाता है ।

वक्तव्य—पाकलः स तु नागानामभितापस्तु वाजिनाम् ॥
गवामीश्वर संज्ञश्च मानवानां ज्वरो मतः ॥
पक्षिणामभिधातस्तु मत्स्येष्विन्द्रमदो मतः ।
पक्षपातः पतंगानां व्याड़ेष्वक्षिक संज्ञितः ॥

राजा—देखो मित्र देखो—

६०—तीन शिखर वाले (त्रिककुद पर्वत) अथवा त्रिकूट नामक पर्वत के तीन कूटों के समान तीन शिरों से भयंकर, खरगोश के रक्त से भी अधिक सुर्ख, आँखों से दिशाओं को देखते हुए, तृण तरु (ताड़ वृक्ष) की ऊँचाई को भी जीतने वाले तीन पैरों को रखकर यह रोगों का राजा ज्वर भूमि को झुका रहा है ।*

काल—हे कर्म ! देख जिस मनुष्य में यह उत्पन्न होगा, उसमें निम्न लक्षण उत्पन्न होंगे)।

---

* त्रिकुटाद्रे—त्रिककुद पर्वत का उल्लेख पाणिनी के सूत्र-त्रिककुद्पर्वते ५।४।१४७ में भी आता है । अथर्ववेद में भी यह नाम है । संभवतः सुलेमान पर्वत का नाम है, जहाँ से आज भी सुरमा आता है । विशेष जानकारी के लिये अनुवादक का 'आयुर्वेद का इतिहास' देखें ।

आलस्यमश्ममयतां पुलकोद्गमं च
गात्रे करोति न रतिं क्वचिदातनोति।
जाताश्रु जृम्भयति दृष्टिविघूर्णमल्प-
प्राणं तमम्बु च पिपासयतेऽनुवेलम्॥ ६१॥

कर्म—एवमेतत्। अपि चानेनाविष्टः—

यद्भक्ष्यमम्लकटुतिक्तमपेक्षते त-
न्न स्वादु खादति च सूक्ष्मयते हितोक्तम्।

६१—आलस्य (समर्थ होने पर भी कार्य में अनुत्साह), शरीर में भारीपन, शरीर में रोमांचता, किसी भी वस्तु में मन-इच्छा नहीं होती, आँखों में आँसू आते हैं, जम्भाई लेता है, नेत्र मिंचे से रहते हैं, बल कम हो जाता है, प्यास के कारण प्रतिक्षण पानी मांगता है।

वक्तव्य—ज्वर के ये पूर्वरूप हैं, यथा—

श्रमोऽरतिर्विवर्णत्वं वैरस्यं नयनप्लवः।
इच्छाद्वेषौ मुहुश्चापि शीतवातातपादिषु॥
जृम्भांगमर्दो गुरुता रोमहर्षोऽरुचिस्तमः।
अप्रहर्षश्च शीतं च भवत्युत्पत्स्यति ज्वरे॥

तस्येमानि पूर्वरूपाणि भवन्ति-तद्यथा-मुखवैरस्यं गुरुगात्रत्वमनन्नाभिलाषश्चक्षुषोराकुलत्वम् अश्र्वागमनं निद्राधिक्यमरतिः जृम्भाविनामो वेपथुःश्रमभ्रमप्रलाप जागरण रोमहर्ष दन्तहर्षाः शब्द शीतवातातपसहत्वासहत्वमरोचकाविपाकौ दौर्बल्यमंगमर्दः सदनमल्पप्राणता दीर्घसूत्रताऽऽलस्यमुचितस्य कर्मणो हानिः प्रतीपता स्वकार्येषु गुरुणांवाक्येष्वभ्यसूया; बालेभ्यः प्रद्वेषः स्वधर्मेष्वचिन्ता, माल्यालेपन भोजन परिक्लेशनं मधुरेभ्यश्च भक्ष्येभ्यः प्रद्वेषोऽम्ललवण कटुक प्रियता चेति ज्वरस्य पूर्वरूपाणि भवन्ति प्राक् सन्तापात्, अपि चैनं सन्तापत्तमनुवध्नन्ति॥ चरक

कर्म—यह इसी प्रकार से है। इस ज्वर से पीड़ित व्यक्ति—

६२—अम्ल-कटु-तिक्त रस वाले भक्ष्य वस्तु की ज्वर रोगी चाह करता

जङ्घां विवेष्टयति हुंकृतिमादधाति
बालेषु न क्वचन दर्शयते रुचिं च ॥ ६२ ॥

विदूषकः—दिट्ठी वि ण पहवदि णं पेक्खिदुं । [दृष्टिरपि न प्रभवत्येनं प्रेक्षितुम् ।]

मंत्री—एष ज्वरोऽपि यक्ष्मराजसखः ।

क्रोधनारोचकाध्मानैस्त्रिभिः पुत्रैरुपैधते ।
भार्यया पञ्चविधया ग्रहण्यभिधया सह ॥ ६३ ॥

विदूषकः—(अन्यतो विलोक्य सभयकम्पम् ।) वअस्स, अहं दाणि ण जीविस्सं, जदो क्खु करगहिदखग्गखेडअसरकम्मुअपरिघसूलगदा पच्चत्थिराअसेणा अभिवड्ढइ साअरो विअ । [वयस्य, अहमिदानीं न जीविष्ये, यतः खलु करगृहीतखड्गखेटकशरकार्मुकपरिघशूलकुन्तगदा प्रत्यर्थिराजसेनाभिवर्धते सागर इव ।]

है, मधुर रस को पसन्द नहीं करता, हितकारी वचन में ईर्षा करता है, जंघाओं को सिकोड़ता है, गले से हुंकार करता है, और बालकों में किसी प्रकार की स्नेह नहीं बताता ।

विदूषक—मैं फूटी आँख से भी इसे देखना नहीं चाहता ।

मंत्री—यह ज्वर भी यक्ष्म राजा का मित्र है ।

६३—क्रोध, अरोचक और आध्मान (पित्त, कफ और वायु इन दोषों) इन तीन पुत्रों के द्वारा, ग्रहणी नामक पाँच प्रकार स्त्रियों के साथ यह ज्वर बढ़ता है ।

वक्तव्य—ज्वर में तीनों दोषों के लक्षण होते हैं, यथा—

जृम्भात्यर्थं समीरणात्, पित्तान्नयनयोर्दाहः,
कफादन्नादरुचिर्भवेत् ॥

ग्रहणी पांच प्रकार की—वात, पित्त, कफजन्य, सन्निपात जन्य, और संग्रह ग्रहणी ।

विदूषक—(दूसरी ओर देखकर-भय से कापते हुए) मित्र ! मैं

मंत्री—(विलोक्य।) एते व्रणराजपुत्रा अष्टविधा भगंदराः। एते च षड्विधा गुदकीला मूलाधिष्ठानमभिव्याप्नुवन्ति। एते च कफसंभवा दश मेहाः पित्तसंभवैः षड्भिर्वातसंभवैश्चतुर्भिश्च सह विंशतिसंख्याका यक्ष्मराजपुत्राः। अपरत्र च त्रयोदश मूत्राघाताः प्रसज्जन्ते। एतान्यपि च वातपित्तकफसंनिपातक्षतशुक्रविड्घाताश्मरीकृच्छ्राणीत्यष्टौ कृच्छ्राणि चतसृभिरश्मरीभिः सह सज्जीभवन्ति। एष गुल्मोऽपि शूलमवलम्ब्य विजृम्भते। तथाष्टविधशूलाश्च निरुन्धन्ति।

अब नहीं बचूंगा, क्योंकि हाथ में तलवार-खंडक वाण-धनुष-शूल-भाला-गदा लेकर शत्रु पक्ष की राजसेना समुद्र की भांति बढ़ रही है।

मन्त्री—(देखकर)—ये व्रण राजा के पुत्र आठ प्रकार के भगन्दर हैं। और ये छः प्रकार के गुदकील (अर्श) मूलाधिष्ठान (गुदा या मूलाधिष्ठान चक्र) को आक्रान्त किये हुए है। ये कफजन्य दस प्रमेह हैं, पित्तजन्य छः प्रमेह हैं; वातजन्य चार प्रमेह हैं, ये सब बीस प्रमेह यक्ष्म राजा के पुत्र हैं। यहीं पर तेरह मूत्राघात तैय्यार हैं। ये भी वात-पित्त-कफ-संनिपात-क्षतशुक्र-विड्विघात-अश्मरी से उत्पन्न आठ मूत्रकृच्छ्रों के साथ और चार अश्मरीयों के साथ तैय्यार हैं। यह गुल्म भी शूल का सहारा लेकर बढ़ रहा है। इसी तरह आठ प्रकार के शूल (पुर को) रोके हुए हैं।

वक्तव्य—आठ प्रकार का भगन्दर—सुश्रुत में भगन्दर पांच प्रकार के कहे हैं, यथा—शतपोनक उष्ट्रग्रीव, परिस्रावि, शम्बूकावर्त्त और उन्मार्गि ! शार्ङ्गधर में ऋजु, परिक्षेपी, अर्शोज, ये तीन प्रकार के और कहे हैं, इस प्रकार से आठ हैं। अर्श छः प्रकार के हैं—वात जन्य, पित्त जन्य, कफ जन्य, सन्निपात जन्य, रक्त जन्य और सहज। प्रमेह बीस हैं, यथा—कफजन्य दस—उदक मेह, ईक्षुवालिका रसमेह, सान्द्र मेह, सान्द्रप्रसाद मेह, शुक्ल मेह, शुक्र मेह, शीत मेह, सिकतामेह, शनैर्मेह, और आलाल मेह। पित्त जन्य मेह—क्षार मेह, काल मेह, नील मेह, लोहित मेह, मांजिष्ट मेह, हारिद्र मेह। वातजन्य मेह—वसा मेह,

कालः—कर्मन्, समर्थोऽयं मन्त्री रोगविशेषपरिज्ञाने।

मन्त्री—तथान्येऽप्यत्र बहवः प्रभवन्ति। ये किल।

मन्दाग्न्युत्थोदरस्थामयसुहृद उदावर्तभेदा अशीति-वातोत्थाः पित्तजा विंशतियुगगणिता विंशतिः श्लेष्मजाश्च।

मज्जा मेह, हस्ति मेह, और मधुमेह। मूत्राघात तेरह हैं–वातकुण्डलिका, अष्ठीका, वातवस्ति, मूत्रातीत, मूत्रजठर, मूत्रोत्संग, मूत्रक्षय, मूत्रग्रन्थि, मूत्र शुक्र, उष्ण वात, मूत्रसाद, विड्विघात, वस्ति कुण्डलिका। मूत्र-कृच्छ्र-मूत्र का कठिनाई से आना।

पृथङ् मलाः स्वैः कुपितैः निदानैः सर्वेऽथवा कोपमुपेत्य वस्तौ।
मूत्रस्य मार्गं परिपीडयन्ति यदा तदा मूत्रयतीह कृच्छ्रात्॥

अश्मरी चार प्रकार की--वात जन्य, पित्त जन्य, कफ जन्य, शुक्र-जन्य। गुल्म-ग्रन्थि रूप में--

हृन्नाभ्योरन्तरे ग्रन्थि संचारी यदि वाचलः।
वृत्तश्चयोपचयवान् स गुल्म इति कीर्त्तितः॥

गुल्म आठ प्रकार का है – वात जन्य, पित्त जन्य, कफ-जन्य सन्नि-पात जन्य, शोणित जन्य और द्विदोष जन्य। शूल आठ प्रकार का है—वात जन्य, पित्त जन्य, कफ जन्य, सन्निपात जन्य और द्विदोष जन्य तीन प्रकार का है। शूल का लक्षण।

शंकुस्फोटनवत् तस्य यस्मात्तीव्रातिवेदना।
शूलासक्तस्य भवति तस्माच्छूलमिहोच्यते॥

काल—कर्म ! यह मन्त्री रोग विशेषों के जानने में समर्थ है।

वक्तव्य—इसी से कहा है—

सर्व रोग विशेषज्ञः सर्वं कार्यं विशेषवित्।
सर्वभेषजतत्त्वज्ञो राजः प्राणपतिर्भवेत्॥ चरक

मन्त्री—इसी प्रकार दूसरे भी यहाँ बहुत से रोग उत्पन्न हो रहे हैं। जो कि—

६४—मन्दाग्नि-अग्निमान्द्य—इससे उत्पन्न उदररोग, उदररोग के

चत्वारोऽक्ष्णोर्वसन्तो नवतिरपि चतुःसप्ततिर्वक्त्रनिष्ठा
मूर्धस्थाः पङ्क्तिसंख्याः क्रिमिगदनिवहोऽप्यस्ति नैके
च शोफाः ॥ ६४ ॥

मित्र उदावर्त्त भेद (तेरह), वातजन्य अस्सी रोग; पित्तजन्य चालीस, कफजन्य वीस, आंख के रोग चौरानबे, मुख के रोग चौहत्तर, शिर के दस रोग, क्रिमी रोगों का समूह (वीस प्रकार के कृमि), शोफ भी अनेक प्रकार के हैं ।

वक्तव्य—सब रोग मन्दाग्नि से होते हैं, विशेषकर उदर रोग, इसी से कहा है—

अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः ।
प्राणपानसमायुक्तो पचाम्यन्नं चतुर्विधम् ॥ गीता
जाठरो भगवानग्निः ईश्वरोऽन्नस्य पाचकः
सौक्ष्माद् रसानाददानो विवेक्तुं नैव शक्यते ॥सु.सू.अ.३५।२७
शान्तेऽग्नौ म्रियते युक्ते चिरंजीवत्यनामयः ।
रोगीस्याद् विकृते मूलमग्निस्तस्मान्निरुच्यते ॥
यदन्नं देह धात्वोजोबलवर्णादि पोषकम् ।
तत्राग्निःहेतुराहारान्नह्यपक्वाद् रसादयः ॥ चरक
रोगाःसर्वेऽपिऽमन्देग्नौ सुतरामुदराणि च ॥

"यस्स्वल्पमप्युप्रयुक्तमुदरशिरोगौरव कास श्वास प्रसेकच्छर्दिगात्र-सादनानि कृत्वा महता कालेन पचति, स मन्दः ॥

उदावर्त्त--तेरह प्रकार का है, यथा--

वातविण्मूत्रजृम्भाश्रुक्षवोद्गारवमीन्द्रियैः ।
क्षुत्तृष्णोच्छ्वास निद्राणांध्रत्योदावर्त्तसंभवः ॥

अशीतिर्वातविकाराश्चत्वारिंशत् पित्तविकाराः विंशति श्लेष्म विकाराः ॥ चरक

नेत्र रोगों की संख्या मुख रोगों की संख्या, शिरो रोग, शार्ङ्गधर के अनुसार गिने हैं, यथा—

तत्रा नेत्रभवाःख्याताश्चतुर्नवतिरामयाः ।
तेषुवर्त्मगदाः प्रोक्ताश्चतुर्विंशति संज्ञकाः ॥
नेत्रसन्धिसमुद्भुता नेत्र रोगाः प्रकीर्त्तिताः ।
तथा शुक्लगता रोगा बुधैः प्रोक्तास्त्रयोदश ॥
तथा कृष्ण समुद्भूताः पंच रोगाः प्रकीर्त्तिताः ।
काचंतुषड्विधंज्ञेयं तिमिराणि षडेव च ॥
लिंगनाशः सप्तधास्यादष्टधा दृष्टिजा रुजः ।
चत्वारश्चाधिमन्थाः स्युरभिष्यन्दश्चतुष्टयम् ॥
सर्वाक्षिरोगाश्चाष्टौ स्युः" ॥

मुख रोग—चतुस्सप्तति संख्याका मुखरोगास्तथोदिताः ।
तेष्वोष्ठरोगा गणिता एकादशमिता बुधैः ॥
दन्तरोगा दशाख्याता दन्तमूले त्रयोदश ।
तथा जिह्वामयाः षट् स्युरष्टौ तालुगतारुजः ॥
गलरोगास्तथाख्याता अष्टादशमिता बुधैः ।
मुखान्तस्संभवा रोगाः अष्टौख्यातामहर्षिभिः ॥

शिरो रोग—तथा दश शिरोरोगावातेनार्धवभेदकः ।
शिरस्तापश्च वातेन पित्त पीड़ा तृतीयका ॥
चतुर्थी कफजा पीड़ा रक्तजा सन्निपातजा ।
सूर्यावर्त्ताच्छिरःकम्पात् क्रिमिभिःशंखकेन च ॥

कृमि रोग—यूका, पिपीलिका, केशादा, लोमादा, लोमद्वीपा, सौरसा, औडुम्बरा, जन्तु मातर, उदरादा, अंत्रादा, हृदय-चरा, चुरव, दर्भपुष्पा, सौगन्धिका, महागुदा, ककेरुका, मकेरुका, लेलिहा, सशूलका और सौसुरादा ।

वाह्य और आभ्यन्तर भेद से दो प्रकार के कृमि हैं। आभ्यन्तर कृमि-रक्तजन्य, श्लेष्म जन्य और पुरीष जन्य भेद से तीन प्रकार के हैं।

शोफ—त्वङ्मांसस्थायी दोष संघातःशरीरैकदेशोत्थितःशोफ इत्युच्यते ॥
वाह्याःसिराप्राप्य यदा कफास्टक् पित्तानिसंदूषयतीह वायुः ।

तथा भूतोन्मादा विंशतिः।

आमवात इति कोऽपि चतुर्धा जायते निखिलरोगनिवासः।
वातपित्तकफशोणितमद्यक्ष्वेडजाः षडुदयन्ति च मूर्च्छा ॥६५॥

अपि च।

तैर्बद्धमार्गः स तदा विसर्पन् उत्सेधलिंगं श्वयथुं करोति ॥ चरक

यह शोफ निज और आगन्तुज भेद से दो प्रकार का है, निज शोफ-वातज-पित्तज-कफज, रक्तजन्य और सन्निपात जन्य भेद से पांच प्रकार का है। माधवकार ने शोफ नौ प्रकार का कहा है, यथा--

रक्तपित्तकफान्वायुर्दुष्टो दुष्टान् बहिःशिराः।
नीत्वारुद्धगतिस्तैर्हि कुर्यात्त्वङ्मांस संश्रयम् ॥
उत्सेधं संहतं शोफं तमाहुर्निचयादतः।
सर्वं हेतुविशेषैस्तु रूप भेदान्नवात्मकम् ॥

इसी प्रकार भूतोन्माद बीस हैं।

वक्तव्य—भूतोन्माद का लक्षण--

अमर्त्यवाग्विक्रम वीर्यं चेष्टा ज्ञानादि विज्ञान बलादिभिर्यः।
उन्माद कालोऽनियतश्च यस्य भूतोत्थमुन्मादमुदाहरेत्तम् ॥

शार्ङ्गधर में भूतोन्माद--बीस प्रकार के कहे हैं, यथा-'भूतोन्मादः विंशतिःस्युः।"

६५—सम्पूर्ण रोगों का आश्रय आमवात नाम का कोई रोग चार प्रकार से उत्पन्न होता है। वात-पित्त-कफ-रक्त-मद्य और विष से उत्पन्न होने वाली मूर्छा छह प्रकार की है।

वक्तव्य—वायु के कारण दूषित आम को आमवात कहते हैं। आम-अपक्करस, यथा—

आहारस्य रसः शेषो यो न पक्वोऽग्नि लाघवात्।
स मूलं सर्व रोगाणामाम इत्यभिधीयते ॥
आममन्नरसं केचित् केचित्तु मल संचयम्।
प्रथमो दोष दुष्टिं च केचिदामं प्रचक्षते ॥

अपि च ।

एते षोढा भिन्ना उन्मादाश्च प्रवर्तन्ते ।
अभिवर्तन्ते चामी हृद्रोगाः पञ्चधा भिन्नाः ॥ ६६ ॥

उष्मणोऽल्पबलत्वेन धातुमाद्यमपाचितम् ।
दुष्टमामाशयगतं रसमामं प्रचक्षते ॥
विरुद्धाहार चेष्टाभ्यां मन्दाग्नेर्निश्चलस्य च ।
स्निग्धं भुक्तवतो ह्यन्नं व्यायामं कुर्वतस्तथा ॥
वायुना प्रेरितो ह्यामःश्लेष्मस्थानं प्रधावति ।
तेनात्यर्थं विदग्धेऽसौ धमनीःप्रतिपद्यते ॥
वात पित्त कफैर्भूयो दूषितः सोऽन्नजो रसः ।
स्रोतांष्यभिष्यन्दयति नानावर्णोऽतिपिच्छलः ॥
जनयत्याशु दौर्बल्यं गौरवं हृदयस्य च ।
व्याधीनामाश्रयो ह्येष आम संज्ञोऽतिदारुणः ॥
युगपत् कुपितावन्तस्त्रिक सन्धि प्रवेशकौ ।
स्तब्धंवा कुरुतो गात्रं आमवातः स उच्यते ॥ मा. नि.
चत्वारश्चामवाताः स्युर्वातपित्तकफैस्त्रिधा ।
चतुर्थः सन्निपातेन ।......................शार्ङ्गधर

मूर्च्छा--करणायतनेषूग्रा बाह्येष्वाभ्यन्तरेषु च ।
निविशन्ते यदा दोषास्तदा मूर्छन्ति मानवाः ।
संज्ञावाहिषु नाडीषु पिहितास्वनिलादिभिः ।
तमोऽभ्युपैति सहसा सुख दुःख व्यपोहकृत् ॥
सुख दुःख व्यपोहश्च नरःपतति काष्ठवत् ।
मोहो मूर्च्छेति तामाहुः षड्विधा सा प्रकीर्त्तिता ॥
वातादिभिः शोणितेन मद्येन च विषेण च ॥
षट्स्वप्येतासु पित्तं तु प्रभुत्वेनाव तिष्टते ॥

और भी—

६६—छ प्रकार से पृथक् हुए ये उन्माद प्रवृत हो रहे हैं । पाँच

विदूषकः—पमादो पमादो । एदेहिं अरिहिं दुआराइं पाआरा परिखा कोसाआराइं अ सव्वं अ अक्कत्तम् । किं बहुजम्पिदेण । हृदयं गुम्नं करिअ अधिट्ठिदं । तिलप्पमाणो वि देसो अणक्कन्तो ण दीसइ। (अञ्जलिं बद्ध्वा !) वअस्स, अदो वरं णत्थि मे जीविदासा । मम बह्मणीए विहुराए अन्थकूवणेत्ताए तुमं एव्व सुमरिअ जोअक्खेमं वहेदि । पढमं एव्व एसो अणत्थो सुणाविदो सि मए। तुमं उण दुम्मन्तिणो से वअणवीसम्भेण इमं दुरवत्थं पावदो सि । पेक्ख दाव तस्स फलं एदं संवुत्तं । [प्रमादः प्रमादः । एतैररिभिर्द्वाराणि प्राकाराः परिखाः कोषागाराणि च सर्वमप्याक्रान्तम् । किं बहुजल्पितेन । हृदयं गुल्मं कृत्वा अधिष्ठितम् । तिलप्रमाणोऽपि देशोऽनाक्रान्तो न दृश्यते । वयस्य, अतः·

प्रकार से विभक्त ये हृदय रोग पुर को चारों ओर से घेरे हुए हैं ।

वक्तव्य—उन्माद का लक्षण—

"मदयन्त्युद्गता दोषा यस्मादुन्मार्गमागताः ।
मानसोऽयमतो व्याधिरुन्माद इति कीर्त्तितः ।। चरक

उन्मादं पुनर्मनो बुद्धि संज्ञा ज्ञान स्मृति भक्ति शील चेष्टाचार विभ्रमं विद्यात् ।। चरक

उन्मादाःषट् समाख्यातास्त्रिभिर्दोषैश्चयश्च ते ।
सन्निपाताद् विषाज्ज्ञेयः षष्ठो दुःखेन चेतसः ।। शार्ङ्गधर

चरक में उन्माद पांच प्रकार के माने हैं—

"वात पित्त कफसन्निपातागन्तुनिमित्तः ।

हृद् रोग पांच हैं—"वात पित्त कफ सन्निपात कृमिजा" ।

दूषयित्वा रसं दोषा विगुणा हृदयं गताः ।
हृदि बाधां प्रकुर्वन्ति हृद्रोगं तं प्रचक्षते ।।

विदूषक—आलस्य, आलस्य । इन शत्रुओं से द्वार-चारदिवारी, परिखायें-कोशागार सब ही आक्रान्त हो गये हैं । अधिक कहने से क्या लाभ । हृदय को गुल्म ने अपने अधिकार में लिया है । तिल भर स्थान भी आक्रमण से नहीं बचा । मित्र ! अब मेरे जीने की आशा नहीं है । मेरी

परं नास्ति मे जीविताशा। मम ब्राह्मण्या विधुराया अन्धकूपनेत्रायास्त्व-मेव स्मृत्वा योगक्षेमं वह। प्रथममेव एषोऽनर्थः श्रावितोऽस्ति मया। त्वं पुनर्दुर्मन्त्रिणोऽस्य वचनविश्रम्भेणेमां दुरवस्थां प्रापितोऽसि। पश्य तावत्तस्य फलमिदं संवृत्तम्।]

राजा—अमात्य, संवदत्येव विदूषकवचनम्।

त्वद्बुद्धिप्रसरोऽत्र धिग्विफलितो निक्षिप्य सर्वामपि
त्वय्येवात्मधुरां मया निवसता संप्राप्तमीदृक्फलम्।
वैयग्र्यं हृदि सर्वथास्मि गमितो द्वाराणि कोषालयाः
प्राकाराः परिखाश्च हा निखिलमप्याक्रान्तमेवारिभिः ॥६७॥

अन्धकूप नेत्रा नामकी विधवा ब्राह्मणी की तुम ही देख भाल करना। यह अनर्थ पहिले ही मैंने कह दिया था। परन्तु तुम इस दुष्ट मन्त्री के वचनों में विश्वास करके इस बुरी अवस्था में फँस गये हो। देख, यह उसी का फल हुआ है।

वक्तव्य—गुल्म-सेना निवेश का योग्य स्थान,

गुपितानिलमूलत्वाद् गूढमूलोदयादपि।
गुल्मवद्वा विशालत्वात् गुल्म इत्यभिधीयते ॥

अन्धकूप नेत्रा—जल रहित पुराने कुँए की भांति जिसके नेत्र अन्दर को धंस गये हैं, इसीसे इसका अन्धकूप नेत्रा नाम सार्थक हुआ।

राजा—अमात्य। विदूषक का कहना सत्य ही दीखता है।

६७—हे मन्त्री तुम्हारा बुद्धिचातुर्य भी निष्फल हो गया, तुम पर सम्पूर्ण राज्य का कार्य भार सौंपकर बिना शंका के निवास करते हुए (शिवोपासना में मन को लगाकर) मैंने ऐसा फल प्राप्त किया है। द्वार, कोश, आशय, प्राकार और परिखायें यह सब शत्रुओं द्वारा आक्रान्त हो गई हैं, इसलिये मन में सब प्रकार से मैं बेचैनी अनुभव कर रहा हूँ।

वक्तव्य—द्वार-नौ छेद—दो नाक, दो कान, दो आंख, मुख, गुदा और उपस्थ, कोश-पांच कोष—अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय, आशय-वाताशय, पित्ताशय, कफाशय, रक्ताशय,

एवं स्थिते किमन्यद्ब्रवीमि ।

गात्रं मे परितप्यते पदयुगं शक्नोति न स्पन्दितुं
स्तब्धं चोरुयुगं भुजौ च भजतः कम्पं मुखं शुष्यति ।
नास्त्यक्ष्णोर्विषयग्रहः श्रवणयोरप्येवमेव त्वचो-
ऽप्यन्यर्तिक चलतीव हृन्निजपदादाशा भ्रमन्तीव च ॥ ६८ ॥

अपि च ।

ननु मे दुःखभागात्मा न धैर्यमवलम्बते ।
काठिन्यमिव मृत्पिण्डो घनवारिसमुक्षितः ॥ ६९ ॥

किं च मया भवत्संविहितरसगन्धकौषधघटितरसायनप्रत्याशया ।

त्वदुपदेशवशंवदचेतसा वपुषि नश्वरके ममता वृथा ।
विदधता शिवभक्तिरसायनं शिवशिवान्तरितं परमार्थदम् ॥ ७०

आमाशय- पक्काशय, मूत्राशय और स्त्रियों में आठवां गर्भाशय । प्राकार- सात त्वचायें, परिखायें-रसादि सात धातु ।

इस स्थिति और क्या कहूँ ?

६८—मेरा शरीर जल रहा है, दोनों पैर थोड़ा भी हिल नहीं सकते, दोनों जंघायें स्तब्ध हो गई हैं, दोनों भुजाओं में कम्पन हो रहा है, मुख सूख रहा है । आँखों से दिखाई नहीं दे रहा, कान भी सुनते नहीं, त्वचा भी ठीक स्पर्श ज्ञान नहीं करती, हृदय अपने स्थान से खिसक सा रहा है, दिशायें घूमती दीखती हैं ।

और भी—

मुझ जीव का प्राप्त संकट वाला आत्मा धैर्य को धारण नहीं करता । जिस प्रकार कि मिट्टी का पिंड वर्षा के पानी से भीगने पर काठिन्यता को धारण नहीं करता ।

आपके द्वारा पारद-गन्धक से बनी औषधियों से बनाई गई रसायनों से मुझे क्या आशा ?

७०—तुम्हारे उपदेश के अधीन चित्त से मैंने इस नाशमान शरीर में व्यर्थ की ममता करते हुए मोक्ष को देने वाली रसायन रूप शिवभक्ति

मंत्री—सत्यमेतच्छिवभक्तिरसायनं परमार्थदमिति सकलैहिककसंट विघटनं च । कि तु ।

पुराभिमानो न वृथा तद्दार्ढ्येन विना कथम् ।
चित्तस्वास्थ्यं विना तच्च शिवभक्तिर्दृढा कथम् । ७१॥

अतो विज्ञापयामि

कृच्छ्रेऽपि धैर्यग्रहणं राज्ञो विजयसाधनम् ।
इति नीतिविदः प्राहुर्धैर्यमालम्ब्यतां ततः ॥ ७२ ॥

को (जरा और मृत्यु से छुटाने के कारण रसायन) छोड़ दिया है, शिव, शिव (अतिशय निर्वेद को दिखाने के लिये शिव-शिव कहा है)

वक्तव्य—रसायन–'यज्जराव्याधि विध्वंसि भेषजं तद् रसायनम् ।

मन्त्री—शिव भक्ति रसायन मोक्ष को देने वाली है, यह बात सत्य है । इस लोक के सम्पूर्ण संकटों को नष्ट करने वाली है । किन्तु

७१—शरीर में अभिमान व्यर्थ नहीं होता, शरीर के दृढ़ हुए बिना चित्त की स्वस्थता (मन की एकाग्रता) कैसे सम्भव है ? चित्त की एकाग्रता के बिना दृढ़ शिव भक्ति कैसे सम्भव है ।

वक्तव्य—इसी से कालीदास ने कहा है—"शरीरमाद्यं खलु धर्म साधनम्—" कालीदास । २—नायमात्माबलहीनेन लभ्या। चरक में—

विघ्नभूता यदा रोगाः प्रादुर्भूताशरीरिणाम् ।
तपोपवासाध्ययन ब्रह्मचर्यव्रतायुषाम् ॥ चरक ।

इसलिये निवेदन करता हूं–कि—

७२—बड़ी आपत्ति आने पर भी धैर्य का सहारा लेना राजा का जय प्राप्ति में कारण होता है, ऐसा नीति जानने वालों का कहना है, इसलिये आप धैर्य धारण करें ।

वक्तव्य—सूक्तियां भी हैं—

कदर्थितस्यापि हि धैर्यवृत्तेर्नशक्यते धैर्यगुणः प्रमार्ष्टुम् ।
अधोमुखस्यापिकृतस्य वह्निर्नाधः शिखा क्वापि कदापि यान्ति ॥

किं च तव निदर्शयामि तादृशमितिहासम्। यथा—

श्रेयः प्रापदगस्तिना स नहुषः शप्तोऽपि धैर्यग्रहा-
न्नलस्य धृतिं शुभं नलहरिश्चन्द्रावपि प्रापतुः।
कृत्वा छद्मकृतेऽरिणा प्रणयिनीचौर्येऽपि धैर्यं वह-
न्बद्ध्वा सेतुमुदन्वदम्भसि न किं रामो विजिग्ये रिपून् ॥७३॥

छिन्नेऽपि रोहति तरुःक्षीणोऽप्युपचीयते पुनश्चन्द्रः।
इति विमृशन्तः सन्तः सन्तप्यन्ते न विश्लथेषु लोकेषु ॥

गीता में पढ़ते हैं—

क्षुद्रं हृदय दौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परंतप ॥

चरक में—धृति को नियमात्मक कहा है, यथा—

विषयप्रवणं सत्त्वं धृति भ्रंशान्नशक्यते।
निहन्तुमहितादर्थाद् धृतिर्हि नियमात्मिका॥ चरक.शा.१।१००

आपको इतिहास के उदाहरण भी इस सम्बन्ध में देता हूँ। यथा—

७३—अगस्त ऋषि से प्राप्त शाप वाले नहुष राजा ने धैर्य धारण करने से कल्याण प्राप्त किया था। धैर्य को धारण करके राजा नल और हरिश्चन्द्र ने कल्याण प्राप्त किया था। शत्रु रावण से छल करके सीता की चोरी किये जाने पर भी, राम ने धैर्य को धारण करके समुद्र में पुल बाँध कर शत्रु को क्या नहीं जीता था (अवश्य ही जीता था)।

वक्तव्य—(१) नहुष राजा ने यज्ञ करके इन्द्रपद पाया था। एक बार सप्तर्षियों को पालकी में ले जाकर अन्तःपुर में जाने की जल्दी से अगस्त्य ऋषि को उसने जल्दी चलने के लिये पैर मारा था। इस पर अगस्त ने उसे सांप होने का शाप दिया था। फिर युधिष्ठिर द्वारा द्वैत वन में इसकी मुक्ति हुई थी।

(२) राजा नल ने जुए में अपना सब राज्य खोकर धैर्य से जीवन व्यतीत करके पीछे से सब प्राप्त किया था।

(३) राजा हरिश्चन्द्र को अपनी टेक रखने के लिये राज्य पाठ सब दे चुकने के बाद अपने आपको काशी में चाण्डाल के हाथ बेचना

विदूषकः—वअस्स, सुदं किं दाणिं वि एदस्स मन्तिणो एदं एव्व वअणम् । संपदं एशो अत्ताणं वि ण जाणादि राजकज्जं कुदो उण उम्मादं वा उवजावं वा सत्तुकिदम् । [वयस्य, श्रुतं किमिदानीमप्येतस्य मन्त्रिण इदमेव वचनम् । सांप्रतमेव ।

आत्मनमपि न जानाति राजकार्यं कुतः पुनः ।
उन्माद उपजापो वा एतस्मिन्शत्रुभिः कृतम् ॥

मन्त्री—(विहस्य ।) वैधेय, किं वृथा प्रलपसि । देव, अलं धैर्यत्यागेन । एते च मत्संविहिता रसौषधिविशेषा भवत्सेवनमेव प्रीतिक्षमाणा विपक्षक्षपणाय सज्जीभवन्ति, तानेताननुहाण । (नेपथ्ये ।) देव, एते वयम् ।

शिवभक्तिप्रसादेन लब्धा मंत्रिवरेण च ।
सम्यक्संविहिताः सर्वे विपक्षान्विजयामहे ॥ ७४ ॥

पड़ा था । पीछे से विश्वामित्र उनकी सत्यता से प्रसन्न हुए और उनका सब राज्य वापिस कर दिया था ।

विदूषक—मित्र ! क्या तुमने इस समय भी इस मन्त्री के वचन को सुना ? इस समय यह—

७४—अपने को भी नहीं जानता, फिर राजकार्य को कहाँ से समझेगा। इसमें उन्माद या उपजाप–(भेद) शत्रुओं ने कर दिया है ।

मन्त्री—मूर्ख ! व्यर्थ बकवाद करते हो । राजन् ! धैर्य धारण करो, मेरे द्वारा भली प्रकार से तैय्यार की हुई इन विशेष रसौषधियों का आप सेवन करें, इसी प्रतीक्षा से शत्रुओं के पक्ष को नष्ट करने के लिए आप तैय्यार हों । आप इन रसौषधियों को ग्रहण करें ।

(नेपथ्य में) ये हम सब ।

७५—शिव भक्ति रूप देवता की कृपा से आपके लिए आई हैं, श्रेष्ट मन्त्रि ने मेधा श्रद्धा और निपुणता से भली प्रकार से तैय्यार किया है, हम सब शत्रुओं को जीतते हैं ।

पुरस्तादचिरादेवास्माभिर्बाध्यमानं यक्ष्माणं सामात्यं सपुत्रकलत्रं ससैन्यं च पश्य ।

राजा—(दृष्ट्वा ।) प्रियं नः प्रियम् नः सर्वे यूयमप्रमत्ता विपक्षक्षपणाय यतध्वम् ।

(ततः प्रविशति यक्ष्मा पाण्डुश्च ।)

यक्ष्मा—पाण्डो, क पुनरस्मदीया भटाः प्रहारार्थं वर्तन्ते ।

पाण्डुः—देव, पश्य । केचिदनुगच्छन्ति, केचित्पुरो गच्छन्ति ।

और शीघ्र ही आप अपने सामने हमसे मन्त्री-पुत्र-स्त्री और सेना के साथ मारे जाते यक्ष्मा को देखें ।

राजा—(देखकर) हमरा प्रिय, हमारा प्रिय ! तुम सब सावधान होकर शत्रुपक्ष के नाश के लिये यत्न करो ।

[इसके पीछे यक्ष्मा और पांडु आते हैं]

यक्ष्मा—पांडु, कहाँ पर हमारे सैनिक आक्रमण कर रहे हैं ।

पाण्डु--देव देखिये, कुछ तो पीछे जाते हैं, और कुछ आगे जा रहे हैं ।

वक्तव्य—जो रोग राजा के आगे चलते हैं उनको पूर्वरूप कहते हैं, और जो रोग पीछे चलते हैं उनको उपद्रव नाम से कहते हैं ।

पूर्वरूपं प्रागुत्पत्ति लक्षणं व्याधेः । चरक
अव्यक्तं लक्षणं तस्य पूर्वरूपमिति स्मृतम् ॥ चि. अ. ११
रोगारम्भक दोषस्य प्रकोपादुपजायते ।
योऽन्यो विकारः स बुधैरुपद्रव इहोदितः ॥ भा. प्र.

यक्ष्मा रोग कुछ रोगों के पूर्व चलता है, और कुछ रोगों के पीछे होता है, (कासात् संजायते क्षयः) । उपद्रवस्तु खलु रोगोत्तर काळजो रोगाश्रयो रोग एव स्थूलोऽणुर्वा रोगात् पश्चाज्जायते इति उपद्रवः । च.वि.सं. २२

कास रोग से क्षय हो जाता है ।

विदूषकः—वअस्स, सुदं कि दाणि वि एदस्स मन्तिणो एदं एव्व वअणन् । संपदं एशो अत्ताणं वि ण जाणादि राजकज्जं कुदो उण उम्मादं वा उवजावं वा सत्तुकिदम् । [वयस्य, श्रुतं किमिदानीमप्येतस्य अन्त्रिण इदमेव वचनम् । सांप्रतमेव ।

आत्मनमपि न जानाति राजकार्यं कुतः पुनः ।
उन्माद उपजापो वा एतस्मिन्शत्रुभिः कृतम् ॥

मन्त्री—(विहस्य ।) वैधेय, किं वृथा प्रलपसि । देव, अलं धैर्यत्यागेन । एते च मत्संविहिता रसौषधिविशेषा भवत्सेवनमेव प्रीतिलमाणा विपक्षक्षपणाय सज्जोभवन्ति, तानेताननुहाण । (नेपथ्ये ।) देव, एते वयम् ।

शिवभक्तिप्रसादेन लब्धा संन्निवरेण च ।
सम्यक्संविहिताः सर्वे विपक्षान्विजयामहे ॥ ७४ ॥

पड़ा था। पीछे से विश्वामित्र उनकी सत्यता से प्रसन्न हुए और उनका सब राज्य वापिस कर दिया था।

विदूषक—मित्र ! क्या तुमने इस समय भी इस मन्त्री के वचन को सुना ? इस समय यह—

७४—अपने को भी नहीं जानता, फिर राजकार्य को कहाँ से समझेगा! इसमें उन्माद या उपजाप-(भेद) शत्रुओं ने कर दिया है ।

मन्त्री—मूर्ख ! व्यर्थ बकवाद करते हो । राजन् ! धैर्य धारण करो, मेरे द्वारा भली प्रकार से तैय्यार की हुई इन विशेष रसौषधियाँ का आप सेवन करें, इसी प्रतीक्षा से शत्रुओं के पक्ष को नष्ट करने के लिए आप तैय्यार हों । आप इन रसौषधियों को ग्रहण करें ।

(नेपथ्य में) ये हम सब।

७५—शिव भक्ति रूप देवता की कृपा से आपके लिए आई हैं, श्रेष्ट मन्त्रि ने मेधा-श्रद्धा और निपुणता से भली प्रकार से तैय्यार किया है, हम सब शत्रुओं को जीतते हैं ।

पुरस्तादचिरादेवास्माभिर्बाध्यमानं यक्ष्माणं सामात्यं सपुत्रकलत्रं ससैन्यं च पश्य ।

राजा—(दृष्ट्वा ।) प्रियं नः प्रियम् नः सर्वे यूयमप्रमत्ता विपक्षक्षपणाय यतध्वम् ।

(ततः प्रविशति यक्ष्मा पाण्डुश्च ।)

यक्ष्मा—पाण्डो, क्व पुनरस्मदीया भटाः प्रहारार्थं वर्तन्ते ।

पाण्डुः—देव, पश्य । केचिदनुगच्छन्ति, के[चि]त्पुरो गच्छन्ति ।

और शीघ्र ही आप अपने सामने हमसे मन्त्री-पुत्र-स्त्री और सेना के साथ मारे जाते यक्ष्मा को देखें ।

राजा—(देखकर) हमरा प्रिय, हमारा प्रिय ! तुम सब सावधान होकर शत्रुपक्ष के नाश के लिये यत्न करो ।

[इसके पीछे यक्ष्मा और पांडु आते हैं]

यक्ष्मा—पांडु, कहाँ पर हमारे सैनिक आक्रमण कर रहे हैं ।

पाण्डु--देव देखिये, कुछ तो पीछे जाते हैं, और कुछ आगे जा रहे हैं ।

वक्तव्य—जो रोग राजा के आगे चलते हैं उनको पूर्वरूप कहते हैं, और जो रोग पीछे चलते हैं उनको उपद्रव नाम से कहते हैं ।

पूर्वरूपं प्रागुत्पत्ति लक्षणं व्याधेः । चरक

अव्यक्तं लक्षणं तस्य पूर्वरूपमिति स्मृतम् ॥ चि. अ. ११

रोगारम्भक दोषस्य प्रकोपादुपजायते ।

योऽन्यो विकारः स बुधैरुपद्रव इहोदितः ॥ भा. प्र.

यक्ष्मा रोग कुछ रोगों के पूर्व चलता है, और कुछ रोगों के पीछे होता है, (कासात् संजायते क्षयः) । उपद्रवस्तु खलु रोगोत्तर काउजो रोगाश्रयो रोग एव स्थूलोऽणुर्वा रोगात् पश्चाज्जायते इति उपद्रवः । च.वि.सं. २२

कास रोग से क्षय हो जाता है ।

कालः—कर्मन्, यदुक्तं पाण्डुना: तत्तथैव । यतः,

अनेकरोगानुगतो बहुरोगपुरोगमः ।
राजयक्ष्मा क्षयः शोषो रोगराडिति च स्मृतः ॥७६॥

कर्म—जानामि यादृश एष इति ।

नक्षत्राणां द्विजानां च राजाभूद्यो विधुः पुरा ।
तं यज्जग्राह यक्ष्मासौ राजयक्ष्मा ततः स्मृतः ॥ ७७ ॥
देहेषु यः क्षयकृतेः क्षयस्तत्संभवाच्च सः ।
रसादिशोषणाच्छोषो रोगराड्रोगरञ्जनात् ॥ ७८ ॥

यक्ष्मा—पाण्डो, प्रबलेषु सामदानभेदा न प्रसरन्ति, अतोऽन्तिम

काल—कर्म-पांडु ने जो कहा है, वह ठीक ही है, क्योंकि—

७६—कास, अतीसार, पार्श्वशूल, स्वरभेद आदि अनेक रोग इस राजयक्ष्मा के पीछे चलते हैं (उपद्रव रूप से), बहुत से रोग—कास-रक्तपित्त-अग्निमान्द्य इसके आगे चलते हैं । इसको राजयक्ष्मा, क्षय, शोष, रोगराट् इस नामों से कहते हैं ।

वक्तव्य—संग्रह में—

अनेक रोगानुगतो बहुरोग पुरोगमः ।
राजयक्ष्मा क्षयः शोषो रोगराडिति चस्मृतः ॥
नक्षत्राणां द्विजानां च राज्ञो ऽभूद्यदयं पुरा ।
यच्च राजा च यक्ष्मा च राजयक्ष्मा ततो मतः ॥
देहौषधक्षयकृते क्षयस्तत्संभवाच्च सः ।
रसादिशोषणात्शोषो रोगराट् तेषु राजनात् ॥

[क्रिया क्षय कारित्वच्च क्षय इत्युच्यते पुनः—सुश्रुत]

कर्म—जानता हूँ जैसा यह है—

७७—पूर्वकाल में जो चन्द्रमा अश्विनी आदि अट्ठाईस नक्षत्रों का और ब्राह्मणों का राजा था; उस चन्द्रमा को जिसने पकड़ा था, उस यक्ष्मा को राजयक्ष्मा इस नाम से कहते हैं ।

यक्ष्मा—पाण्डु–प्रबल शत्रुओं में साम-दान और भेद सफल नहीं

एव प्रयोगः संप्रतिपत्तव्यः । तदत्र किं विलम्बेन ।

शस्त्राशस्त्रि प्रलह्याथ प्रवृत्ते रणवैशसे ।
अजीवकमरोगं वा पुरमेतद्भविष्यति ॥ ७९ ॥

तदेहि । समरक्षमां भूमिमेव गच्छामः । (इति पाण्डुना सह निष्क्रान्तः ।)

कालः—कर्मन्, पश्य पश्य विपक्षविजयाय विज्ञानमंत्रि-प्रयुक्तान्भटान् ।

राजा—वयस्य, मंत्रिणा दर्शितेन विक्रमव्यापारेण हृदयं मम निर्वृणोति यतः ।

भूपतिरसन्निन्दूरज्वराङ्कुशानन्दभैरवैः साकम् ।
चिन्तामणिश्च शत्रून्राजमृगाङ्कश्च जेतुमुद्युङ्क्ते ॥ ८० ॥

पश्य चात्रारोग्यचिन्तामणिमुत्तरेण ।

होते । इसलिये अन्तिम प्रयोग ही (दंड) बरतना चाहिये । इसमें देरी करने से क्या लाभ ।

७८—शरीरों में क्षय के कारण धातुओं का क्षय होने से इसको क्षय कहते हैं । रस आदि धातुवों को सुखाने से यह यक्ष्मा शोष कहाता है, रोगों को बढ़ाने से रोगराट् कहाता है ।

७९—आज शस्त्रों से परस्पर युद्ध के रणांगण में प्रवृत्त होने पर यह पुर जीव रहित या रोगरहित होगा ।

वक्तव्य—संकल्प सूर्योदय में भी इसी तरह का वर्णन है—

अमुष्मिन् दिवसे श्वो वा नूनं नियति वैभवात् ।
असोहमविवेकं वा जगदेतद् भविष्यति ॥ ८।७

इसलिये आओ ! युद्ध करने के योग्य भूमि में जायें ।

[इस प्रकार कहकर पांडु के साथ निकल गया]

काल—कर्म, देखो देखो ! शत्रुओं को जीतने के लिये विज्ञानशर्मा मन्त्री से भेजे गये सैनिकों को—

राजा—मित्र ! मन्त्री द्वारा दिखाये गये पराक्रम से मेरा मन सुख अनुभव करता है । क्योंकि—

८०—चिन्तामणि और राजमृगाङ्क ये दोनों रसौषधियाँ रस भूपति, रस सिन्दूर, ज्वरांकुश और आनन्द भैरव के साथ शत्रुओं को जीतने के लिए उद्यम कर रही हैं।

वक्तव्य—रसोषधियों के पाठ निम्न हैं—

चिन्तामणि रस के कई पाठ हैं। इनमें से हृदय रोग का और वात व्याधि का पाठ प्रायः व्यवहार में आता है। यहाँ पर पहिला पाठ लेना उत्तम होगा—

हृदय रोग का पाठ—

पारदं गन्धकञ्चाभ्रं लौहं वंग शिलाजतु।
समं समं गृहीत्वा च स्वर्णं सूताङ्घ्रि सम्मितम्॥
स्वर्णस्य द्विगुणं रौप्यं सर्वमेकत्र मर्दयेत्।
चित्रकस्य द्रवेणापि भृङ्गराजाम्भसा ततः॥
पार्थस्याथ कषायेण सप्तकृत्वो विभावयेत्।
ततो गुञ्जामिताः कुर्याद् वटीश्छाया प्रशोसिताः॥
एकैकां दापयेदासां गोधूमे क्वाथवारिणा।
हृदरोगान् निखिलान् हन्ति व्याधीन् फुफ्फुसानपि॥

वात व्याधि का पाठ—

कर्षैकं रससिन्दूरं तत्समं मृतमभ्रकम्।
तदर्धमृत लौहञ्च स्वर्णशाणं क्षिपेद् बुधः॥
कन्यारसेन संमर्द्य गुञ्जामात्रां वटींचरेत्।
अनुपानादिकं दद्यात् बुद्ध्वा दोषबलाबलम्॥

रस सिन्दूर—

शुद्धसूतं तदर्धं तु शुद्ध गन्धकमेव हि।
तयोः कज्जलिकां कुर्याद्दिनमेकं विमर्दयेत्॥
मृत्कर्पटैर्विलिप्तायां कुप्यां कज्जलिकां क्षिपेत्।
वालुकायन्त्रगां यावत् पचेद्दिनचतुष्टयम्॥
गृह्णीयादूर्ध्वं संलग्नं सिन्दूरं रसजं शुभम्॥

ज्वरादीनामयानेषु नाशयेदनुपानतः ॥ आयुर्वेद प्रकाशः

रस भूपति—

शुद्ध विष सूतगन्धक जयपालत्रिकटुरामठानांतु ।
चूर्णसप्तदिनानि क्वाथेनामर्धं चित्रकस्याथ ॥
मरिचप्रमाणवटिकाः कृत्वा संशोष्य रोगिणे मधुना ।
कासेन पीडिताय त्रिचतुर गुटिकावधि प्रदद्याच्च ॥
रस भूपतिनामैतच्छ्वास कासं च भेषजं हरति ॥

ज्वरांकुश—इसके भी कई पाठ हैं, प्रचलित पाठ निम्न है—

शुद्ध सूतं तथा गन्धं बीजं धत्तूर सम्भवम् ।
महौषधं टङ्कणञ्च हरितालं तथामृतम् ॥
भृंगराजाम्भसा सर्वं मर्दयित्वावटीं चरेत् ।
गुञ्जाप्रमाणां तां खादेद्यथा दोषानुपानतः ॥ भै. र.

आनन्द भैरव—

दरदं वत्सनाभं च मरिचं टङ्कणं कणा ।
चूर्णयेत् समभागेन रसोह्यानन्दभैरवः ॥
गुञ्जैकं वा द्विगुंजं वा बलं ज्ञात्वाप्रयोजयेत् ;
मधुनालेह्ययेच्चानु कुटजस्य फलं त्वचम् ॥

राज मृगाङ्क—

सूतभस्मत्रयो भागा भागैकं हेमभस्मकम् ।
मृताभ्रस्य च भागैकं शिलागन्धक तालकम् ॥
प्रतिभागद्वयं शुद्धमेकीकृत्य विचूर्णयेत् ।
वराटान् पूरयेत्तेन छागीक्षीरेण टङ्कणम् ;
पिष्ट्वा तेन मुखं रुद्ध्वा मृद्भाण्डे तन्निरोधयेत् ।
शुष्कं गजपुटे पक्त्वा चूर्णयेत स्वांगशीतलम् ॥
रसो राजमृगाङ्कोऽयं चतुर्गुञ्ज क्षयापहः ॥

आरोग्य चिन्तामणि को इन औषधियों के उत्तर में देखिये—

आरोग्य चिन्तामणि—इसे आरोग्यवर्धनी भी कहते हैं ।

कृतसिद्धरसेश्वरः पुरस्तात्करमालम्ब्य च वातराक्षसस्य।
समराङ्गणमेति पूर्णचन्द्रोदय एषोऽग्निकुमारदर्शिताध्वा ॥८१॥

रस गन्धक लोहभ्रशुल्व भस्मानि साम्यत: ।
त्रिफला द्विगुणा प्रोक्ता द्विगुणं च शिलाजतु ॥
चतुर्गुणं परं शुद्धं चित्रमूलं च तत्समम् ।
तिक्ता सर्व समायोज्या सर्वं संचूर्ण्य यत्नतः ॥
निम्बपत्ररसैः सम्यक् मर्दयेद् द्विदिनावधि ।
ततश्च वटिका कार्या बदरीफल मात्रया ॥
मण्डलं सेविता हन्ति त्वग् रोगान् कुष्ट पूर्वकान् ।
वातपित्तकफोद् भूतान् ज्वरान् नाना प्रकारजान् ॥
आरोग्यवर्धनीनाम्ना चिन्तामणिरियं वटी ॥

रस रत्न समुच्चय

८१—यह पूर्ण चन्द्रोदय, अग्निकुमार से दिखाये मार्ग से सिद्ध रसेश्वर को आगे करके और वात राक्षस का हाथ पकड़कर रणभूमि में आ रहा है।

वक्तव्य—पूर्णचन्द्रोदयरस—इसके भी कई पाठ हैं। यहां पर रसायन या वाजीकरण अधिकार का पाठ लेना मैं उत्तम मानता हूँ। यथा—

पूर्णचन्द्ररसः—

(१) सूताभ्रलौहं स शिलाजतु स्यात्, विडंगताप्यं मधुना घृतेन ।
सम्मर्द्य सर्वं खलु पूर्ण चन्द्रो द्विगुञ्जयुक्तो भवतीह वृष्यः ॥
(२) पलंमृदु स्वर्ण दलं रसेन्द्रात् पलाष्टकं षोडश गन्धकस्य ।
शोणैः सुकार्पासभवैः प्रसूनैः सर्वं विमर्द्याथ कुमारिकाद्भिः ।
तत्काचकुम्भे निहितं सुगाढे मृत्कर्पटीभिर्दिवसत्रयञ्च ॥
पचेत् क्रमाग्नौ सिकताख्य यन्त्रे ततो रसःपल्लवरागरम्यम् ।
संगृह्य चैतस्य पलञ्च सम्यक् पलं च कर्पूर रजस्तथैव ।
जातीफलं सोषणमिन्द्रपुष्पं मृगाण्डंज चापि हि शाणमेनम् ॥

प्रतापलङ्केश्वर एष पश्य प्रतापयत्यत्र निजप्रतापात् ।
गदान्धनुर्वातमुखानशेषांल्लङ्केश्वरवच्छत्रुभिरप्रसह्यः ॥८२॥

चन्द्रोदयोऽयं कथितोऽस्य वल्लो भुक्तौऽहिवल्लिदल मध्यवर्ति ।
मदोन्मदानां प्रमदाशतानां गर्वाधिकत्वं श्लथयत्यकाण्डे ॥

अग्नि कुमार रस—इसके भी पाठ बहुत हैं—प्राय: व्यवहार में आने वाला पाठ निम्न है—

रसेन्द्रगन्धौ सहटंकणेन समं विषं योज्यमिह त्रिभागम् ।
कपर्दशंखाविह नेत्रभागौ मरिच मत्राष्टगुणं प्रदेयम् ॥
सुपक्व जम्बीर रसेन घृष्टः सिद्धो भवेदग्निकुमार एषः ।
विसूचिका जीर्ण समीरणार्त्ते दद्याच्च गुञ्जां ग्रहणीगदेऽपि ॥

सिद्ध रसेश्वर इसी को सिद्ध रस भी कहते हैं । यथा—

मुक्ताफलं शुद्ध सूतं सुवर्णं रुप्यमेव च ।
यवक्षारञ्च तत्सर्वं तोलकैकं प्रकल्पयेत् ॥
रक्तोत्पल पत्रतोयैः मर्दयेत्पत्तली कृतम् ।
मर्दयेच्च पुनर्दत्वा गन्धकं तदनन्तरम् ॥
क्षिप्त्वा काचघटी मध्ये संनिरुध्य त्रियामकम् ।
सिकताख्ये पचेत्शीते सिद्ध सूतन्तु भक्षयेत् ॥
रक्तिकैक प्रमाणेन मुशलीशर्करान्वितम् ।
शुक्रवृद्धिं करोत्येष ध्वजभङ्ग च नाशयेत् ॥

शार्ङ्गधर में सिद्धयोगरस के नाम से अलग रस है ।

वात राक्षस—मृतंसूतं तथा गन्धं कान्तं चाभ्रकमेव च ।
ताम्रभस्म कृतं सम्यग् मर्दयित्वा समांशकम् ॥
पुनर्नवा गुडूच्यग्नि सुरसाल्युपर्णं तथा ।
एतेषां स्वरसेनैव भावयेत् त्रिदिनं पृथक् ।
दत्वा लघुपुट सम्यक् स्वांगशीतं समुद्धरेत् ॥
वातराक्षस नामायं वात रोगे प्रशस्यते ॥

८२—इस प्रतापलंकेश्वर को देखो, यह अपने प्रताप से धनुर्वात

वसन्तकुसुमाकरः सरभसं विधत्ते रणं
सुवर्णरसभूपतिर्वशयते रुजां मण्डलम् ।
प्रसह्य वडवानलाभिधमिदं च चूर्णं जवा
च्छिशोषयति सर्वतः प्रबलमग्निमान्द्यारुचिम् ॥ ८३ ॥

प्रधान सम्पूर्ण रोगों को तिरस्कृत कर रहा है, यह रावण की भांति शत्रुओं से असह्य है ।

वक्तव्य—प्रताप लकेश्वर रस—

एकेन्दु चन्द्रानलवार्धिदन्ती कलैक भागं क्रमशोविमिश्रम् ।
सूताभ्रगन्धोषण लोहशंखवन्योत्पला भस्म विषं च पिष्टम् ।;
प्रसूति वातेऽनिलदन्त बन्धे साद्राम्भसो वल्लमुष्य लिह्या ।
वातामयेऽनेक विधेऽर्शसि स्यात् पुरामृताद्रांत्रिफला युतोऽयम् ॥
प्रतापलंकेश्वर नामधेयो रसो धनुर्वात सुखान् हरेद्धि ॥

धनुर्वात—धनुस्तुल्यं नमयेद् गात्रं स धनुस्तम्भसंज्ञितः ।
विवर्णबद्धवदनः स्रस्तांगो नष्ट चेतनः ।
प्रस्विद्येश्च धनुस्तम्भी दशरात्रं न जीवति ॥

८३—वसन्तकुसुमाकर बड़े जोर से युद्ध कर रहा है । सुवर्ण रस भूपति रोग समूह को वश में कर रहा है । वड़वानल नाम का यह चूर्ण बल से वेग के साथ प्रवल अग्निमान्द्य के समुद्र को सम्पूर्ण रूप में सुखा रहा है ।

वक्तव्य—वसन्त कुसुमाकर के भी कई पाठ हैं । इनमें से निम्न दो पाठ प्रायः व्यवहार में आते हैं—

पृथग्द्वौ हाटकं चन्द्रस्त्रयो बंगाहिकान्तकाः ।
चतुर्भागं शुद्धमभ्रं प्रवालं मौक्तिकन्तथ ॥
भावनागव्य दुग्धेन भावनेक्षुरसेन च ।
वासा लाक्षा रसोदीच्यरम्भा कन्द प्रसूनकैः ॥
शतपत्र रसेनैव मालत्याः कुसुमेन च ।
पश्चान्मृगमदैर्भाव्यं सुसिद्धो रसराड् भवेत् ॥
कुसुमाकर विख्यातो वसन्त पदपूर्वकः ॥

सुदर्शनं चक्रमिवामरारीन्सुदर्शनं चूर्णमिदं रणाग्रे ।
निहन्ति जीर्णज्वरमाशु पित्तजन्या रुजश्चूर्णयति प्रसह्य ॥८४॥

(२) प्रवालरसमौक्तिकाम्बरमिदं चतुर्भागभाक् ।
पृथग् पृथगथ स्मृते रजतहेमतो द्व्यशंके ॥
अथो भुजगवङ्गकं त्रिवलकं विमर्द्याखिलं ।
शुभेऽहनि विभावयेद् भिषगिदंधिया सप्तशः ॥
द्रवैः वृषनिशेक्षुजैः कमल मालती पुष्पजैः ।
पयः कदलिकन्दजैर्मलयजैर्ण नाभ्युद्भवैः ॥
वसन्तकुसुमाकरो रसपतिर्द्विवल्लोऽशितः ।
समस्त गद्हृद्भवेत् किलनिजानुपानैरयम् ॥

सुवर्ण भूपति रस—शुद्धसूतं समंगन्धं मृतशुल्वं तयोः समम् ।
अभ्रलोहकयोर्भस्म कान्तभस्म सुवर्णजम् ॥
रजतं च विषं सम्यक् पृथक् सूतसमं भवेत् ।
हंसपादोरसैर्मद्य दिनमेकं वटी कृतम् ।
काचकुप्यां विनिक्षिप्य मृदा संलेपयेद्वहिः ॥
शुष्कां तु वालुकायंत्रे शनैः मृद्वग्निनापचेत् ।
चतुर्गुञ्जामितं देयं पिप्पल्यार्द्रद्रवेण तु ॥
क्षयं त्रिदोषजं हन्ति सन्निपातोस्त्रयोदशे ॥
यथा सूर्योदये नश्येत्तमः सर्वगतं तथा ।
सर्वरोग विनाशाय भवति स्वर्ण भूपतिः ॥

वड़वानल चूर्ण—सैन्धवं पिप्पलीमूलं पिप्पली चव्य चित्रकम् ।
शुण्ठी हरीतकीचेति क्रमवृद्धया विचूर्णयेत् ॥
वड़वानलमेतच्चूर्णं स्यादग्निदीपनम् ॥

८४—सुदर्शनचक्र जिस प्रकार रणांगण में देवताओं के शत्रु राक्षसों को मारता है, उसी प्रकार से यह सुदर्शन चूर्ण रणभूमि में जीर्ण ज्वर और पित्त जन्य पीड़ा को शीघ्रता से नाश कर रहा है ।

प्रबलानिलसंकुलितं गदगहनं दुरवगाढमन्येन ।
हन्ति धुरि तीक्ष्णसारो वातकुठारः समूलमुन्मूल्य ॥८५॥

वक्तव्य—सुदर्शन चूर्ण—

त्रिफला रजनी युग्मं कण्टकारी युगं शठी ।
त्रिकटु ग्रन्थिकं मूर्वागुडूचीधन्वयासक: ॥
कटुका पर्पटो मुस्ता त्रायमाणा च वालकम् ।
निम्ब; पुष्करमूलं च मधुयष्टी च वत्सकम् ॥
यवानीन्द्रयवो भार्गी शिग्रु बीजं सुराष्ट्रजा ।
वचात्वक् पद्मकोशीरं चन्दनातिविषाबला: ॥
शालपर्णी पृश्निपर्णी विडङ्गं तगरं तथा ॥
चित्रकोदेवकाष्ठं च चव्यं पत्र पटोलजम् ;
जीवकर्षभकौ चैव लवंगं वंशलोचना ॥
पुण्डरीकं च काकोली पत्रजं जाति पत्रकम् ।
तालीश पत्रं च तथा समभागानि चूर्णयेत् ।
सर्व चूर्णस्य चार्धांशं कैरातं निक्षिपेत् सुधीः ॥
एतत् सुदर्शनं नाम चूर्णं दोष त्रयापहम् ॥
ज्वरांश्चनिखिलान् हन्यात् नात्र कार्या विचारणा ॥

८५—तीव्र वीर्य-शक्ति युक्त वात कुठार (वायु के लिये कुठार-पर्शु) प्रबल वायु से युक्त, किसी दूसरे शस्त्र या औषध से दुष्परिहार्य, वात व्याधि समूह को हमारे सामने जड़ समेत उखाड़ कर मार रहा है । जंगल के पक्ष में—

तीक्ष्ण लोह से बना यह पर्शु प्रबल वायु से मिश्रित, किसी दूसरे से अप्रवेश्य, भयानक जंगल को, जड़ समेत उखाड़कर नष्ट कर रहा है ।

वक्तव्य—वात कुठार रस—

रस भागोभवेदेको गन्धको द्विगुणो मतः ।
त्रिभागा त्रिफला ग्राह्या चतुर्भागश्च चित्रकः ॥
गुग्गुलु पंच भागःस्यात् ऐरण्ड स्नेह मर्दितः ।

असकृत्स्खलतः किंचिद्गतिमान्द्यविधायिनः ।
प्रमेहान्माद्यतो हन्ति मेहकुञ्जरकेसरी ॥ ८६ ॥
गतिमन्थरताधायिवर्ष्मवैपुल्यशालिनः ।
सर्वान्वातगजान्हन्ति वातविध्वंसनो हरिः ॥ ८७ ॥

क्षिपत्वात्र पूर्वकं चूर्णं पुनस्तेनैवमर्दयेत ॥
गुटिका कर्षमात्रं तु भक्षयेत् प्रातरेवहि ।
नागकैरण्ड मूलानां क्वाथं तदनुपाययेत् ॥
अभ्यज्यैरण्डतैलेन स्वेदयेत् पृष्ठदेशकम् ।
विरेके तेन संजाते स्निग्धमुष्णं च भोजयेत् ॥
निर्वाते सेवयेद् वात कुठारं तीक्ष्ण वीर्यकम् ॥ रसराज सुन्दर

८६—मद को प्राप्त करके (घमण्डी बलवान बनने से) कदम कदम पर गिरते हुए, गति को, चाल को कुछ मन्द करने वाले प्रमेहों को प्रमेह गज केशरी मार रहा है ।

प्रमेह गज केशरी—रस गन्धायासाभ्राणि नागवंगौ सुवर्णकम् ।
वज्रकं मौक्तिकं सर्वमेकीकृत्य विचूर्णयेत् ।
शतावरी रसे नैव गोलके शुष्कमातपे ।
बुद्ध्वा शुष्कं तमुद्धृत्य शरावे सुदृढे क्षिपेत ॥
सन्धि लेपं तदा कुर्यात् गर्त्ते च गोमयाग्निना ।
पुटेद्याम चतुःसंख्यमुद्धृत्य स्वांगशीतलम् ॥
श्लक्ष्णी खल्वे विनिक्षिप्य गोलं तं मर्दयेद् दृढम् ।
देव ब्राह्मण पूजा च कृत्वा धृत्वा च कूपिके ॥
गुन्जापादं भजेत प्रातः शीतं चानुपिवेज्जलम् ॥
अष्टादशप्रमेहांश्च जयेन्मासोपयोगतः ।
अग्नेर्बलं वितनुते मेह कुन्जर केसरी ॥

८७—गति को मन्द करने वाले तथा शरीर में स्थूलता करने वाले हस्ति रूपी सब वात रोगों को सिंह रूपी वात विध्वंसन मार रहा है ।

विदूषकः—देव, अतेचणा वि एदे चिन्तामणिपहुदिणो संपदं संपहारं कुणन्ति त्ति अचरिअम् । ता इन्दजालं विअ एदं मे पडिभादि । [देव, अचेतना अप्येते चिन्तामणिप्रभृतयः सांप्रतं संप्रहारं कुर्वन्तीत्याश्चर्यम् । तदिन्द्रजालमिवैतन्मे प्रतिभाति ।]

राजा—धिङ्मूर्ख, अनभिज्ञोऽसि शास्त्रतत्त्वस्य । अचिन्त्यो हि मणिमंत्रौषधीनां प्रभावः । अभिमानिदेवताश्चैषां सचेतनाः श्रूयन्ते । (कर्णं दत्त्वा ।) मंत्रिन्, कोऽयं कलकलाविर्भावः ।

वक्तव्य—वात विध्वंसन रस—

सूतमभ्रक सत्त्वञ्च कांस्यं शुद्धञ्च माक्षिकम् ।
गन्धकं तालकं सर्वं भागोत्तर विवर्द्धितम् ॥
कज्जली कृत्य तत्सर्वं वातारिस्नेह संयुतम् ।
सप्ताहे मर्दयित्वातु गोलकीं कृत्ययत्नतः ॥
निम्बु द्रावेण सम्पीड्य तिलकल्केन लेपयेत् ।
अर्द्धांगुलदलेनैव परिशोष्य प्रयत्नतः ॥
प्रपचेत् वालुकायंत्रे द्वादश प्रहरान्ततः ॥ र. सा. सं.

रस रत्नाकर में आगे इतना और पाठ है—

दशमूल कषायेण भावयित्वा तदौषधम् ।
स्थूल कोलास्थि तुलितां कुर्याच्चापि वटी ततः ॥
हन्यादशीतिधा भिन्नान् वातरोगानशेषतः ।
श्रीमता नन्दिनाप्रोक्तो वातविध्वंसनोरसः ॥ रस रत्नाकर

कांस्य शुद्धं च माक्षिकम् के स्थान पर कांस्य शुल्वं च माक्षिकम् यह पाठ रस रत्नाकर में है ।

विदूषक—देव ! चिन्तामणि आदि ये अचेतन होने पर भी इस समय युद्ध कर रहे हैं, यह बहुत आश्चर्य है । मुझे यह सब इन्द्रजाल (जादु) की भांति दीखता है ।

राजा—मूर्ख ! तू शास्त्र तत्व को नहीं जानता । मणि-मंत्र और औषधियों का प्रभाव अचिन्त्य है (अवर्णनीय है) इनके अधिदेवता

मंत्री—पश्यतु देवः ।

शस्त्राशस्त्रि गदागदि प्रथमतो निर्वर्तिते संयुगे
मुष्टीमुष्टि तलातलि प्रवृत्ते पश्चादिदं भीषणम् ।
जित्वारीनिह देव तावकभटैरापूर्यते काहली
शङ्खः संप्रति शब्द्यते दृढतरं संताड्यते दुन्दुभिः ॥ ८८ ॥

अपि च ।

आस्फालयन्ति दृढमूरुयुगं कराग्रैः
कुर्वन्ति कुण्ठितघनारवमट्टहासम् ।
जीवोऽयमस्मदधिपो जितवानमित्रा-
नित्युद्धतं युधि भटास्तव पर्यटन्ति ॥ ८९ ॥

चेतना युक्त सुने जाते हैं। (कान लगाकर) मंत्रि। यह कैसा कलकल शब्द हो रहा है—

वक्तव्य—प्रभाव अवर्णनीय होता है, यथा—

मणीनां धारणीयानां कर्म यद् विविधात्मकम् ।
तत्प्रभावकृतं तेषां प्रभावोऽचिन्त्य उच्यते ॥ चरक
अमीमांस्यान्यचिन्त्यानि प्रसिद्धानि स्वभावतः ।
आगमेनोपयोज्यानि भेषजानि विचक्षणैः ॥ सुश्रुत

मंत्री—राजन्! देखिये—

८८—आपके सैनिकों ने प्रथम युद्धारम्भ में शस्त्रों का शस्त्रों से, गदा का गदा से युद्ध होने पर, पीछे से मुष्टी का मुष्टी से, हाथ का हाथ से भीषण युद्ध होने पर हे देव! आपके वीर, शत्रुवों को जीतकर यह काहली बजा रहे हैं, इस समय शंख फूंके जा रहे हैं; नगाड़े जोर से बजाये जा रहे हैं।

वक्तव्य—काहली-लम्बी नलिका वाला वाद्य।

८९—हमारे राजा जीव ने शत्रुओं को युद्ध में जीत लिया है, ऐसा कहते हुए आपके सैनिक हथेलियों से दोनों ऊरु को जोर से पीटते हुए तथा मेघ गर्जना को भी नीचा दिखाने वाले अट्टहास करते हुए घमण्ड के साथ घूम रहे हैं।

विदूषकः—कहं एत्थ एव्व भग्गमणोरहदाए परुएणो विअ जक्खराओ लक्खीअदि। [कथमत्रैव भग्नमनोरथतया प्ररुदित इव यक्ष्मराजो लक्ष्यते।

राजा—वयस्य, सम्यङ्निरूपितं भवता।

> गण्डस्थलप्रसृमराश्रु करं करेण
> निष्पीडयन्कटकटाकृतदन्तपंक्तिः।
> यक्ष्मा ललाटघटितभ्रुकुटिः किलाय-
> मन्तःस्पृशं रुषमभीक्ष्णमभिव्यनक्ति ॥ ६० ॥

मंत्री—न केवलां रुषं शुचं च।

विदूषकः—एसो सोएण पलवन्तो विअ दीसइ। [एष शोकेन विलपन्निव दृश्यते।]

मंत्री—शृणुमस्तर्हि विलापमेतस्य। विषूचिमत्सरावप्येनमनुवर्तेते।

(ततः प्रविशति विषूचीमत्सराभ्यां सहितो यक्ष्मा।)

यक्ष्मा—हन्त कथं तादृशानामपि मत्सैन्यानामीदृशी दुरवस्था।

विदूषक—यहीं पर (युद्ध प्रारम्भ में) अपने मनोरथ के नष्ट होने से रोता हुआ यक्ष्म राजा दीख रहा है।

राजा—मित्र ! तुमने ठीक पहिचाना।

६०—गालों पर बहते हुए आँसुओं से, हाथ को हाथ से दबाते हुए, दांतों को कटकटाते हुए, माथे पर त्योरी चढ़ाकर मनके अन्दर उत्पन्न अपने क्रोधको यक्ष्मा बराबर स्पष्ट कर रहा है।

मंत्री—केवल क्रोध को ही प्रगट नहीं कर रहा अपितु शोक को भी प्रगट कर रहा है।

विदूषक—यह शोक से रोता हुआ सा दीखता है।

मंत्री—तब तो इसका रोना सुनना चाहिये। विसूची और मत्सर भी इसका अनुसरण कर रहे हैं।

(इसके पीछे विसूची और मत्सर के साथ यक्ष्मा आता है)

यक्ष्मा—दुःख है, इस प्रकार मेरे सैनिकों की यह दुरवस्था किस

आश्चर्यमाश्चर्यम् ।

जीवस्य ध्वजिनीचरानतिबलाञ्शक्नोति कः शासितुं
दुर्वारैर्युधि पातितानि मम यैः सर्वाणि सैन्यानि च ।
पाण्डुर्मे सचिवः परैरवधि वा भीतः पलायिष्ट वा
नो जाने मा जीवतो बत हताः पुत्रास्तथा बान्धवाः ॥९१॥

(सशोकावेगम् ।)

भो भोः सुताः क नु गताः स्थ विना भवद्भि-
र्जीर्णाटवीव जगती परिदृश्यते मे ।
आक्रम्यते च तमसा हरिदन्तरालं
शोकाग्निसंवलितमुत्तपते वपुश्च ॥ ९२ ॥

(इति मूर्च्छति ।)

मत्सरः—देव, समाश्वसिहि समाश्वसिहि ।

यक्ष्मा—(समाश्वस्य ।)

प्रकार हुई, बहुत बड़ा आश्चर्य है ।

९१—जीव राजा के अति बलवान सैनिकों को कौन दण्ड दे सकता है, जिन तीव्र पराक्रमी सैनिकों ने युद्ध में मेरे सैनिक मार गिराये, मेरा सचिव पाण्डु शत्रुवों से मारा गया या डर कर भाग गया है, इसका पता नहीं। मेरे जीते हुए मेरे पुत्र तथा बान्धव मारे गये, इसका दुःख है ।

(शोक के आवेग के साथ)

९२—हे पुत्रों तुम कहां पर हो, तुम्हारे बिना मुझे यह पृथ्वी उजड़े हुए जंगल की भांति लग रही है । चारों ओर दिशाओं में अन्धकार फैल रहा है, शोक की अग्नि से यह शरीर चारों ओर से जल रहा है ।

वक्तव्य—रामायण में भी—

अद्यलोकास्त्रयः कृत्स्ना पृथ्वी च सकानना ।
एकेनेन्द्रजिता हीना शून्येव प्रतिभाति मे ॥ रामा. ६।९३।११

मत्सर—देव ! धैर्य धारण करो धैर्य रक्खो ।

यक्ष्मा—शान्त होकर ।

वत्सा हे वदनाम्बुजानि मुदितो द्रक्ष्यामि केषामहं
केषां माक्षिकमाक्षिपन्ति वचनान्याकर्णयिष्ये मुदा ।
मर्त्यानां तनुषु प्रविष्टमचिरान्मां वर्धयिष्यन्ति के
यूयं यत्समरे परैरतिबलैर्नामावशेषीकृताः ॥ ६३ ॥

कालः—

पुत्रप्रविलयाद्दुःखं न सोढुं शक्यते जनैः ।
वसिष्ठोऽपि महान्येन ववाञ्छ पतनं भृगोः ॥ ६४ ॥

तदिमं पुत्रशोकसंतप्तं यक्ष्माणमवेक्षितुं न शक्नोमि ।

६३—हे पुत्रो ! किनके मुख कमलों को प्रसन्न होकर मैं देखूंगा, मधु को भी तिरस्कृत करने वाले किनके वचनों को आनन्द से मैं सुनूंगा, मनुष्यों के शरीर में प्रविष्ट मुझको कौन जल्दी से बढ़ायेंगे, जिन तुमको अति बलवान शत्रुवों ने युद्ध में मार दिया (तुम्हारा नाम ही शेष रह गया है) ।

काल—६४—पुत्र के मरने का दुःख मनुष्यों से सहन किया जाना सम्भव नहीं है । जिस पुत्र शोक से महान वशिष्ठ ने भी भृगु-मेरु कूट से गिरकर मरने की इच्छा की थी ।

वक्तव्य—महाभारत के आदि पर्व में वशिष्ठ के पुत्र शोक की कथा दी हुई है । वशिष्ठ के पुत्र शक्ति ने कल्माषपाद नाम के राजा को मनुष्य का मांस खाने का एवं राक्षस होने का शाप दिया था । इस राजा ने राक्षस बनकर प्रथम वशिष्ठ के पुत्र शक्ति को खाया, फिर दूसरे पुत्रों को खाया । इस पुत्र शोक से दुःखी होकर वशिष्ठ ने मेरु की चोटी से गिरकर आत्म-हत्या करनी चाही थी । परन्तु वह वहाँ से बच गये, जिससे खिन्न होकर फिर तप में लग गये । (महाभारत आदि पर्व अ० १५३) ।

इस कारण से पुत्र शोक से दुःखी इस यक्ष्मा को मैं देख नहीं सकता ।

कर्म—अहमप्येवमेव ।

(इत्युभौ निष्क्रामतः ।)

मत्सरः—

देवालं शोकेन द्विषि जीवति न खलु धर्मोऽयम् ।
यावच्छक्ति ततोऽरीन्हत्वा शोचन्ति नैव तान्वीराः ॥६५॥

अत इदानीं परेषां पुनरानीय परिभवम्, अरिहतानामस्मदीयानामानृण्यमृच्छतु भवान् ।

विषूची—

दाणिं क्खु एव दिट्ठा राअकुमारा कहिं गदा तुम्हे ।
डज्झइ हिअअं सोओ अग्गी विअ सुक्कतिणजालम् ॥६६॥

[इदानीं खल्वेव दृष्टा राजकुमाराः कुत्र गता यूयम् ।
दहति हृदयं शोकोऽग्निरिव शुष्कतृणजालम् ॥]

कर्म—मैं भी इस प्रकार से इसको नहीं देख सकता ।

(इस प्रकार कहकर दोनों चले गये) ।

मत्सर—देव ! शोक मत करो, शत्रु के जीवित रहने पर यह धर्म नहीं है, इसलिये जब तक सामर्थ्य है, तब तक शत्रुवों को मार कर, धीर लोग मृत वीरों का शोक नहीं करते ।

वक्तव्य—गीता में भी है कहा—

गतासून गतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः ॥ गीता २।११
हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम् ।
तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः ॥ २।३७

इसलिये अब शत्रुवों को तिरस्कृत करके, शत्रुवों से मारे हुए हमारे सैनिकों का ऋण आप चुकता करें ।

विसूची—हे राजकुमारों (यक्ष्मा के पुत्रो) तुमको अभी मैंने देखा था, तुम कहां चले गये । शोक मेरे हृदय को जला रहा है, जिस प्रकार से अग्नि सूखे हुए तृण समूह को जलाती है ।

२०

यक्ष्मा—

गण्डद्वयेऽपि गलितैर्नयनाम्बुपूरै-
रामृष्टपत्रलतमाकुलकेशपाशम् ।
पाणिद्वयप्रहतपाटलबाहुमध्य-
मस्या वपुर्मम शुचं द्विगुणीकरोति ॥ ६७ ॥

मत्सरः—राजन्, धैर्यमवलम्ब्यताम् । कृतं शोकेन । सप्रति हि कतिपये देवपादमूलोपजीविनः सैन्याः केनापि दुरपनेयप्रवृत्तयः ।

यक्ष्मा—ततः किम् ।

मत्सरः—ततश्च तत्प्रयोगेण कुण्ठितशक्तिर्भविष्यति विज्ञानमंत्रि हतकः । तथा च वैरनिर्यातनं कर्तुमुचितमिति प्रतिभाति ।

यक्ष्मा—कथमिव ।

मत्सरः—(कर्णे) एवमिव ।

यक्ष्मा—दोनों गालों पर बहते हुए आंसुवों से पत्रलता (तमालपत्र के रस से बनाई चित्र रेखा) को धुला देखकर, बिखरे हुए केशपाशों से युक्तदोनों हाथों से पीटने के कारण लाल हुई छाती वाला इसका (विसूचीका) शरीर मेरे शोक को दुगना कर रहा है ।

मत्सर—राजन् ! धैर्य धारण करिये । शोक को छोड़िये ! क्योंकि आपकी सेवा में तत्पर कुछ सैनिक हैं, जिनकी प्रवृत्तियाँ किसी से भी हटाईं नहीं जा सकती हैं ।

यक्ष्मा—इससे क्या ।

मत्सर—उनकी प्रवृत्तियों से (चालों से) दुष्ट विज्ञानशर्मा मंत्री कुण्ठित शक्ति वाला हो जायेगा, इस प्रकार से बैर का बदला लेना मुझे उचित दीखता है ।

यक्ष्मा—किस प्रकार ।

मत्सर—(कान में कहता है) इस प्रकार से ।

यक्ष्मा—(सविमर्शम् ।) अवन्ध्योऽयं प्रयत्नः । तदर्थमेव शत्रून्मूलनाय गच्छामः । (इति विषूचीमत्सराभ्यां सह निष्क्रान्तः ।)

मंत्री—मत्सरेण कर्णेऽस्मज्जयार्थं किमप्युपदिष्टो यक्ष्मा निष्क्रान्तः तद्वयमपि तदिङ्गितानुमितं पर्यालोच्य तत्प्रतिविधानाय व्याप्रियमाणा इष्टं साधयामः ।

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे ।)

इति षष्ठोऽङ्कः ।

यक्ष्मा—(सोचकर) यह उपाय अचूक है । इसी से शत्रु को उखाड़ने के लिये हम जाते हैं ।

मंत्री—हमारी विजय के लिये, मत्सर के द्वारा कान में कुछ कहा हुआ यक्ष्मा चला गया है । इसलिये हम भी उसकी चेष्टाओं को अनुमान द्वारा उसे समझकर उसका प्रतिकार करने के लिये यत्न करते हुए इच्छित फल को प्राप्त करेंगे ।

(यह कह कर सब चले गये) ।

छठा अंक समाप्त हो गया ।

वक्तव्य—इसमें अगले अंग की कथा को चलाने के लिये 'अंकास्य' नामक अर्थोपक्षेपक है । यथा—

"अङ्कान्तपात्रैरङ्कास्यंछिन्नाङ्कार्थसूचना"—दशरूपक ।

सप्तमोऽङ्कः ।

(ततः प्रविशति जीवराजो विज्ञानमंत्री च ।)

जीवराजः— (सहर्षम् ।)

मंत्रिस्त्वदीयमतिकौशलनौबलेन
तीर्णो रणाम्बुधिरभूदतिदुस्तरोऽपि ।
यस्मिन्भयंकरगतिर्ज्वरपाण्डुमुख्यो
रोगव्रजः किल तिमिंगिलतामयासीत् ।। १ ।।

किं ब्रवीमि संकुलयुद्धेऽस्मदीयानां तदीयेषु प्रवृत्तमोजायितम् ।

एकत्र मण्डभेदो गुटिकाभेदः परत्र मन्दाग्निम् ।
निखिलामयजननकरं निजघान प्रथममिदमहमदर्शम् ।। २ ।।

सातवाँ अंक

(इसके पीछे जीवराजा और विज्ञानशर्मा मंत्री आते हैं ।

जीवराज— (आनन्द के साथ) ।

१—हे मित्र ! जिस महासमुद्र रूपी युद्ध में पूर्वरूप-रूप-उपशय-सम्प्राप्ति आदि से भयंकर गति वाले ज्वर, पाण्डु प्रधान रोग समूह थे, अति कठिनाई से पार किये जाने योग्य इस युद्ध को मैंने आपकी नौरूपी बुद्धि चातुर्य के बल से पार कर लिया है ।

समुद्र के पक्ष में—जिस समुद्र में भयंकर गतिवाली तिमींगिलगिल नामक मछली थी, कठिनाई से पार किये जाने वाले उस समुद्र को नाव की सहायता से मैंने पार कर लिया है ।

तुमुल युद्ध में हमारे पक्ष की औषधियों ने शत्रु पक्ष के रोगों में जो शौर्य दिखाया, उसके विषय में क्या कहूँ ?

२—एक पार्श्व में मण्ड के भेद थे, दूसरे पार्श्व मे गुटिकाओं के भेद थे, सम्पूर्ण रोगों को उत्पन्न करने वाली मन्दाग्नि को नाश किया, यह प्रथम मैंने देखा ।

अथ गुडूच्यादिपञ्चभद्रकषायौ निकषा यत्नवन्ताववलोक्य पलायन्त पित्तसमीरज्वराः । तदनन्तरं जगदन्तरप्रसिद्धः स्वयमनश्वरसारो यक्ष्मपरिक्षपणदक्षिणः सन्नपि संननाद स्वयं त्रैलोक्यचिन्तामणिर्विनिपाताय संनिपातेन साकमष्टविधानामपि ज्वराणाम् ।

वक्तव्य—चावल और जौ के भेद से मण्ड कई प्रकार का है । मण्ड बनाने की विधि—

सिक्थकैः रहितो मण्डः, मण्डश्चतुर्दशगुणे,
जले चतुर्दश गुणे तण्डुलानां चतुष्पलम् ।
विपचेत् स्रावयेन्मण्डं सभक्तो मधुरो लघुः ॥
नीरे चतुर्दशगुणे सिद्धो मण्डस्त्वसिक्थकः ।
शुण्ठी सैन्धवसंयुक्तः पाचनो दीपनः परः ॥
मण्डस्तु दीपयत्यग्निं वातं चाप्यनुलोमयेत् ।
मृदुकरोति स्रोतांसि स्वेदं संजनयत्यपि ।
लंघितानां विरिक्तानां जीर्णे स्नेहे च तृष्यताम् ।
दीपनत्वाल्लघुत्वाच्च मण्डःस्यात् प्राण धारणः ॥ च.सू.अ.२७

वटिका के नाम—"वटकश्चाथ कथ्यन्ते तन्नाम गुटिका वटी ।
मोदको वटिका पिण्डी गुडोवर्त्तिस्तथोच्यते ॥
लेहवत् साध्यते वह्नौ गुडो वा शर्कराथवः ।
गुग्गुलुर्वा क्षिपेतत्र चूर्णं तन्निर्मिता वटी ॥
कुर्याद् वह्नि सिद्धेन क्वचिद् गुग्गुलुना वटिम् ।
द्रवेण मधुनावापि गुटिका कारयेद् बुधः ॥ शार्ङ्गधर

मन्दाग्नि—सब रोगों को जनक है—"रोगा सर्वेऽपि मन्दाग्नौ"
(२) रोगानिकस्य ते मूलमजीर्णं प्राप्नुवन्ति हि ।"

और भी गुडूच्यादि कषाय और पंचभद्रकषायको अपने समीप में प्रयत्न करता हुआ देखकर पित्त वायु जन्य ज्वर भाग गये । इसके पीछे जगत में सर्वत्र प्रसिद्ध, स्वभाव से ही अप्रतिहत शक्ति, यक्ष्मा के नाश

करने में चतुर त्रैलोक्य चिन्तामणि सन्निपात के साथ आठों प्रकार के ज्वरों के नाश के लिये स्वय तैयार हुआ।

वक्तव्य—गुडूच्यादि कषाय—

गुडूचीधान्यकारिष्ट रक्तचन्दनपद्मकैः।
गुडूच्यादिगणक्वाथः सर्वज्वर हरः स्मृतः॥

(२) गुडूची सारिवा द्राक्षा शतपुष्पा पुनर्नवाः।
सगुडोऽयं कषायः स्याद् वातज्वर विनाशनः॥

पंचभद्र कषाय—गुडूचो पर्पटो मुस्तं किरातो विश्वभेषजम्।
वात पित्त ज्वरे देयं पंचभद्रमिदं शुभम्॥

आठ प्रकार का ज्वर—"अथ खलु अष्टाभ्यः कारणेभ्यो ज्वरः संजायते मनुष्याणाम्, तद्यथा—वातात्, पित्तात्, कफात् वातपित्ताभ्याम्, वात श्लेष्माभ्याम्, पित्त श्लेष्माभ्याम्, वातपित्तश्लेष्मभ्यः, आगन्त रोष्टमात्कारणात्॥

ज्वरोऽष्टधा पृथक् द्वन्द्व संघातागन्तुजः स्मृतः॥

त्रैलोक्य चिन्तामणि (ज्वराधिकार का)—

रसभस्मत्रयो भागा द्विभागञ्च भुजंगमम्।
कालकूटञ्च षड्भागं भागैकं तालकं तथा॥
गोदन्तं गगनं तुत्थं शिलागन्धक टङ्कणम्।
जयपालोन्मत्तदन्ती करवीरञ्च लांगली॥
पलाशमूलजैर्नीरैः सप्तधा भावितं दृढम्।
मात्स्यमाहिष मायूरच्छागवाराह डौण्डभम्॥
प्रत्येकं दशधामर्धं शिला खल्ले च संक्षयात्।
वटीं च सर्षपमितां शुद्ध वस्त्रेण धारयेत॥
दातव्यं चानुपानेन नारिकेलोदकेन च।
ताम्बूलञ्च ततो दद्यात् भक्ष्यं शीतोपचारकम्॥

त्रैलोक्य चिन्तामणि का दूसरा पाठ रसायनाधिकार में है। यथा—

रसंवज्रं हेमतारं ताम्रं तीक्ष्णाभ्रकं मृतम्।

स्थावरजङ्गमगरले ज्वरमामोत्थं व्रणोपजातं च ।
आरोग्यपूर्वचिन्तामणिरपि निघ्नन्मया रणे दृष्टः ॥ ३ ॥

गन्धकं मौक्तिकं शङ्खं प्रवालं तालकं शिला ॥
शोधितं च समं सर्वं सप्ताहं भावयेदनु ।
चित्रमूल कषायेण भानुदुग्धैः दिन त्रयम् ॥
निर्गुण्डी सूरणद्रवैः वज्रि दुग्धैः दिनत्रयम् ।
अनेन पूरयेत् सम्यक् पीतवर्णान् वराटकान् ।
टङ्कणंरविदुग्धेन पिष्ट्वा तेषां मुखं लिपेत् ।
रुद्ध्वा भाण्डे पुटेपश्चात् स्वांग शीतं विचूर्णयेत् ॥
चूर्ण तुल्यं मृतं सूतं वैक्रान्तं सूतं पादकम् ।
शिग्रुमूल द्रवैः सर्वं सप्तवारं विभावयेत् ॥
चित्रमूल कषायेण भावनाश्चैक विंशतिः ।
आर्द्रकस्य रसेनैव भावना सप्त कारयेत् ॥
सूक्ष्मचूर्णं ततः कृत्वा चूर्ण पादांश टङ्कणम् ।
टङ्कणांशं वत्सनाभं तत्समं मरिचं क्षिपेत् ॥
चतुर्गुञ्जामितं खादेत् कणाक्षौद्रं लिहेदनु ।
क्षौद्रेर्वाऽऽर्द्रकद्रावैः शुण्ठ्या वाथ गुडैर्युतम् ॥

....

साध्यासाध्यरुजो निहन्ति च रसः त्रैलोक्यचिन्तामणिः ॥
योगरत्नाकर ।

३—स्थावर विष, जंगम विष, आम ज्वर और व्रण जन्य ज्वर को मारते हुए आरोग्य चिन्तामणि को युद्ध में मैंने देखा ।

वक्तव्य—स्थावर विष दस प्रकार का है, यथा—

मूलं पत्रं फलं पुष्पं त्वक् क्षीरं सार एव च ।
निर्यासो धातवश्चैव कन्दश्च दशमः स्मृतः ॥

जंगम विष सोलह प्रकार का है—यथा ।

दृष्टि-निःश्वास-दंष्ट्रा-नख-मूत्र-पुरीष-शुक्रारा - लाला-स्पर्श - मुखदंश-पर्दित-गुदास्थि-पित्त-शूक-शव भेदात् षोडष भवन्ति ॥

आम ज्वर का लक्षण—

लालाप्रसेको हल्लास हृदयाशुद्ध्यरोचकाः ।
तन्द्रालस्याविपाकास्य वैरस्यं गुरुगात्रता ॥
क्षुन्नाशं बहुमूत्रत्वं स्तब्धता बलवान् ज्वरः ।
आम ज़्वरस्य लिंगानि················ ॥ माधव निदान

व्रणजन्य ज्वर—विसर्पः पक्षघातश्च सिरास्तम्भोऽपतानकः ।
मोहोन्माद व्रणरुजो ज्वरस्तृष्णा हनुग्रहः ॥
कासश्चछर्दिरतीसारो हिक्काश्वासः सवेपथुः ।
षोडशोपद्रवाः प्रोक्ता व्रणानां व्रण चिन्तकैः ॥

चिन्तामणि रस—(आरोग्य चिन्तामणि रस का पाठ पीछे छठे अंक में ८०वें श्लोक में आ गया है) यहां पर भैषज्य रत्नावली के ज्वराधिकार का पाठ दिया हैं—

(१) रसंगन्धं मृतं ताम्रं मृतमभ्रं फलत्रिकम् ।
त्र्यूषणं दन्ती बीजञ्च समं खल्ले विमर्दयेत् ॥
द्रोणपुष्पी रसैः भाव्यं शुष्कं तदुपपालितम् ।
चिन्तामणि रसो ह्येषु त्वजीर्णे शस्यते सदा ॥
ज्वरमष्टविधं हन्ति सर्वं शूल विसूदनः ॥

(२) रस विष गन्धकटङ्कण ताम्रयवक्षारकं व्योषम् ।
तालकफलत्रयञ्च क्षौद्रं दत्त्वाशतं वारान् ॥
संमर्द्य रक्तिकमिता वटिका कुर्याद् भिषक् प्राज्ञः ।
शुण्ठी पिष्ठेन सममेकां द्वे वाथ वा तिस्रः ॥
संप्राश्य नारिकेलीजलमनुपेयं प्रयुञ्जीत ।
भेदानन्तरमेव प्रक्षालित भक्ततक्रमुपयोज्यम् ॥
शेषात् सैन्धव जीरं तक्रं भक्तं प्रयोक्तव्यम् ।
प्रशमयति सन्निपात ज्वरं तथा जीर्णं विषमञ्च ॥

ततः सर्वज्वरानपि निगृहीतवन्तं जराङ्कुशमुत्तरेण गुल्मार्शः संग्रहग्रहिणीर्विपाटितवतो ग्रहिणीकपाटस्य पूर्वभागे—

या पञ्चामृतपर्पटी ग्रहणिकायक्ष्मातिसारज्वर-
स्त्रीरुक्पाण्डुगराम्लपित्तगुदजक्षुन्मान्द्यविध्वंसिनी ।

सब प्रकार के—आठों प्रकार के ज्वर को मारते हुए ज्वरांकुश को उत्तर भाग में और गुल्म-अर्श- संग्रहग्रहणी को नाश करते हुए ग्रहणी कपाट को पूर्व भाग में मैंने देखा ।

वक्तव्य—ज्वरांकुश—इसके कई पाठ है, पीछे ८०वें श्लोक में एक पाठ दिया है, दूसरा पाठ—

रसस्य द्विगुणं गन्धं गन्धतुल्यञ्च टङ्कणम् ।
रसतुल्यं विषं योज्यं मरिचं पञ्चधा विषात् ॥
कट्फलं दन्तीबीजञ्च प्रत्येकं मरिचोन्मितम् ।
ज्वरांकुश रसोह्येष चूर्णयेदतिचिक्कणम् ॥

संग्रहणी—अंत्रकूजनमालस्यं दौर्बल्यं सदनं तथा ।
द्रवं शीतं घनं स्निग्धं सकटो वेदनं शकृत् ॥
आमं बहु सपिच्छलं सशब्दं मन्द वेदनम् ।
पक्षान्मासाद्दशाहाद्वा नित्यं वाप्यथ मुञ्चति ॥
दिवा प्रकोपो भवति रात्रौ शान्ति व्रजेच्च सा ।
दुर्विज्ञेया दुश्चिकित्स्या चिरकालानुबन्धिनी ।

ग्रहणी कपाट रस—

रसेन्द्रगन्धातिविषाभयाभ्रं क्षारत्रयं मोचरसो वचा च ।
जया च जम्बीर रसेन पिष्टं पिण्डी कृतं स्याद्ग्रहणीकपाटः ॥

इसके अतिरिक्तभैषज्य रत्नावली में ग्रहणीकपाट के चार पाठ और हैं । परन्तु ऊपर का पाठ अधिक प्रसिद्ध है ।

४—जो पंचामृत पर्पटी-ग्रहणी-यक्ष्मा-अतीसार ज्वर-स्त्री रोग, पाण्डु रोग-गर (विष), अम्लपित्त, अर्श, अग्निमान्द्य को नाश करती थी, उसको भी मैंने देखा । स्त्री होते हुए भी यह युद्ध में पराक्रम दिखा रही

तामद्राक्षमहं रणे स्त्रीयमपि व्यातन्वतीं पौरुषं
चामुण्डामिव चण्डमुण्डसमरप्रक्रान्तदोर्विक्रमाम् ॥ ४ ॥

पश्चाद्भागे तस्याः

अरुचिप्लीहवमिज्वरकासार्शः श्वासशूलानाम् ।
सूक्ष्मैलादिमचूर्णं निरवर्णयमाशु युद्ध निहन्तारम् ॥ ५ ॥

थी, चण्ड-मुण्ड के युद्ध में प्रकटित भुजाओं के पराक्रम वाली चामुण्डा के समान यह अपना पराक्रम युद्ध में दिखा रही थी।

वक्तव्य—पंचामृत पर्पटी—

"अष्टौ गन्धक तोलका रसदलं लौहं तदर्धं शुभम् ।
लौहार्धञ्च वराभ्रकं सुविमलं ताम्रं तदभ्रार्द्धिकम् ॥
पात्रेलौह मये च मर्दन विधौ चूर्णीकृतञ्चैकतः ।
दर्व्याबादरवन्हिनातिमृदुना पाकं विदित्वा दले ॥
रम्भाया लघु ढालयेत् पटुरियं पञ्चामृता पर्पटी ॥ भै. र.

योग रत्नाकर में दिये पाठ में, द्रव्य यही हैं परन्तु मान में अन्तर है—यथा—

लोहाभ्रार्करसं समं द्विगुणितं गन्धं पचेत् कोलिका-
काष्ठाग्नौ मृदुलं निधाय सकलं लौहस्य पात्रेभिषक् ॥

अम्लपित्त—

विरुद्धदुष्टाम्लविदाहि पित्त प्रकोपपानान्नभुजो विदग्धम् ।
पित्तं स्वहेतूपचितं पुरायत्तदम्लपित्तं प्रवदन्ति सन्तः ॥

इसके पिछले भाग में—

५—अरुचि, प्लीहा, वमन, ज्वर, काश, अर्श, श्वास और शूल रोगों को युद्ध में मारते हुए सूक्ष्मैलादि चूर्ण को मैंने देखा।

वक्तव्य—सूक्ष्मैलादि चूर्ण—

सूक्ष्मैला पिप्पलीमूलं चव्य चित्रक नागरम् ।
मरिचं दीप्यकं चैव वृक्षाम्लं चाम्लवेतसम् ॥
अजमोदाजगन्धा च कपित्थं चार्ध कार्षिकम् ।

तदनु जलजाक्ष इव दनुजलोकस्य, सिद्धयोगः शूक्रदोषस्य, * गोक्षुरकादिचूर्ण मिश्रितपयः पानविधिः पुंस्त्वदोषस्य, त्रिविक्रमरसो मूत्रकृच्छ्राश्मर्योर्विष्यन्दन-तैल योगो भगंदरस्य, लघुलङ्केश्वरः कुष्ठस्य, नित्योदितरसो मूलानां; विद्याधररसो गुल्मानां त्रिनेत्ररसः शूलानां; महावह्निरस उदररोगाणां; गिरिकर्ण्यादिविविधगुञ्जातैललेपश्च शिरोरोगस्य; चन्द्रोदयवर्तिश्च चक्षूरोगस्य सौभाञ्जनादिपक्वतैलानिषेकः कर्णरोगाणां; सिद्धार्थत्रिफलाद्यौषधयोगविशेषपान-विधिः कृत्योन्मादविषज्वरसर्वग्रहाणां; मधुसर्पिर्युतचूर्णविशेषलेहनविधिः पाण्डुहृद्रोगभगन्दरशोफकुष्ठोदरार्शसां मेहकुञ्जरकेसरीप्रमेहाणां च विजय-महोत्सवेन समुत्सारितसर्वरोगखेदाः समस्तजनैरप्यस्तूयन्त । ततः किमप्य-वशिष्यते कार्यमस्माकम् ।

अत्यन्त परिशुद्धायाः शर्करायाश्चतुष्पलम् ॥
चूर्णं सेव्यमिदं कर्षं परम रुचिवर्धनम् ।
प्लीहकासावथार्शांसि श्वासं शूल वमि ज्वरम् ।
निहन्ति दीपयत्यग्निं बलवर्णकरं परम् ॥

इसके पीछे मधु-कैटभ आदि राक्षसों के लिये विष्णु की भांति, शूक्र रोगों के लिये सिद्ध योग को, पुंस्त्व दोष के लिये गोक्षुरकादि चूर्ण मिश्रित दूध के पीने का, मूत्रकृच्छ्र और अश्मरी के लिये त्रिविक्रम रस को, भगन्दर के लिये विष्यन्दन तैल को, कुष्ट के लिये लघुलंकेश्वर को, अर्श के लिये नित्योदित रस को, गुल्म के लिये विद्याधर रस को, शूल के लिये त्रिनेत्र रस को, उदर रोगों के लिये महावह्नि रस को, शिरो रोग के लिये गिरिकर्ण्या आदि नाना प्रकार के गुञ्जा तैल और लेप, आँख के रोगों के लिये चन्द्रोदयवर्त्ति को, कर्ण रोग के लिये सुहांजन आदि से पक्व तैल के डालने को, कृत्या-उन्माद-विष ज्वर और सब ग्रहों के लिये सरसों, त्रिफला औषध योग विशेष की पान विधि को, पाण्डु-हृदरोग-भगन्दर-शोफ कुष्ट-

---

* पाठान्तर में—"सिद्धवसन्तः शुक्रदोषस्य" पाठ भी निर्णयसागर तथा जयपु की पुस्तकों में है। इसके लिये सिद्धवसन्त से वसन्त कुसुमाकर लेना चाहिए। वसन्तकुसुमाकर का पाठ छठे अंक के ३८वें श्लोक में दिया है।

उदर और अर्श के लिये मधु-घृत से मिश्रित चूर्ण विशेषों के चाटने की प्रक्रिया को, प्रमेहों के लिये मेह कुञ्जर केशरी को, सम्पूर्ण रोगों को नष्ट करते हुए एवं विजयोत्सव में समस्त जनों से पूजित होते हुए मैंने देखा। इसलिये अब हमारा और कौन सा कार्य शेष रह गया।

वक्तव्य—इसमें आये हुए रोगों का सामान्य परिचय—

शूक रोग—अक्रमाच्छेफसो वृद्धिं योऽभिवाञ्छति मूढधीः।
व्याधयस्तस्य जायन्ते दश चाष्टौ च शूकजाः॥

पुंस्त्व दोष—से क्लीवता या शुक्र दोष लिये हैं, यथा—सुश्रुत में क्लीवता छः प्रकार की बताई है, यथा—

तैस्तैर्भावैरहृद्यैस्तु रिरंसोर्मनसि क्षते।
द्वेष्य स्त्री संप्रयोगाच्च क्लैब्यं तन्मानसं स्मृतम्॥
कटुकाम्लोष्णलवणैरतिमात्रोपसेवितैः।
सौम्य धातुक्षयो दृष्टः क्लैब्यं तदपरं स्मृतम्॥
अतिव्यवायशीलो यो न च वाजीक्रियारतः।
ध्वजभंगमवाप्नोति तच्छुक्रक्षय हेतुजम्॥
महतामेढ्ररोगेण मर्मछेदेन वा पुनः।
क्लैब्यमेतच्चतुर्थं स्यात् नृणापुंस्त्वोपघातजम्॥
जन्मप्रभृति यः क्लीवः क्लैब्यं तत् सहजं मृतम्।
वलिनः क्षुब्धमनसो निरोधाद् ब्रह्मचर्यतः।
षष्ठं क्लैब्यं मतं तत्तु खरशुक्रनिमित्तजम्॥

चरक में क्लीवता चार प्रकार की बताई है—

बीजध्वजोपघाताभ्यां जरयाशुक्रसंक्षय त्।
क्लैब्यं संपद्यते तस्य.................॥

शुक्र के आठ दोष—फेनिलं तनु रूक्षं च विवर्णं पूतिपिच्छिलम्।
अन्यधातूपसंसृष्टमवसादि तथाऽष्टमम्॥

मूत्रकृच्छ्र—"व्यायाम तीक्ष्णौषधरूक्षमद्य प्रसंगनित्य द्रुतपृष्ठयानात्।
आनूपमत्स्याध्यशनादजीर्णात् स्युर्मूत्रकृच्छ्राणि नृणामिहाष्टौ॥

पृथङ् मलाः स्वैः कुपिता निदानैः सर्वेऽथवा कोपमुपेत्यवस्तौ ।
मूत्रस्य मार्गं परिपीडयन्ति यदा तदा मूत्रयतीह कृच्छ्रात् ॥

भगन्दर—गुदस्य द्वयङ्गुलेदेशे पार्श्वतः पिडकार्त्तिकृत् ।
भिन्नाभगन्दरोज्ञेयः .... ॥

अर्श—अर्शांसि इति अधिमांस विकाराः । तदस्त्यधिमांस देशतया गुदवलिजानां त्वर्शांसि इति संज्ञा तंत्रेऽस्मिन् । सर्वेषां चार्शसामधिष्ठानं—मेदोमांसं त्वक् च ॥ चरक.

गुल्म—गुपितानिलमूलत्वाद् गूढमूलोदयादपि ।
गुल्मवद् वा विशालत्वात् गुल्म इत्यभिधीयते ॥
पक्वाशये पित्तकफाशये वा स्थितः स्वतन्त्रः परसंश्रयो वा ।
स्पर्शोपलभ्यः परिपिण्डतत्वाद् गुल्मो यथा दोषमुपैति नाम ॥

शूल—शंकु स्फोटनवत्तस्य यस्मात्तीव्राहि वेदना ।
शूलासक्तस्य भवति तस्माच्छूलमिहोच्यते ॥
दोषैः पृथक् समस्तामद्वन्द्वैः शूलोऽष्टधा भवेत् ।
सर्वेष्वेतेषु शूलेषु प्रायेण पवनः प्रभुः ॥

उदर रोग—मन्देऽग्नौ मलिनैर्भुक्तेरपाकाद्दोषसंचयः ।
प्राणाग्न्यपानान् संदूष्य मार्गान् रुद्ध्वाऽधरोत्तरान् ॥
त्वङ् मांसान्तरमागत्य कुक्षिमाध्मापयन् भृशम् ।
जनयत्युदरं तस्य हेतुं शृणु सलक्षणम् ॥ चरक.

शिरो रोग—संधारणाद्दिवास्वप्नाद् रात्रौ जागरणान्मदात् ।
उच्चैर्भाष्यादवश्यायात् प्राग्वातादतिमैथुनात् ॥
गन्धादसात्म्यादाघ्राताद् रजोधूमहिमातपात् ।
गुर्वम्लहरितादानादतिशीताम्बुसेवनात् ॥
शिरोऽभिघाताद् दुष्टामाद्रोदनाद् वाष्पनिग्रहात् ।
मेघागमात्मनस्तापाद् देशकालविपर्ययात् ॥
वातादयः प्रकुप्यन्ति शिरस्यस्रं च दुष्यति ।
ततः शिरसि जायन्ते रोगा विविधलक्षणाः ॥

कुष्ठ—"वातादयस्त्रयो दुष्टास्त्वग् रक्तं मांसमम्बु च।
दूषयन्ति स कुष्ठानां सप्तको द्रव्यसंग्रह ॥

अश्मरी—विशोषयेद्वस्तिगत स शुक्रं मूत्रं सपित्तं पवनः कफं वा।
यदा तदाऽश्मर्युपजायतेतु क्रमेण पित्तेष्विव रोचना गोः ॥

नेत्र रोग—अल्पस्तु रागोऽनुपदेहवांश्च सतोदभेदोऽनिलजाक्षि रोगे।
पित्तात् सदाहोऽतिरुजः सरागःपीतोप देहः सुभृशोष्ण दाही ॥
शुक्लोपदेहं बहुपिच्छलाश्रु नेत्रं कफात् स्याद् गुरुता स कण्डुः।
सर्वाणि रूपाणि तु सन्निपातान्नेत्रामयाः षण्णवतिस्तु भेदात् ॥

कर्ण रोग—नादोऽतिरुक्कर्णमलस्य शोषःस्रावस्तनुश्चाश्रवणं च वातात्।
शोफः सरागोदरणं विदाहः सपीतपूतिस्रवणं च पित्तात् ॥
वैश्रुत्य कण्डूस्थिर शोफ शुक्ल स्निग्ध स्रुतिश्लेष्म भवेऽल्परुक् च।
सर्वाणि रूपाणि तु सन्निपातात् स्रावश्चतत्राधिक दोष वर्णः ॥ चरक॰

कृत्या—अभिचारिकी क्रिया।

सर्वग्रह—स्कन्दापस्मार आदि—ग्रहाविष्ट बालक के लक्षण—
क्षणादुद्विजते बालः क्षणात् त्रस्यति रोदति।
नखैर्दन्तैर्दारयति धात्रीमात्मानमेव च ॥
ऊर्ध्वं निरीक्षते दन्तान् खादेत कूजति जृम्भते।
भ्रुवौ क्षिपति दन्तौष्ठं फेनं वमति चासकृत् ॥
क्षामोऽति निशि जागर्त्ति शूनाक्षो भिन्न विट्स्वरः।
मांसशोणित गन्धिश्च न चाश्नाति यथा पुरा ॥
सामान्यं ग्रहजुष्टानां लक्षणं समुदाहृतम् ॥

जिन योगों का नाम ऊपर आया है—

सिद्ध योग—शुद्धं सूतं द्विभागन्धं कुर्यात् खल्वेन कज्जलीम्।
तयोःसमं तीक्ष्णचूर्णं मर्दयेत् कन्यकाद्रवैः ॥
द्वि यामान्ते कृतं गोलं ताम्रपात्रे विनिक्षिपेत्।
आच्छाद्यैरण्डपत्रेण यामार्धेऽत्युष्णता भवेत् ॥

धान्यराशौन्यसेत् पश्चादहोरात्रात समुद्धरेत् ।
संचूर्ण्य गालयेद् वस्त्रे ध्रुवं वारितरं भवेत् ॥
भावयेत् कन्यकाद्रावैः सप्तधा भृंगजैस्तथा ।
काकमाची कुरण्टोत्थद्रवैः मुण्ड्या पुनर्नवैः ॥
सहदेव्यमता नीली निर्गुण्डी चित्रजस्तथा ।
सप्तधातु पृथक् द्रावैः भाव्यं शोष्यं तथातपे ॥
सिद्धयोगो ह्ययं ख्यातः सिद्धानां च मुखागतः ॥ शांर्गधर

गोक्षुरादि चूर्ण—

गोक्षुरकः क्षुरकः शतमूली वानरीनागबलाति बला च ।
चूर्णमिदं पयसा निशि पेयं यस्य गृहे प्रमदाशतमस्ति ॥ चक्रदत्त

त्रिविक्रम रस—मृतताम्रमजाक्षीरैः पाच्यं तुल्यं गतेद्रवे ।
तत्ताम्रं शुद्ध सूतञ्च गन्धकञ्च समे समम् ॥
निर्गुण्डी स्वरसैमर्द्यः दिनं तद् गोलकीकृतम् ।
यामैकं वालुका यन्त्रे पक्त्वा दत्वार्धगुञ्जकम् ॥
बीजपूरस्य मूलञ्च सजलञ्चानुपाययेत ।
रसस्त्रिविक्रमो नाम शर्कराश्मरी जयेत् ॥ भैषज्य रत्नावली

विष्यन्दन तैल—चित्रकार्कौ त्रिवृत्पाठे मलपूहयमारकौ ।
सुधा वचां लांगलिकीं हरितालं सुवर्चिकाम् ॥
ज्योतिष्मतीञ्च संहृत्य तैलं धीरो विपाचयेत् ।
एतद् विष्यन्दनं नाम तैलं दद्यात् भगन्दरे ॥ भैषज्य रत्नावली

लघु लंकेश्वर रस—

सताभ्रशुल्वानिचमारितानि सगन्धकं तालशिलाद्रवौ च ।
विषाम्लवेतौ च समं समस्तं दिनत्रय चाम्लरसैर्विपेष्यम् ॥
समाक्षिकेणैव मृतेन कुर्याद् वटीं द्विगुञ्जां च शतारुहन्त्रीम् ।
लंकेश्वराख्यस्तु रसः प्रसिद्धो निहन्ति कुष्टान् विविधान् लघु सः ॥
रस कामधेनु

नित्योदित रस—मृतसूतार्क लौहाभ्र विष गन्धं समं समम् ।
सर्वतुल्यांशभल्लातफलमेकत्र चूर्णयेत् ॥
द्रवैः सूरण कन्दोत्थैः भाव्यं खल्ले दिनत्रयम् ।
माषमात्रं लिहेदाज्यं रसश्चार्शांसि नाशयेत् ॥
रसो नित्योदितो नाम गुदोद्भव कुलान्तकः ॥ भैषज्य रत्नावली

विद्याधर रस—पारदं गन्धकं तालं ताप्य सुवर्ण मनःशिलाम् ।
कृष्णा क्वाथैः स्नुहीक्षीरैः दिनैकं मर्दयेद् दृढम् ॥
निष्कार्धं श्लैष्मिकं गुल्मं हन्ति विद्याधरो रसः ॥ भै. र.

त्रिनेत्र रस—रस गन्धाभ्रभस्मानि पार्थ वृक्षत्वगम्बुना ।
एकं विंशतिधा घर्मे भावितानि विधानतः ॥
वटीगुञ्जामितां कृत्वा मधुनासह लेहयेत् ।
वातजं पित्तजं श्लेष्म सम्भूतं वा त्रिदोषजम् ॥
कृमिजं च हृदरोगं च निहन्त्येव न संशयः ॥ भै० र०

(२) रसताम्रगन्धकानां द्विगुणान्तरवर्धितांशानाम् ।
दृढखल्वविमर्दितानां पुटपाकानां निशेवितं भस्म ॥
गुञ्जा प्रमाणमार्द्राक सिन्धूद्भव चूर्ण संयुक्तम् ।
सैरण्ड तैलमाक्षिकमथवा तद्हिंगुदुग्धकोपेतम् ॥
शमयतिशूलमशेषं तत्तद्रस भावितं वहुशः
उपचूर्णैरनुपानैस्तैस्तैः सहितं कफानिलार्त्ति हरम् ॥
सघृतमधु पक्तिशूलं शमयति नाम्ना त्रिनेत्ररसः ॥रससार सं०

महावह्निरस—चतुस्सूतस्य गन्धाष्टौ रजनी त्रिफला निशा ।
प्रत्येकं च द्विभागंस्यात् त्रिवृज्जैपाल चित्रकम् ॥
प्रत्येकं च त्रिभागंस्यात् त्र्यूषणं दन्तिजीरके ।
प्रत्येकमष्टभागंस्यादेकी कृत्य विचूर्णयेत् ॥
जयन्ती स्नुकपयो भृङ्ग वह्निवातारितैलकैः ।
एकैकस्मिन् क्रमाद्भाव्यं सप्तवारं पृथक् पृथक् ॥
महावह्निरसो नाम निष्कमुष्ण जलैः पिवेत् ।

विरेचनं भवेत्तेन तक्रं भक्तं ससैन्धवम् ।
सर्वोदरहरः प्रोक्तो मूढवातहरः परः ॥ शार्ङ्गधर

गिरिकर्ण्यादिविधि—मूलं तु गिरिकर्ण्यास्तु शुण्ठी क्वाथेन पेषयेत् ।
सकुंकुमं सहारिद्रं तेनाथ क्वथितेन च ॥
लेपः शिरसि कर्त्तव्यः शिरोरोग प्रशान्तये ॥ वैद्य चिन्तामणि

गुञ्जा तैल—गुंजाफलैः श्रृतं तैलं भृङ्गराजरसेन च ।
कण्डूदारुण हृत्कुष्ठ कपाल व्याधिनाशनम् ॥ गदनिग्रह

चन्द्रोदयवर्त्ति—शंखनाभिर्विभीतस्य मज्जा पथ्या मनःशिला ।
पिप्पलीमरिचं कुष्ठं वचाचेति समांशकम् ॥
छागीक्षीरेण संपेष्य वर्त्तिंकृत्वायवोन्मिताम् ।
हरेणुमात्रां संघृष्य जलैः कुर्यादथांजनम् ॥
तिमिरं मांसवृद्धिंच काचं पटलमर्बुदम् ।
रात्र्यन्ध्यं वार्षिकं पुष्पं वर्त्तिश्चिन्द्रोदयो योजयेत् ॥

शोभांजनादि तैल—शोभांजनस्य निर्यासः तिल तैलेन पाचितः ।
सरामठः कर्णरोग शान्तये कर्णपूरकः ॥ भैषज्यरत्नावली

सिद्धार्थादि विधि—सिद्धार्थको हिंगुवचा करंजौ देवदारु च ।
मंजिष्टा त्रिफलाश्वेता कटभीत्वक् कटुत्रिकम् ॥
समांशानि प्रियंगुश्च शिरीषो रजनीद्वयम् ।
वस्तमूत्रेण पिष्टोऽयमगदः पानमंजनम् ॥
नस्यमालेपनं चैव स्नानमुद्वर्त्तनं तथा ।
अपस्मारविषोन्माद कृत्या लक्ष्मी ज्वरापहः ॥चक्रदत्त

चूर्ण विशेष से अभिप्राय नवायस चूर्ण से है ; नवायस चूर्ण का पाठ—

त्र्यूषणत्रिफलामुस्तविडंगदहनासमाः ।
नवायसरजोभागस्तच्चूर्णमधुसर्पिषा ॥
भक्षयेत् पाण्डु हृद्रोग कुष्ठार्शशमनं परम् ॥ गदनिग्रह

मेह कुञ्जर केसरी का पाठ छठे अंक के ८६ वें श्लोक में दिया है ।

मन्त्री—स्वामिन्, श्रूयताम्।

जन्यार्णवोऽरिजनितः सुमहानिदानीं
तीर्णोऽप्यतीर्ण इति निश्चिनुते मनो मे।
यन्मत्सरेण रणभुव्युपदिष्टकार्यः
कर्णे स तत्परमितो विदधीत यक्ष्मा॥ ६॥

राजा—विज्ञानसचिव यथार्थनामधेय, मत्सरेण यक्ष्मणः कर्णे किमुक्तं भवेत्। यक्ष्मा च तदाकर्ण्य किं विदध्यात्। तद्विधानेन चास्माकमुत्तिष्ठेत कीदृशमत्याहितम्।

मन्त्री—(क्षणं विचिन्त्य।) किमन्यत्; ब्रवीमि। केचिदसाध्यरोगा यक्ष्माणमुपासते तैरस्मान्बाधितुं यक्ष्माणं प्रति मत्सरेण संकेतितमिति शंके।

वहाँ पर जो पाठ है, उसके सिवाय रसरत्न समुच्चय में निम्न दूसरा पाठ भी है। परन्तु प्रसिद्ध पहिला है।

चाण्डाली राक्षसीपुष्परस मध्वाज्यटङ्कणम्।
रसं समांशोपरसं समं हेम्नाविमर्दितम्।
समांशं पूतिलौहं वा मूषायां विपचेद् दिनम्।
प्रमेहगजसिंहोऽयं माषद्वयमितां हरेत्।
मेहान् ··· ··· ··· ··· ··· ··· ···॥ रसरत्नसमुच्चय

मंत्री—स्वामिन्-सुनिए।

६—शत्रु से उत्पन्न अति विशाल समुद्र रुपी युद्ध को इस समय पार किये होने पर भी मेरा मन इसे बिना पार किया निश्चय कर रहा है। क्योंकि रण भूमि में मत्सर से कान में कहे हुए कार्य को इसके आगे यक्ष्मा करेगा।

राजा—विज्ञान सचिव! तुम अपने नाम के अनुकूल ही हो, मत्सर ने यक्ष्मा के कान में क्या कहा होगा? और यक्ष्मा वह सुन कर क्या करेगा। उसके वैसा करने से हमारा क्या महान अनिष्ट हो सकता है।

मंत्री—(थोड़ा सोचकर) दूसरा क्या? कहता हूँ। कुछ असाध्य

राजा—(सवितर्कम् ।) एवमेवास्मासु यक्ष्मा यदि वक्रं विधिमुपक्रंस्यते तत्र कमुपायं पश्यति भवान् ।

मन्त्री—

भक्तायमया कदाचिद् भवते दर्शिष्यते साम्बः ।
इतिभगवत्या मह्यं जातुचिदावेदितं भक्त्या ॥७॥

इति कदाचित्कथान्तरे देवेनैव मां प्रति प्रागुक्तम् । तदिदानीं तामेव भगवतीं भक्तिं हृदि दृढमवलम्ब्य भगवद्दर्शनाय संनिधानानुग्रहः प्रार्थ्यताम् । तत एवासाध्यरोगाभिभवः सुलभः प्रतिभाति ।

राजा—यद्येवमनुध्याय विध्यादिविबुधकृतनिषेवणं करोमि मनसा शरणं शंकरम् । (इत्यनुध्यायति ।)

मन्त्री—आश्चर्यमाश्चर्यम् । भक्तवत्सलता भगवतश्चन्द्रचूडस्य परां

रोग यक्ष्मा की सेवा करते हैं। उनके द्वारा हमको कष्ट देने के लिये मत्सर ने यक्ष्मा को इशारा किया होगा, ऐसा मेरा अनुमान है।

राजा—(कुछ सोचते हुए) यदि इस प्रकार से यक्ष्मा हमारा बुरा करना चाहेगा, तो इसके लिये आप क्या उपाय सोचते हैं।

मंत्री—७—शिवभक्त तुमको किसी अवसर पर मुझ शिवभक्ति से पार्वती-सहित शिव प्रत्यक्ष कराये जायेंगे, ऐसा भगवति शिवभक्ति ने पहिले कभी मुझ—जीवराज को कहा था। कभी आपने दूसरे प्रसंग में ऐसा मुझे पहिले बताया था। इसलिये अब इस समय उसी भगवति भक्ति को हृदय में दृढ़ता से धारण करके भगवान परमेश्वर के दर्शन के लिये उनके समीप पहुँचने का अनुग्रह करने के लिये (साक्षात्कार करने के लिए) प्रार्थना कीजिये। उससे ही असाध्य रोगों को पराजित करना सुगम दीखता है।

राजा—यदि ऐसा है, तो ब्रह्मा आदि देवताओं ने जिसकी उपासना की है, उस शिव की उपासना करके उस भगवान शंकर की शरण में मना योग के साथ जाता हूँ। (मन से भगवान का ध्यान करता हूं)।

मंत्री—आश्चर्य है, आश्चर्य है, भगवान शंकर का भक्तों पर स्नेह

कोटिमवलम्बते । यदनुध्यानमात्रमनुतिष्ठति स्वामिनि तदाविर्भावसूचनमेतदालक्ष्यते । यत्किल;

शैलस्थूलशिरोभिरुग्रभुजगप्रायश्रवोभूषणै-
र्जानुस्पर्शिबृहत्प्रचण्डचटुलैस्तालद्रुदीर्घाङ्घ्रिभिः ।
प्रावृण्णैशतमिस्रनीलतनुभिर्भस्मत्रिपुण्ड्रांकितैः
शूलोद्भासिभुजैः समावृतमिदं भूतैरभूद्भूतलम् ॥ ८ ॥

अतिशय रूप में है। इसीसे स्वामि द्वारा मन में ध्यान करने मात्र से ही उसके प्रगट होने की सूचना दीखने लगी। जो कि—

८—पर्वत के समान मोटे सिर वाले भयानक सर्पों को कान के आभूषणों के रूप में धारण किये, जानु को छूने वाले बहुत बड़े पेट के, ताड़ वृक्ष के समान लम्बी अगुलियों के; वर्षा कालीन रात्रि के अन्धकार के समान नील वर्ण वाले शरीर पर भस्म से त्रिपुण्ड्र लगाये; भुजाओं में शूल लिये हुए भूतों से यह सामने दीखने वाला पृथ्वी तल भर गया है।

वक्तव्य—शिव के लिये भूतपति शब्द काव्यों में आया है। सुश्रुत में भी देवों के गुणों का उल्लेख है; यथा—

तेषां ग्रहाणां परिचारका ये, कोटी सहस्रायुत पद्मसंख्या ।
असृग्वसा मांसभुजः सुभीमा निशाविहाराश्च तमाविशन्ति ॥
हिंसा विहारा ये केचिद् देवभावमुपाश्रिताः ।
भूतानीतिकृत्वा संज्ञा तेषां संज्ञा प्रवक्तृभिः ॥
ग्रहसंज्ञानि भूतानि यस्माद्वेत्त्यनया भिषक् ।
विद्यया भूतविद्यात्वमत एव निरुच्यते । सुश्रुत

शिव के लिये भूतपति शब्द—१—स्त्री संनिकर्षं परिहर्त्तुमिच्छन् अन्तर्दधे भूतपतिः सभूतः ॥ कुमार सम्भव (३-८४);

२—तद्भूतनाथानुगः, रघुवंश (२-५८)

मालती माधव में -

एतत्पूतनचक्रमक्रमकृतग्रासार्धमुक्तैर्वृका—
नुत्पुष्णत्परितो नृमांसविधसैराघर्घरं क्रन्दतः ।

राजा—(ध्यानाद्विरम्य कर्णं दत्त्वा।) अहो भाग्यप्रकर्षो जीवलोकस्य । यतः :—

'जय विश्वपते जयेन्दुमौले जय शम्भो जय शंकरेति शंसन् ।
परितः श्रुतिगोचरो जनानां कलुषं लुम्पति काहलीनिनादः ॥ ९ ॥

मन्त्री—(सहर्षम् ।) राजन्, फलितस्ते मनोरथः । पश्य पश्य ।

आरूढः स्फाटिकक्ष्माधरनिभवृषभं सार्धमद्रीन्द्रपुत्र्या
धीतावष्टम्भकुम्भोदरकरयुगलोदस्तमुक्तातपत्रः ।
गायद्गन्धर्वनृत्यत्सुरयुवतिपुरोभागघुष्यन्मृदङ्गो
गङ्गाभृत्युत्तमाङ्गे शशिशकलधरः शंकरः संनिधत्ते ॥ १० ॥

खर्जुर द्रुमदध्नजंघमसित स्वङ् नद्धविष्वक्तत-
स्नायु ग्रन्थिघनास्थिपन्जर जरत्कंकालमालोक्यते ॥ ५-१४

राजा—(ध्यान से रुककर कान लगाकर सुनता है) अहा भूलोक या प्राणि समूह का कल्याण हो गया (भाग्योदय हो गया) क्योंकि—

९—इस स्थान के चारों ओर काहली वाद्य से विश्वपति की जय, इन्दु मौली की जय, शम्भु की जय, शंकर की जय, रूप में निकलने वाली ध्वनि मनुष्यों के पाप को नाश करती हुई कानों में सुनाई पड़ रही है ।

मंत्री—(हर्ष के साथ)—आप का मनरोथ सफल हो गया, देखिये, देखिये—

१०—स्फटिक के पर्वत के समान श्वेत बैल पर चढ़े, उद्धता को छोड़े हुए कुम्भोदर द्वारा दोनों हाथों से मुक्ता फलों में बने छत्र को धारण किये, आगे में गन्धर्वों के गाते तथा अप्सराओं के नाचते हुए, मृदंग के बजते हुए; शिर पर गंगा को धारण किये, चन्द्र कला को धारण करने वाले शंकर, पार्वती के साथ पास में ही आ रहे हैं ।

वक्तव्य—कुम्भोदर का नाम रघुवंश में भी आया है, "कुम्भोदरं नाम निकुम्भ मित्रम्; ।

अपि च ।

गौलिन्यस्ताञ्जलीनां दरमुकुलितदृङ्निर्यदानन्दबाष्प-
क्लिद्यद्गण्डस्थलानामविरलपुलकालंकृतस्वाकृतिनाम् ।
वेदान्तप्रायभूरिस्तुतिमुखरमुखाम्भोजभाजामृषीणां
पंक्त्या पाश्चात्यभागो झटिति निबिडितो दृश्यतामस्य
शंभोः ॥ ११ ॥

राजा—मन्त्रिन्, इतः परं प्रणिपातादिना भगवन्तं प्रसाद्य स्वाभीष्टमर्थं प्रार्थयिष्ये ।

मन्त्री—अनितरसाधारणमेतस्य भक्ताभीप्सितप्रदानचातुर्यम् । यः प्रसादितवते पार्थाय पाशुपतमस्त्रं प्रतिपादितवान् । येन च निखिल-क्षत्रियकुलजिघांसवे भार्गवाय प्रसादीकृतः परशुः ।

राजा—उपपन्नमिदम् । एवमपरिमितानि महान्त्याश्चर्यचरितानि देवस्य । यच्च कपिलमुनि कोपानल भस्मीकृतप्रपितामहसंघसमुत्तारणकृतप्रयत्न-

---

और भी—

११—दोनों हाथों को जोड़कर शिर पर रक्खे, थोड़ी सी खुली आँखों से झरते आनन्दाश्रुओं से गीले कपोल वाले; निरन्तर सम्पूर्ण रूप में रोमांच होने से सुन्दर शरीर; औपनिषद की सूक्तियों द्वारा निरन्तर स्तुति करने से गूंजते हुए कमल मुख वाले; ऋषियों की पंक्ति द्वारा भगवान शम्भु का पिछला भाग जल्दी से भर गया है ।

राजा—मंत्री ! इसके आगे प्रणिपात आदि से भगवान को प्रसन्न करके अपने इच्छित फल को माँगूँगा ।

मंत्री—भक्तों को इच्छित फल देने की इसकी चतुराई असामान्य है । जिसने कि प्रसन्न होकर अर्जुन को पाशुपत अस्त्र दे दिया था । जिसने सम्पूर्ण क्षत्रिय कुल को नाश करने की इच्छा वाले परशुराम के लिए परशु प्रसाद रूप में दिया था ।

राजा—यह योग्य ही है । इस प्रकार के बहुत से आश्चर्यकारक चरित्र देव के हैं । कपिल मुनि की क्रोधाग्नि से भस्म हुए प्रपितामहा

भगीरथप्रसादितायाः सुरापगाया भुवमवतरन्त्या गर्वभञ्जनं नाम मृत्युञ्जयस्य चरितं तदपि परमाद्भुतमेव ।

मन्त्री—जगत्प्रसिद्धमेवेदम् । तथाहि—

वेगाकृष्टोडुचक्रानुकरणनिपुणश्वेतडिण्डीरखण्ड-
श्लिष्टोर्मीनिर्मितोर्वीवलयविलयनाशंकसातंकदेवा
विभ्रश्यन्त्यभ्रगङ्गा विबुधजनभुवः सर्वदुर्वारगर्वा
निर्विण्णा धूर्जटीयोद्भटघटितजटाजूटगर्भे निलिल्ये ॥ १२ ॥

किं च । अध्वरविधावपराधिनो दक्षप्रजापतेः शिक्षणावसरे रोषसंधुक्षितेन

के समूह का उद्धार करने के लिये प्रयत्न शील भगीरथ द्वारा प्रसन्न हुई देव गंगा को पृथ्वी पर लाने में; गंगा के गर्व को तोड़ने के लिए मृत्युजय नामक जो चरित इनका है, वह भी बहुत अद्भुत है ।

वक्तव्य—कपिल मुनि पाताल में तप कर रहे थे, वहाँ पर सगर राजा का अश्वमेध का घोड़ा पहुँच गया; ऋषि ने उसको बाँध दिया, और तप में बैठ गये । फिर सगर पुत्रों ने वहाँ आकर ऋषि को तंग किया, उनकी क्रोधाग्नि से भस्म हो गये थे । उनको स्वर्ग में पहुँचाने के लिये भगीरथ ने तप करके गंगा को प्रसन्न किया था । गंगा पृथ्वी लोक में आकाश से उतरेगी, इसलिये उसके वेग को रोकने के लिये भगीरथ ने शिवजी को प्रसन्न किया था । फिर शिवजी की जटा जूटों में आकर गंगा छिप गई थी । पुनः भगीरथ को उपासना से प्रसन्न होकर गंगा की धारा पृथ्वी पर बही ।

मंत्री—यह तो जगत में प्रसिद्ध ही है, कि—

१२—नक्षत्रो की श्वेतिमा को भी संम्पूर्ण रूप से तिरस्कृत करने वाले श्वेत भाग के टुकड़ों से युक्त, जिसकी परस्पर मिली तरंगों से बने चक्करों में पृथ्वीतल के लीन होने से देवता भी डर गये थे, ऐसी, देवताओं की पृथ्वी–स्वर्ग से गिरती हुई, सबके दर्प को तोड़ने वाली आकाश गंगा शंकर की उद्भट जटा जूटों के अन्दर उदास होकर लीन हो गई थी ।

और भी—यज्ञ कर्म में अपराधी दक्ष प्रजापति को शिक्षण करने के

भगवता विष्टपगुरुणा शिपिविष्टेनसृष्टः स्वांशभूतः प्रभूतकोपविधूतविनयमुद्रो वीरभद्र एव किं किं न कृतवान् । तथाहि—

शूलाग्रक्षतदक्षकण्ठरुधिरैः शोणे रणप्राङ्गणे
कीर्णो दन्तगणश्चपेटदलितादर्कस्य वक्त्रान्तरात् ।
वीरश्रीकरपीडनोत्सवविधावेतस्य वैश्वानरः
प्रक्षिप्तोज्ज्वललाजविभ्रमकरो नालोकि लोकेन किम् ॥१३॥

लिये (पाठ पढ़ाने के लिये) क्रोध से भगवान, चराचर के गुरु शिव ने अपने ही अंश से उत्पन्न, अतिशय क्रोध से नष्ट शान्त भाव वाले ; वीर भद्र ने क्या क्या नहीं किया था ?

वक्तव्य—चम्पू रामायण में गंगा का अवतरण इसी प्रकार से आया है, यथा—

अथवीचीचय छन्न दिगन्त गगनान्तरा ।
शशाङ्कशंख संभिन्न तारामौक्तिकदन्तुरा ॥ १ ।
तरङ्गाकृष्टमार्त्तण्ड तुरङ्गायासितारुणा ।
फेनच्छन्नस्वमातङ्ग मार्गणव्यग्रवासवा ॥ २ ।
आवर्त्तगर्त्त संभ्रान्त विमानप्लव विप्लवा ।
नील जीमूत शैवाल कृतलेखा हरित्तटा ॥ ३ ।
अवलेप भराक्रान्ता सुरलोक तरङ्गिणी ।
पपात पार्वती कान्त जटाकान्तार गह्वरे ॥ ४ ।
अलब्ध निर्गमा शम्भोः कपर्दादमरापगा ।
दधौ दूर्वाशिखा लग्नतुषार कणिकोपमाम् ॥ ५ ।

१३—शूल के अग्रभाग से क्षत होने के कारण गले से निकलते हुए रक्त से युद्ध भूमि का आंगनलाल हो गया था, चपेट की चोटसे सूर्य के मुख में से निकलकर इधर उधर बिखरे हुए दान्तों ने शौर्य लक्ष्मी के पाणि ग्रहण के समय अग्नि में फेंकी हुई शुभ्र लाजाओं का भ्रम करने वाला हाथ क्या लोगों ने नहीं देखा था ?

वक्तव्य—विवाह के समय विवाह भूमि पर लाल रंग बिछाया जाता है, यहाँ पर भूमि रक्त से लाल हो गई; अग्नि की उपस्थिति विवाह में आवश्यक है, यहाँ उसकी क्रोधाग्नि अग्नि है, लाजाओं के स्थान पर सूर्य के मुख के बिखरे हुए दान्त हैं, स्त्री रूप में शौर्य लक्ष्मी है,—पुरुष के हाथ के स्थान में-वीर भद्र का हाथ है।

चरक संहिता में ज्वर रोग की उत्पत्ति भी इसी प्रकार से दी है। यथा—

द्वितीये हि युगे शर्वमक्रोधव्रतमास्थितम् ।
दिव्यं सहस्रं वर्षाणामसुराः अभिदद्रुवुः ॥
तपोविघ्नाशनाः कर्त्तुं तपो विघ्नं महात्मनः ।
पश्यन् समर्थश्चोपेक्षां चक्रेदक्षः प्रजापतिः ॥
पुनर्माहेश्वरं भागं ध्रुवं दक्षः प्रजापतिः ।
यज्ञे न कल्पयामास प्रोच्यमानः सुरैरपि ॥
ऋचः पशुपतेर्याश्च शैव्य आहुतयश्च याः ।
यज्ञसिद्धिप्रदास्ताभिर्हीनं चैव स इष्टवान् ॥
अथोत्तीर्णं व्रतो देवो बुद्ध्वा दक्ष व्यतिक्रमम् ।
रुद्रो रौद्रं पुरस्कृत्य भावमात्मविदात्मनः ॥
सृष्ट्वा ललाटे चक्षुर्वै दग्ध्वा तानसुरान् प्रभुः ।
बालंक्रोधाग्नि सन्तप्तमसृजत् सत्रनाशनम् ॥
ततो यज्ञः स विध्वस्तो व्यथिताश्च दिवौकसः ।
दाहव्यथा परीताश्च भ्रान्ता भूतगणादिशः ॥

....

क्रोधाग्निरुक्तवान् देवमहं किं करवाणि ते ।
तमुवाचेश्वरः क्रोधं ज्वरो लोके भविष्यति ॥

दक्षप्रजापति ने शिव का अपमान किया था, इस कारण दक्ष की पुत्री ने अपने पति के अपमान से दुःखी होकर अपने शरीर को यज्ञाग्नि में भस्मीभूत कर दिया था। उसी यज्ञ को शिव ने अपने वीरभद्रादि

राजा—किमिति वर्ण्यतामयमाश्चर्यचर्यो भगवान् ।
क्रोधारूढभ्रुकुटिरलिके क्रूरखड्गप्रहार-
शिछन्नग्रीवत्रिदशनिकरच्छन्नसंग्रामभूमिः ।
शक्रश्रीदद्रुहिणशरणालाभविद्राणविद्या-
दानोन्निद्रः प्रणतजनताभद्रदो वीरभद्रः ॥१४॥

कः पुनरस्य स्वरूपं तत्त्वतः शक्नोत्यवधारयितुं । यदन्तर्वाणयः सर्वेऽपि स्वच्छन्दानुरोधात्कलयन्ति स्वरूपमेतस्य । तथाहि—

गणों से नष्ट करवाया था । इस यज्ञमें उपस्थित देवता इनके डर के मारे भागे थे । यही सती अगले जन्म में पार्वती-हिमाचल की पुत्री रूप में उत्पन्न हुई थी; जिसको पुनः शिव ने उमा रूप से पत्नी रूप में वरा था । यथा—

अथावमानेन पितुः प्रयुक्ता दक्षस्य कन्या भव पूर्वपत्नी ।
सती सती योगविसृष्टदेहा तां जन्मनेशैल वधूं प्रपेदे ॥

राजा—अद्भुत कार्य कर्त्ता भगवान वीरभद्र का किस प्रकार से वर्णन किया जा सकता हैं ?

१४—जिसने क्रोध के कारण भृकुटि को ललाटे में चढ़ाकर, अति तीक्ष्ण तलवार के प्रहार से देवताओं के सिर काट कर संग्राम भूमि को भर दिया था, इन्द्र-कुबेर और ब्रह्मा के यहाँ भी शरण न मिलने से भागने की विद्या सिखाने में उद्यत एवं नम्र बने मनुष्यों का कल्याण करने वाला यह वीरभद्र है ।

वक्तव्य—इससे पित्तप्रकृति को सूचित किया है; यथा—

नभयात् प्रणमेदनतेस्वमृदुः
प्रणतेस्वपि सान्त्वनदान रुचिः ॥ सुश्रुत शा० अ० ४।

इसके स्वरूप को वास्तविक रूप में कौन समझ सकता है । क्योंकि सब शास्त्रविद् स्वेच्छा से इसके रूप का वर्णन करते हैं ।

वक्तव्य—जिसने जिस रूप में ध्यान किया-वह उसी रूप में उसका वर्णन करते हैं, यथा गीता में—

कर्तारं कतिचित्किलानुमिमते कार्यैर्यमुर्व्यादिभिः
केऽप्याहुः पुरुषस्य यस्य पुरतः सृज्यं प्रकृत्या जगत् ।
क्लेशैः कर्मभिराशयैश्च सकलैरस्पृष्टरूपोऽखिल-
प्रज्ञोऽनादिगुरुः स ईश्वर इति व्याख्यन्ति केचित्तु यम् ॥१५॥

"ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम् ॥
यो यो यां यां तनुं भक्त्या श्रद्धयाऽर्चितुमिच्छति ॥
तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहम् ॥ गीता
अन्तर्याणिः शास्त्रवित्" इतिवैजयन्ती ।

१५—संसार में कार्य रूप से पृथ्वी आदि पंचभूतों के मिलने से कई (नैयायिक और वैशेषिक) कर्त्ता रूप से जिसका अनुमान करते हैं, कोई (सांख्य दर्शन वादी) पुरुष की साक्षी में सत्व-रज-तम मयी प्रकृति ने जगत को बनाया है, (ऐसा कहते हैं); कोई (योग दर्शनवादी) जिसको सम्पूर्ण क्लेशों से (आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक अथवा-अविद्या-अस्मिता-राग-द्वेष और अभिनिवेश इन पाँच से) कर्मों से (कायिक, मानसिक और वाणी सम्बन्धी तथा जन्म-मरण के कारण भूत) और आशयों से (इच्छाओं से) अछूता, सर्वज्ञ; पुराण गुरु जिसे कहते हैं, वह ईश्वर है ।

वक्तव्य—योगसूत्र का सूत्र भी है—

क्लेश कर्मविपाकैरपरामृष्टः पुरुष विशेषः ईश्वरः ॥
एष पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात ॥

ईश्वर को कर्त्ता रूप में कुमारसम्भव में भी कहा है । 'जगद्योनिर-योनिस्त्वम् [२.९], यतो वा ईमानि भूतानि जायन्ते, स ऐक्षत वहुस्यां-प्रजायेय, इत्यादि श्रुतियों में जिसे कर्ता कहा है । प्रकृति पुरुष को साक्षी रूप में रखकर जगत को उत्पन्न करती है, इसे गीता में भी कहा है —

मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम् ॥" गीता ९।१०।

सर्वज्ञरूप में कुमारसम्भव में "स हि देवः परंज्योति स्तमः पारे-व्यवस्थितम्" २।५८

अपि च ।

श्रुतमिति निगमान्तेष्वेकमेवाद्वितीयं
निरवधि परिपूर्णं ब्रह्म सच्चित्सुखाय ।
विलसति किल यस्मिन्विश्वमेतत्तमिस्रे
स्रजि फणिवद्बोधादित्थमाहुः किलान्ये ॥ ६॥

मन्त्री—तत्तादृशमेनमवाङ्मनसगोचरमहिमानं पङ्कजासनपाकशासनप्रभृतयो देवाः प्रणमन्ति भगवन्तम् । अतः सेवावसरं प्रतिपालय क्षणमात्रम् ।

यं शैवाः उपासते शिव इति ब्रह्मेति वेदान्तिनो
बौद्धा बुद्धइति प्रमाण पटवः कर्त्तेति नैयायिकाः ।
अर्हन्नित्यत जैन शासनरताः कर्मेति मीमांसकाः
सोऽयं नो विदधातु वाञ्छितफलं त्रैलोक्यनाथो हरिः ॥

१६—वेदान्त में कहा है ब्रह्म-एक है, इसके समान दूसरा नहीं है, अनन्त है, अखण्ड है, सत्य है, ज्ञानवान है और सुख रूप है। जिस ब्रह्म में दीखाई पड़ने वाला यह संसार अज्ञान से (अविद्या से) भ्रम के कारण अन्धकार में माला के अन्दर सर्पज्ञान की भाँति आरापित होता है; इस प्रकार से दूसरे शास्त्रज्ञ कहते हैं।

वक्तव्य—"एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म," "सत्यं ज्ञानमनन्तमानन्दं ब्रह्म, "एकोदेवः बहुधासन्निविष्टः," एकं सन्तं बहुधा कल्पयन्ति, एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा—इत्यादि श्रुतियाँ इसमें प्रमाण रूप हैं। प्रबोध चन्द्रोदय में कृष्ण मिश्र ने इसे स्पष्ट कर दिया है—

अम्भश्शीतकरान्तरिक्ष नगर स्वप्नेन्द्र जालादिवत्
कार्यमेयमसत्यमेतदुदयध्वंसादियुक्तं जगत् ।
शुक्तौ रूप्यमिवस्त्रजीवभुजगः स्वात्मावबोधे हरा
वज्ञाते प्रभवत्यथास्तमयते तत्त्वावबोधोदयात् ॥

मंत्री—इस प्रकार के गुणों से युक्त एवं वाणी मन से भी जिसकी

राजा—सम्यङ् निरूपितममात्येन ।

नमदमरसहस्रमौलिमालापरिगलितैर्भुवि पारिजातपुष्पैः
अलिकुलमनवाप्तदिव्यगन्धग्रहणकुतूहलि कृष्यते
समन्तात् ॥१७॥

मन्त्री—अवसरोऽयमखिलसुरासुरगुरोः सरोरुहाकरसंवेशविद्यादेशिक-कलाशेखरस्य सेवनाय देवस्य । अत एव—

संभ्रान्तनन्दिकरघूर्णितवेत्रपात-
भीतापगत्वरगणव्रजवर्जितेन ।
एतेन कीर्णकुसुमेन पथा महेशं
सेवस्व भक्तिमदुर्लभसंनिधानम् ॥१८॥

(ततः प्रविशति यथानिर्दिष्टः परमेश्वर्या सह परमेश्वरः ।)

महिमा जानी नहीं जा सकती, ऐसे भगवान को ब्रह्मा, इन्द्र आदि देव भी नमस्कार करते हैं । इसलिये उपासना के समय को क्षण भर निभाओ ।

राजा—आपने ठीक सोचा है ?

१७—पृथ्वी पर नमस्कार करते हुए हजारों देवताओं के शिरों की माला मे झड़ते हुए, पारिजित पुष्पों की कभी नहीं प्राप्त हुई ऐसी दिव्य गन्धके कुतूहल से भ्रमरों का समूह चारों ओर से पास में खींचा आ रहा है ।

मंत्री—सम्पूर्ण देवता और राक्षसों के गुरु, कमल समूहों को निमीलन कला की शिक्षा देने वाली चन्द्रकला जिनका आभूषण है, ऐसे शिवजी की सेवा करने का यह समय है । क्योंकि—

१८—बेचैनी के साथ इधर उधर आना जाना करते हुए नन्दी के हाथों में घूमती हुई वेंत के लगने के डर से हटे हुए गण समूहों से छोड़ी हुई एवं देवताओं के शिरों से गिरे फूलों से शोभित इस मार्ग से भक्त जनों के लिए सुलभ दर्शन वाले महादेव की उपासना करो ।

(इसके पीछे उपर्युक्त रीति से वर्णित परमेश्वर-परमेश्वरी के साथ आते हैं)।

परमेश्वरः—अयि गिरीन्द्रसुते,

अनितरसाधारणया भक्त्या जीवस्य मामनुस्मरतः ।
समदि मयास्य पुरस्तात्संनिहितं सपरिवारेण ॥१९॥

देवी—देव, तुरिअं तुह आगमणं एव्व दंसेदि अणण्णतुल्लं भत्तवच्छलत्तणम् । [देव, त्वरितं तवागमनमेव दर्शयत्यनन्यतुल्यं भक्तवात्सल्यम् ।]

राजा—(मन्त्रिणा सह त्वरितमुपसृत्य ।)

विधिहरिविषमेक्षणात्मकः सन्सृजति—
विभर्ति निहन्ति यो जगन्ति ।
तमहमममलमेकमेव सच्चित्सुखवपुषं—
परमेश्वरं नतोऽस्मि ॥२०॥

परमेश्वर—अयि पार्वति !

१९—दूसरों की अपेक्षा असामान्य भक्ति से पद पद पर मेरा स्मरण करते हुए इस जीवराज के पास परिवार सहित मुझको जल्दी पहुँचना है ।

देवि—देव ! आपका जल्दी से आना ही दूसरों से असाधारण भक्त स्नेह को प्रगट करता है ।

राजा—मंत्री के साथ जल्दी से पास में आकर ।

२०—ब्रह्मा, विष्णु, त्रिनेत्र (महेश) रूप में जो संसार को बनाता है, धारण करता है और संहार करता है, उस, निर्मल, सत्य-ज्ञान सुख रूप शरीर वाले परमेश्वर को मैं प्रणाम करता हूँ ।

वक्तव्य—कादम्बरी के प्रथम श्लोक में भी बाण ने इन्हीं तीन रूपों में परमेश्वर का स्मरण किया है—

रजोजुषे जन्मनि सत्त्ववृत्तये स्थितौ प्रजानां प्रलये तमः स्पृशे ।
अजाय सर्गं स्थितिनाशहेतवे त्रयीमयाय त्रिगुणात्मने नमः ॥

कुमार सम्भव में कालीदास ने भी इसी रूप का उल्लेख किया है । यथा—

"नमस्त्रिमूर्त्तये तुभ्यं प्राक् सृष्टेः केवलात्मने ।
गुणत्रय विभागाय पश्चाद्भेदमुपेयुषे ॥

(इति मन्त्रिणा सह प्रणमति) ।

परमेश्वर—वत्स, मन्त्रिणा सममभिमतेन युज्यस्व ।

जीवः—(मन्त्रिणा सहोत्तिष्ठन् । शिरस्यञ्जलिं वद्ध्वा ।)

जय जय जगदीश देवासुरावध्यतादर्पवेगोद्धृतत्वत्पदांगुष्ठनीष्पीडनस्तब्धकैलासमूलार्त्तदोर्विंशतिप्रस्तुत तोत्रपुष्यद्दयारक्षितोन्मुक्तलङ्कापते निष्प्रपञ्चाकृते ।

अनुपमितगृहीततारुण्यलक्ष्मीनिरीक्षोन्मिषद्दारुकारण्यनारीव्रतभ्रंशकुप्यन्मुनीन्द्राभिचारोत्थितं तुङ्गनादं कुरङ्गं ज्वलज्ज्वालमग्निं कराभ्यां वहन्दृश्यसे सद्भिरामृश्यसे ।

कलशभवमहर्षिवातापिनिर्वापणदक्षिणोर्वीभरापोहने-

तिसृभिस्त्वमवस्थाभिर्महीमानमुदीरयन् ।
प्रलयस्थितिसर्गाणामेकः कारणतां गतः ॥
एकैव मूर्त्तिर्बिभिदे त्रिधा सा सामान्यमेषां प्रथमावरत्वम् ।
विष्णोर्हरस्तस्य हरिःकदाचिद् वेधास्तयोस्तावपि धातुराद्यौ ॥

(इस प्रकार मंत्री के साथ प्रणाम करता है)

परमेश्वर—वत्स ! मंत्री के साथ इच्छित मनोरथ को प्राप्त करो ।

जीव—(मंत्री के साथ खड़े होकर शिर में अंजली जोड़कर) ।

२१—देवताओं और राक्षसों के हाथ से न मरने का वर पाने के कारण घ एड के साथ अपनी बीसों भुजाओं से कैलास पर्वत को उठाते हुए; तुम्हारे पैर के अंगूठे के दबाव मात्र से रुके कैलास पर्वत की जड़ से दबती हुई अपनी भुजाओं को छुटाने के लिए रावण से की गई स्तुति से प्रसन्न होकर दया के कारण रक्षा एवं मुक्त करते हुए उसको, हे अस्पष्ट आकृति (अणु रूप) जगदीश-आप की जय हो । (२) उपमा रहित प्राप्त की हुई यौवनश्री वाले महादेवजी के देखने मात्र से तुरन्त त्पन्न हुआ दण्डकारण्य की स्त्रियों में जो पातिव्रत भंग, उससे कुपित मुनियों द्वारा की गई अभिचार क्रिया से उत्पन्न भयंकर गर्जना वाले मृग को एक

विन्ध्यसंस्तम्भने सिन्धुनाथाम्बुनिःशेषपानेच शक्तिप्रदायिस्व-पादाम्बुजध्यानमहात्म्य शंभो नमस्ते नमस्ते ॥२१॥
पुनः

प्रसूनशरदाहिने प्रबलकालकूटाशिने
कृतान्तपरिपन्थिने त्रिपुरगर्वनिर्वासिने ।
जटापटलयन्त्रितामरतङ्गिणीस्रोतसे
प्रपन्नभयहारिणे प्रमथनाथ तुभ्यं नमः ॥२२॥

हाथ से तथा जलती हुइ ज्वाला वाली अग्नि को दूसरे हाथ से पकड़े हुए आप दीख रहे हैं, तथा ज्ञानियों द्वारा ध्यान पूर्वक देखे जाते हैं। (३) महर्षि अगस्त्य को वातापि राक्षस के मारने की, दक्षिण भाग के भार को दूर करने की; विन्ध्य पर्वत को बढ़ने से रोकने की, समुद्र को शुष्क करने की शक्ति देने में आपके ही चरण कमलों का ध्यानमहात्म्य ही कारण है, हे शम्भो ! नमस्ते, नमस्ते और फिर भी नमस्कार है।

२२—कामदेव को जलाने वाले, प्रबल हलाहल को खाने वाले, यम के शत्रु त्रिपुरासुर के घमण्ड को तोड़ने वाले, जटाजूटों के अन्दर देव गंगा के प्रवाह को रोके हुए, शरणागत के भय को दूर करने वाले प्रथम गणाधिप परमेश्वर ! तुम्हारे लिये नमस्कार है।

वक्तव्य—कुमारसम्भव में कामदेव के दहन का वर्णन सुन्दर रूप से आया है, यथा—

तपः परामर्श विवृद्धमन्युभ्रूभङ्गदुष्प्रेक्ष्यमुखस्य तस्य ।
स्फुरन्नुदर्चिः सहसा तृतीयादक्ष्णः कृशानुःकिलनिष्पपात ॥
क्रोधं प्रभो संहर संहरेति यावद्गिरः खे मरुतां चरन्ति ।
तावत स वह्निर्भव नेत्रजन्मा भस्मावशेषं मदनं चकार ॥

इसी शैली का अनुसरण करता हुआ निम्न श्लोक है—

प्रशस्तगुण सिन्धवे प्रपदनस्पृशां बन्धवे
स्वतोऽपहतपाप्मने सकलदेहि नामात्मने ।

निष्क्रियस्यापि देवस्य जगत्सृष्ट्यादिकर्मसु ।
प्रवृत्तिं कुर्वतीं देवीं प्रपद्ये भक्तवत्सलाम् ॥ २३ ॥

देवी—णाह, इमस्स मणोरहं पुच्छिअ भत्ति तं णिव्वत्तेहि । [नाथ, अस्य मनोरथं दृष्ट्वा झटिति तं निर्वर्त्तय ।]

भगवान्—प्रिये, किमत्र प्रष्टव्यम् । विदितमेव । यद्यक्ष्मराजः कैश्चिदसाध्यरोगैः सहानुगतो विकुर्वाणो निर्मूलं छेत्तव्य इत्येतस्य मनोरथ इति । एतस्मै योगसिद्धिमुपदिश्य निर्जितनिखिलरोगंब्रह्मरन्ध्रस्थितचन्द्रमण्डलनिष्यन्दमानामृताप्लुतशरीरं निजानन्दानुभवतुच्छीकृताखिलप्राकृतसुखान्तरं सफलमनोरथमेनं कृतार्थयिष्यामि ।

नमः कमलवासिनी नयनसौख्यसंदायिने
तमश्शमविधायिने तरणिमण्डलस्थायिने ॥

२३—परमेश्वर के क्रिया रहित होने पर भी चराचरात्मक संसार की सृष्टि स्थिति-प्रलय रूपी कर्मों में उद्यम करते हुए, भक्तों से प्रेम रखने वाली परमेश्वरी की शरण में आया हूँ ।

वक्तव्य—इसी से गीता में कहा है—

न मे पार्थास्ति कर्त्तव्यं त्रिषु लोकेषु किंचन ।
नानावाप्तमवाप्तव्यं वर्त्त एव च कर्मणि ॥
यदि ह्यहं न वर्त्तेयं जातु कर्मण्यतन्द्रितः ।
मम वर्त्मानुवर्त्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ॥
उत्सीदेयुरिमे लोका न कुर्यां कर्म चेदहम् ।
संकरस्य च कर्त्तास्यामुपहन्यामिमाः प्रजाः ॥ गीता ३।२२-२५

देवी—हे स्वामिन् ! इसका मनोरथ पूछकर जल्दी से पूरा करदो ।

परमेश्वर—प्रिये ! इसमें पूछना क्या ? यह तो जाना हुआ है, कुछ असाध्य रोगों के साथ, गर्व पूर्वक चलता हुआ यक्ष्म राजा जड़ समेत नष्ट करना चाहिए, यह इसका मनोरथ है । इसलिये इसके लिये योगसिद्धि का उपदेश करके, सम्पूर्ण रोगों को जीतकर, ब्रह्मरन्ध्र में स्थित चन्द्रमंडल से बहते हुए अमृत से स्नान किये हुए शरीर वाले इसे;अपने आनन्द के

देवी—(सहर्षम् ।) सरिसं क्खु एदं तुम्हकेरस्स भत्तवच्छलस्स ।
[सदृशं खल्वेतद्युष्मादृशस्य भक्तवत्सलस्य ।]

भगवान्—वत्स जीव, योगसिद्धिमुपदिशामि ते ।

जीवः—भगवान्, को नाम योगः कीदृशी वा तस्य सिद्धिः ।

भगवान्—वत्स, श्रूयताम् । योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः । चित्तं नामान्तःकरणम् । यच्चक्षुरादिकरणद्वारा बहिर्निर्गच्छद्विषयाकारेण परिणमति । यत्तादात्म्यापन्नो द्रष्टापि तद्रूपाकार एव परिभाव्यते ।

तदुक्तम्—

'ध्यायन्त्यां ध्यायतीवात्मा चलन्त्यां चलतीव च ।
बुद्धिस्थे ध्यानचलने कल्प्येते बुद्धिसाक्षिणि ॥ इति ॥

अनुभव से दूसरे प्राकृत सम्पूर्ण सुखों का तिरस्कार करते हुए, सफल मनोरथ वाला एवं कृतार्थ करूँगा ।

देवी—(हर्ष के साथ) आप जैसे भक्त वत्सल के लिये यही उचित है ।

परमेश्वर—वत्सजीव ! तेरे लिये योग सिद्धि का उपदेश करता हूं ।

वक्तव्य—**सुषुमा काण्ड के ऊपर शिर के अन्दर सहस्रदल कमल के समान कुण्डलिनी मण्डल है, इसके मध्यभाग को ब्रह्मरन्ध्र कहते हैं । इसके पास में चन्द्रमा अपने अमृत रूपी रस को इसमें बराबर प्रदान करता रहता है ।**

ब्रह्मरन्ध्रसरसीरुहान्तरे नित्यलग्नमवदातमद्भुतम् ।
कुण्डली विवरमण्डलाश्रितं द्वादशार्णं सरसीरुहं भजे ॥

राजा—भगवन् ! योग किसका नाम है, और कैसी उसकी सिद्धि है ?

परमेश्वर—वत्स ! सुनो ! चित्त वृत्तियों को रोकने का नाम योग है, चित्त से अभिप्राय अन्तःकरण का है । जो अन्तःकरण चक्षु आदि बाह्येन्द्रिय मार्ग से बाहर आकर विषय के आकार में बदल जाता है । जिसके कारण उस विषय रूप में हुआ पुरुष भी उसी विषय रूप के आकार में दीखता है । इसी से कहा है—

'ध्यायतीव लीलायतीव' इति श्रुतिः । तस्य वृत्तयो नाम कामः संकल्पो विचिकित्सा श्रद्धाश्रद्धा धृतिरधृतिर्ह्रीर्धीर्भीरित्याद्याः श्रुतीरिता आन्तराः, बाह्याश्च शब्दस्पर्शादिविषयग्राहिण्यः । सत्त्वरजस्तमोरूपगुणत्रयात्मिकानां च तासां दैवासुरसंपद्रूपत्वेन द्वेधा विभाग उक्तो गीतायाम्—

'अभयं सत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः ।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम् ॥'

बुद्धि में ध्यान करते हुए आत्मा ध्यान करता प्रतीत होता है, मनके वाह्य विषयों में विचरण करता हुआ आत्मा भी वाह्य विषयों में दौड़ता प्रतीत होता है । इस कारण से बुद्धि इन्द्रिय (चैतन्य का आधार भूत इन्द्रिय) में रहने वाले ध्यान और चलन (ये दोनों कर्म) जीवात्मा रूप पुरुष में अरोपित किए जाते हैं ।

वक्तव्य—सांख्य दर्शन का यह मत है कि घट का ज्ञान करने में हमारी बुद्धि नेत्र इन्द्रिय के द्वारा घट के पास जाकर घट के आकार को ग्रहण कर लेती है, इसी से हमको घट का ज्ञान होता है । बुद्धि के इस घट ज्ञान को हम आत्मा में आरोपित करते हैं ।

ध्यायतीव लीलायतीव—यह श्रुति है, (उसी के आधार से उपर्युक्त वचन है) । अन्तःकरण की अन्तःवृत्तियों को काम (इच्छा), संकल्प (मनोव्यापार), विचिकित्सा (संशय), श्रद्धा, धृति, अधृति, लज्जा, बुद्धि, भय इत्यादि नामों से श्रुति में कहा है । वाह्य वृत्तियाँ शब्द, स्पर्श आदि विषयों को ग्रहण करती हैं ।

वक्तव्य—चरक में उपर्युक्त अन्तःवृत्तियों को मन का कर्म बताया है; यथा—

चिन्त्यं विचार्यमुह्यं च ध्येयं संकल्पमेव च ।
यत्किंचिन्मनसो ज्ञेयं तत्सर्वंह्यर्थ संज्ञकम् ॥
इन्द्रियाभिग्रहः कर्म मनसःस्वस्य निग्रहः ।
ऊहोविचारश्च, ततः परं बुद्धिः प्रवर्तते ॥ चरक

इत्यादिर्दैवी संपत्। दम्भो दर्पोऽभिमानश्च क्रोधः पारुष्यमेव च' इत्यादिरासुरी संपत्। तत्र दैवी संपत्सात्त्विकी। आसुरी तु रजस्तमःप्रधाना। 'दैवी संपद्विमोक्षाय निबन्धायासुरी मता'। तासां सर्वासामान्तरीणां बाह्यानां च चित्तवृत्तीनां निरोधो नाम स्वविषयेभ्यः प्रतिनिवर्त्य क्वचित्सगुणे निर्गुणे वा वस्तुनि चित्तस्य समवस्थापनम्। तच्च दृढतरवैराग्यसत्कारनिरन्तरसेवाभ्यासबलेन लभ्यते। तदुक्तम्--

'असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते ॥' इति ॥

सत्त्व, रज और तम के भेद से त्रिगुणात्मक चित्त वृत्तियों के दो विभाग दैवसम्पद् और आसुर सम्पद् रूप से गीता में कहे हैं। यथा—सर्वथा भय का अभाव, मन की निर्मलता, तत्त्व ज्ञान के लिये योग में लगना, दान, इन्द्रियों को वश में करना, यज्ञ (त्याग की भावना), स्वाध्याय, तप (द्वन्द को सहने की शक्ति), और सरलता, आदि दैवी सम्पत् है। हे अर्जुन! दम्भ (पाखण्ड—वास्तव में वैसा न होने पर झूठा दिखावा करना), अभिमान, घमण्ड, क्रोध, कठोरवाणी, अज्ञान यह आसुरी सम्पद् है। इनमें दैवी सम्पत् सात्त्वकी है, आसुरी सम्पत् रज और तम प्रधान है। दैवी सम्पद् मोक्ष के लिये (जन्म मरण के वन्धन से छुटने के लिये) है और आसुरी सम्पत् जन्म मरण के वन्धन में बँधने का कारण है। उन सब आन्तरीय और वाह्य चित्त वृत्तियों का निरोध—अपने अपने विषयों से चित्त वृत्तियों को लौटाकर किसी सगुण या निर्गुण वस्तु में चित्त को भली प्रकार लगाना (निरोध) है।

वक्तव्य—**सत्वं रजस्तमइति गुणाः प्रकृति संभवाः।**
निबध्नन्ति महाबाहो देहे देहिनमव्ययम् ॥ गीता १४।५

गीता के १६वें अध्याय में दैवी सम्पद् और आसुरी सम्पत् विस्तार से दी हुई है। वहीं पर देखना चाहिये। और चित्त का भली

एतादृशस्य योगस्य सिद्धिर्नाम ध्येयवस्तुसाक्षात्काररूपावस्थितिः ।

मन्त्री—भगवन्,

एवंभूताः क इव घटते चित्तवृत्तीर्निरोद्धुं ।
वैराग्येणाभ्यसनविधिना स्याच्चिरात्तन्निरोधः ।
जेयः शीघ्रं रिपुरपरथा न स्थितिर्नः पुरेऽतो
योगे सिद्धिर्भवति च यथानुग्रहस्ते तथास्तु ॥२४॥

जीवः—भगवन्,

स्मृतिस्ते सकलाभीष्टं दत्ते किमुत दर्शनम् ।
तत्प्राप्तममितैः पुण्यैः सद्यः सिद्धिं ददातु मे ॥२५॥

प्रकार लगाना अतिशय वैराग्य, सत्कार-निरन्तर सेवा अभ्यास के बल से प्राप्त होता है । कहा भी है—

हे महाबाहो ! मन निःसन्देह कठिनाई से वश में आने वाला और चंचल है । हे अर्जुन ! अभ्यास से और वैराग्य से यह वश में किया जाता है । इस प्रकार की योग की सिद्धि से ध्येय वस्तु का साक्षात्कार करके उसी के रूप में स्थिर हो जाना (योग सिद्धि) है ।

मंत्री—भगवन् !

२४—इस प्रकार से चित्त वृत्तियों का निरोध कौन कर सकता है ? वैराग्य और अभ्यास के द्वारा हो सकता है, परन्तु वह निरोध देर में होता है । शत्रु को जल्दी जीतना है, अन्यथा पुर में हमारी स्थिति नहीं है, इस लिये जिस प्रकार से योग में सिद्धि मिले, वैसा आपका अनुग्रह हो ।

वक्तव्य—मन को वश में करना बहुत कठिन है, यथा—

अपि च प्रभूतमदमेदुरात्मनो विषयाटवीषु विविधासु धावतः ।
स्वबलेन हन्तमनसो निवर्त्तनं विसतन्तुनेव सुरदन्तियन्त्रणम् ॥

राजा—भगवन् !

२५—आपका स्मरण मात्र सम्पूर्ण मनोरथों को देता है, फिर दर्शन की क्या बात । यह दर्शन असीमित-बहुत पुण्यों से प्राप्त हुआ है, मुझे तुरन्त सिद्धि दीजिये ।

देवी —(सदयम् ।) देव, संकप्पादो जेव्व से जोअसिद्धी होदुत्ति अणुगेह्णीअदु एसो । [देव, संकल्पादेवास्य योगसिद्धिर्भवत्वित्यनुगृह्यतामेषः ।]

भगवान्—वत्स, देव्यैवानुगृहीतोऽसि । संकल्पादेव ते योगसिद्धिर्भवतु ।

मन्त्री - राजन्, भगवत्या भगवता च संकल्पादेवाखिलयोगसिद्धिरनुगृहीता । तत्सर्वथा कृतार्थाः स्मः ।

राजा—(सप्रणामम् ।) अनुगृहीताएववयम् । यतः ।

या प्रत्यक्षपदार्थमात्रविषया सा योगसंस्कारतः ।
संस्कारान्प्रतिबध्नतीतरकृतान्धीः कापि मे जृम्भते ।
सूक्ष्मं यत्तु विदूरमव्यवहितं सर्वान्विशेषान्स्फुटं
पश्याम्येष यथावदद्य परमार्थोद्भूतया प्रज्ञया ॥२६॥

देवी—देव ! संकल्प मात्र से ही इसको योगसिद्धि प्राप्त हो जाये, ऐसी कृपा करें ।

परमेश्वर—वत्स ! देवी ने हो तुम पर कृपा की है, संकल्प से ही तुमको सम्पूर्ण योग सिद्धि हो जायेगी ।

मंत्री—राजन् ! भगवती और आपने संकल्प से ही सम्पूर्ण योग सिद्धि की कृपा की है; इससे मैं सम्पूर्ण रूप में कृतार्थ हो गया हूँ ।

वक्तव्य —उपनिषद में भी पढ़ते हैं—

यं यमन्तमभिकामो भवति यं कामं कामयते सोऽस्य संकल्पादेव समुत्तिष्ठति तेन संपन्नो महीयते । छान्दोग्य ८।२।१०

राजा—(प्रणाम करके) हम कृतार्थ ही हो गये ! क्योंकि—

२६—मेरी जो बुद्धि पंचेन्द्रियों से ग्रहण किये जाने वाले पदार्थों तक ही सीमित रहती थी; आज वही मेरी बुद्धि योगसंस्कार के कारण (नदिध्यासनादि से परिष्कृत) दूसरे प्रमाणों से किये संस्कारों को रोक रही है । तत्व ज्ञान से उत्पन्न बुद्धि से आज मैं सूक्ष्म-बहुत दूर, अन्य वस्तु से आच्छादित सब वस्तुवों को ठीक प्रकार से वास्तविक रूप में देख रहा हूँ ।

आश्चर्योऽयं भगवत्प्रसादमहिमा ।

भगवान्—देवि, एवं संप्रज्ञातसमाधिरेतस्य प्रादुर्भूतः, यत एवं-सालम्बनामनुभवति ऋतंभरां नाम प्रज्ञाम् । अतः परं निर्बीजयोगसंज्ञम-संप्रज्ञातसमाधिमस्यानुगृह्णामि ।

देवी—अणुगेह्णीअदु अत्तमणिव्विसेसो एसो । [अनुगृह्यतामात्म-निर्विशेष एषः ।]

जीवः—(सहर्षोल्लासरोमाञ्चम् । आश्चर्यमाश्चार्यम् ।

वक्तव्य—योग दर्शन का सूत्र है—"तज्जः संस्कारोऽन्यसंस्कार प्रतिबन्धी" ।

भगवान के प्रभाव की महिमा अद्भुत है ।

परमेश्वर—देवि ! इस प्रकार इसको संप्रज्ञात समाधि उत्पन्न हो गई है। क्योंकि पूर्वोक्त विधि से यह आलम्बनवाली ऋतंभरा नाम प्रज्ञा का अनुभव करता है। इसके आगे निर्बीज योग नामक असंप्रज्ञात समाधि का अनुग्रह करता हूँ ।

वक्तव्य—समाधि दो प्रकार की है, सम्प्रज्ञात और असम्प्रज्ञात । सम्प्रज्ञात समाधि तभी होती है, जब ऋतंभरा प्रज्ञा उत्पन्न हो जाती है, "ऋतं सत्यं तत् बिभर्त्ति ऋतंभरा"—सत्य को धारण करने वाली समाधि। सम्प्रज्ञात समाधि में कुछ अवलम्बन रहता है, जिस प्रकार कि भ्रमर-मधु रस से खींचा हुआ उसमें तन्मय बना रहता है, इसी प्रकार चित्तवृत्तियाँ भी परमात्मा-ब्रह्म का अवलम्बन करके उसमें बंधी रहती हैं। असम्प्रज्ञात समाधि होने पर अवलम्बन-(ब्रह्म और अपना भेद) निकल जाता है, वह ब्रह्म ही हो जाता है, उस समय 'एक मेवमद्वितीयं ब्रह्म' यह श्रुति असम्प्रज्ञात समाधि के लिये चरितार्थ होती है, तत्त्वमसि यह श्रुति सम्प्रज्ञात समाधि को सूचित करती है ।

देवी—अपने से अभिन्न इस पर अनुग्रह करिये ।

राजा—(आनन्द के कारण रोमांचित होकर)—आश्चर्य आश्चर्य—

भगवन्करुणासमित्समिद्धे दृढनिर्बीजसमाधियोगवह्नौ ।
प्रविलापितसर्वचित्तवृत्तिः परमानन्दघनोऽस्मि नित्यतृप्तः॥२७

भगवान्—देवि, झटिति विघटिताखिलपराग्वृत्तिः प्रत्यगात्मैक्यानुभवरूपोऽसंप्रज्ञातसमाधिराविर्भूतो वत्सस्य । यत एवमनुभूतमर्थमनुवदति ।

देवी—देव, किदत्थो क्खु एसो जो एव्वंविधस्स देवाणुग्गहस्स भाअणं जादो । [देव, कृतार्थः खल्वेष य एवंविधस्य देवानुग्रहस्य भाजनं जातः।]

भगवान्—संप्रत्येनं व्युत्थाप्य प्रकृतकार्यप्रवणं करोमि । (जीवं प्रति) वत्स, अन्यदपि किंचिदनुशासनीयोऽसि ।

जीवः—(व्युत्थाय) भगवन्, अवहितोऽस्मि ।

२७—भगवन् ! करुणा की समिधा से प्रदीप्त, स्थिर-निर्बीज समाधि की अग्नि में चित्त की सम्पूर्ण चित्त वृत्तियों का होम हो जाने से मैं सदा संतुष्ठ, परमानन्द घन (केवल आनन्दमय) हूँ ।

वक्तव्य—'अहं ब्रह्मास्मि' इस श्रुति का निर्देश है ।

परमेश्वर—देवि ! मेरे अनुग्रह करने से ही सम्पूर्ण रूप में पराग वृत्ति विशेष रूप से नष्ट हो जाने के कारण जीवात्मा और परमात्मा की एकता का अनुभव कराने वाली असंप्रज्ञात समाधि इसमें उत्पन्न हो गई है । जिसके कारण से यह इस प्रकार अनुभूत विषय को कह रहा है ।

वक्तव्य—संम्प्रज्ञात समाधि के सम्पूर्ण रूप में अच्छी प्रकार नष्ट हो जाने पर असम्प्रज्ञात समाधि की अवस्था आ गई है ; जिससे यह ब्रह्मानन्द का अनुभव कर रहा है ।

देवी—देव यह कृतार्थ हो गया है, जो कि इस प्रकार की देव की कृपा का पात्र बना है ।

परमेश्वर—अब इसको जाग्रत करके प्रस्तुत कार्य में व्यग्र करूँगा । (जीव की ओर देखकर) वत्स ! कुछ और भी ज्ञान कराना है ।

राजा—(उठकर) भगवन् ! मैं सावधान हूँ ।

भगवान् —

प्राचीनः सचिवः प्रियस्तव सुहृद्यो ज्ञानशर्मा मुनिः
स्तोमस्यापि सुदुर्लभः स भवता मान्यः सदाहं यथा।
श्रेयःसंघटनाय हन्त भवतः सत्यं स एवार्हति
प्रेयस्त्वैहिकमातनोतु सततं विज्ञानशर्मापि ते ॥२८॥

शश्वज्ज्ञानादभिन्नः सन्विज्ञानमपि मानय ।
एवं सति घटेयातां मुक्तिमुक्ती करे तव ॥२९॥

परमेश्वर—

२८—विज्ञानशर्मा से प्राचीन तुम्हारा मंत्री, तुम्हारा प्रिय मित्र;, ज्ञानशर्मा है, यह ज्ञान शर्मा, मुनि समूह को कठिनाई से प्राप्त होता है, जिस प्रकार से मैं तुम्हारे लिये मान्य हूँ, उसी प्रकार आपको इसका भी मान करना चाहिये । आपका श्रेय करने के लिये यही समर्थ है, यह सत्य है । तुम्हारे इस लौकिक प्रेय को विज्ञानशर्मा निरन्तर करे ।

२९—ज्ञानशर्मा मंत्रि से अभिन्न होकर निरन्तर विज्ञान शर्मा का भी आदर करो । इस प्रकार करने पर तेरे एक हाथ में इहलौकिक सुख और दूसरे हाथ में पारलौकिक सुख रहेंगे ।

वक्तव्य—ज्ञान से पवित्र वस्तु कोई नहीं है, और ज्ञान की अग्नि सब कर्मों को नष्ट कर देती है, यह ज्ञान मुनियों को भी कठिनाई से मिलता है । यथा—

यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन ।
ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन ।।
न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते ।
तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विन्दति ॥
श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः ।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति ॥ गीता ४।३७-३९।

ज्ञानशर्मा और विज्ञानशर्मा को उपनिषद में परा-अपरा विद्या से,

राजमन्त्रिणौ—(साष्टांङ्गं प्रणम्योत्थाय ।) अनुगृहीतौ स्वः ।

श्रेय और प्रेय मार्ग से, तथा गीता में योग और क्षेम नाम से कहा है। चरक में जो तीन ऐषणा-इच्छायें बताई हैं, वे भी इन दो में ही समाविष्ट है, परलोकैषणा के सिवाय प्राणैषणा और धनैषणा का सम्बन्ध इह लोक से ही है । इसलिये ज्ञान और विज्ञान की सहायता से मनुष्य दोनों लोकों की कामना को प्राप्त करता है । यथा—

श्रेयश्च प्रेयश्च मनुष्यमेतस्तौ संपरीत्य विविनक्ति धीरः ।
श्रेयोहि धीरोऽभिप्रेयसो वृणीते प्रेयो मन्दो योगक्षेमाद् वृणीते ॥ कठ।२।२

इसी को आगे विद्या और अविद्या के रूप में कहा है—

"दूरमेते विपरीते विषूची अविद्या या च विद्येति ज्ञाता ।" कठ

विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयं सह ।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते ॥
अन्यदेवाहुर्विद्ययान्यदाहुरविद्यया ।
इतिशुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे ॥ ईश उपनिषद् ९-१०

तस्मै स होवाच । द्वेविद्ये वेदितव्ये इति हस्म यद् ब्रह्मविदो वदन्ति पराचैवापरा च; तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदो ऽथर्ववेदः शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषमिति । अथ परा यया तदक्षरमधिगम्यते ॥ मुण्डक । ५ ।

अनन्यश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते ।
तेषां नित्याभियुक्तानां योग क्षेमं वहाम्यहम् ॥

इहलौकिक सुख और पारलौकिक सुख-ज्ञान और विज्ञान से ही मिलता है, यथा—

ज्ञान विज्ञान तृप्तात्मा कूटस्थो विजतेन्द्रियः ।
युक्त इत्युच्यते योगी समलोष्ट्राश्मकाञ्चनः ॥ गीता

राजा और मंत्री—(साष्टांग प्रणाम करके और उठकर) हम दोनों अनुग्रहीत हुए ।

देवी—सुमरणमेत्तसंणिहिदं णाणसम्माणं सइवं विण्णाणेण समं मुत्तविरोहं करिअ दुवे वि मन्तिणो रण्णो हत्थे समप्पअन्तेण भअवदा बहुलीकिदं भत्तवच्छलत्तणम् । [स्मरणमात्रसंनिहितं ज्ञानशर्माणं सचिवं विज्ञानेन समं मुक्तविरोधं कृत्वा द्वावपि मन्त्रिणौ राज्ञो हस्ते समर्पयता भगवता बहुलीकृतं भक्तवत्सलत्वम् ।]

(नेपथ्ये ।)

जीवे शिवप्रापितयोगसिद्धौ कल्ये जनान्ध्येन समं तमोवत् ।
पापो विषूच्या सह राजयक्ष्मा गदैरसाध्यैः सह नाशमेति॥३०॥
ईशानस्य निदेशात्प्राप्ता साप्यत्र शांकरी भक्तिः ।
चत्वारोऽपि पुमर्थाः पुंभिर्यस्याः प्रसादतो लभ्याः ॥ ३१ ॥

मंत्री—(आकर्ण्य ।) प्रियं नः प्रियम् । भगवान्काल एव एवं नः प्रियमाचष्टे ।

राजा—(सहर्षोल्लासम् ।)

देवी—स्मरण मात्र से ही ज्ञानशर्मा मंत्रि को पास में बुलाकर विज्ञान शर्मा के साथ निरोध को दूर करके दोनों मंत्रियों को राजा के हाथ में सौंपते हुए आपने बहुत अधिक भक्त वत्सलता दीखाई है ।

(नेपथ्य में)

३०—जिस प्रकार से मनुष्यों का अन्धकार प्रातःकाल में नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार से जीवराजा को शिव के द्वारा योग सिद्धि प्राप्त हो जाने पर पापी राजयक्ष्मा का विसूची के साथ तथा असाध्य रोगों के साथ नाश हो रहा है ।

३१—शिव के आदेश से शङ्कर सम्बन्धि वह भक्ति भी प्राप्त हो गई, जिस भक्ति की प्रसन्नता से चारों पुरुषार्थ (धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष) मनुष्यों को प्राप्त होते हैं ।

मंत्री—(सुनकर) प्रिय, हमारा प्रिय, भगवान काल ही हमारा प्रिय कह रहे हैं ।

राजा—(हर्ष से उत्साह के साथ)—

मूर्धन्यमण्डलनिकेतसुधांशुबिम्ब-
निःष्यन्दशीतलसुधाप्लुतिनिर्वृताङ्गः ।
मेघावृतिव्यपगमे गगनं यथाच्छं
चैतन्यमावरणवर्जितमस्मि तद्वत् ॥ ३२ ॥

मंत्री—एवमेवायं जीवो राजा भगवतोः प्रसादान्नीरोगो नित्यमुक्तो निराबाधो बहुकालं जीयादिति प्रार्थये ।

भगवान्—तथैवास्तु ।

देवी—तह होदु । [तथा भवतु ।]

राजा—(सहर्षविस्मयं मन्त्रिणं प्रति ।)

मन्त्रिञ्जन्मैव दोषः प्रथममथ तदप्याधिभिर्व्याधिभिश्चे-
ज्जुष्टं कष्टं बतातः किमधिकमपि तु त्वन्मतेनैभवेन ।

३२—ब्रह्मरन्ध्र के अन्दर सहस्र दल मण्डल में रहने वाले चन्द्रमा से निकलती हुई शीतल सुधा से आप्लावित होने के कारण सुखी अंगों वाला मैं हूं, बादलों के हट जाने से आकाश जैसा स्वच्छ बन जाता है, उसी प्रकार आवरणों के हटने से मैं चैतन्य ज्ञानात्मक हो गया हूँ ।

वक्तव्य—प्रबोधचन्द्रोदय में भी इसकी झलक मिलती है, यथा—

शान्तं ज्योतिः कथमनुदितानन्दनित्य प्रकाशं
विश्वोत्पत्तौ व्रजति विकृतिं निष्कलं निर्मलं च ।
तद्वन्नीलोत्पलदलरुचामम्बुवाहावलीनां ।
प्रादुर्भावे भवति नभसः कीदृशो वा विकारः ॥ ६.२१

मंत्री—इस प्रकार यह जीव राजा आपकी कृपा से निरोग, नित्य मुक्त, पीड़ा रहित, बहुत समय तक जीये—यह मैं प्रार्थना करता हूँ ।

परमेश्वर—ऐसा ही हो ।

देवी—ऐसा हो ।

राजा—(आनन्द मिश्रित विस्मय के साथ मंत्री को लक्ष्य करके)

३३—हे मंत्रि ! जन्म होना ही पहिला दोष है, वह जन्म भी आधि (मानसिक पीड़ा) और व्याधि (शारीरिक दुःख) से यदि युक्त रहे, तो

देव्या भक्त्याः प्रसादात्परमशिवमहं वीक्ष्य कृच्छ्राणि तीर्णः
सर्वाणि द्राक्तदत्यद्भुतमहि शुभदं संविधानं तवेदम् ॥३ ॥

मंत्री—राजन् ,

बहुजन्मार्जितैः पुण्यैस्तावकैरेव तोषितः ।
सर्वाभीष्टं ददातीशः संविधानं किमत्र मे ॥ ३४ ॥

भगवान्—वत्स, किमतः परमन्यत्तव प्रियं कुर्मः ।

राजा—देवदेव भगवन् , सर्वमपि प्रियमाचरितमेव ।

सर्वेऽपि मे प्रशमिता रिपवः पुरेऽभू-
दारोग्यमैक्षिषि भवन्तमुमासहायम् ।
योगं ततस्त्वदुपदिष्टमवाप्य जीव-
न्मुक्तोऽस्मि ते करुणया किमतः प्रियं मे ॥ ३५ ॥

इससे अधिक और क्या कष्ट हो सकता बै । तुम्हारी बुद्धि चातुर्य से देवी भक्ति की कृपा के कारण अतिशय कल्याणकारी-शिव को देखकर सब कष्टों को सुगमता से—जल्दी पार कर गया, यह विचित्र है, तुम्हारी यह कार्य पद्धति यहाँ कल्याणकारी है ।

मंत्री—राजन् !

३४—बहुत से जन्मों से संचित पुण्यों से, उन पुण्यों से प्रसन्न किये ईश्वर सब सनोरथों को पूरा करते हैं, इसमें मेरी कार्य पद्धति क्या है ?

वक्तव्य—गीता में पढ़ते है—

बहूनां जन्मान्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते ॥
अनेकजन्म संसिद्धिस्ततो याति परांगतिम् ॥६।४५ ।

परमेश्वर—वत्स ! इससे अधिक तुम्हारा दूसरा क्या प्रिय करें ?

राजा—देव देव भगवन् ! सब प्रिय तो हो ही गया है ।

३५—मेरे सब शत्रु नष्ट हो गये हैं, पुर-शरीर में आरोग्य हो गया है, उमा सहित आपके भी दर्शन हो गये हैं, इसके पीछे आपसे कहा योग प्राप्त करके आपकी कृपा से जीवन्मुक्त हो गया हूँ, इससे अधिक और क्या प्रिय होगा । (जीवन्मुक्त-जीते हुए भी मुक्ति की दशा में रहना) ।

तथापीदमस्तु भरतवाक्यम्—

पर्जन्यः समयेऽभिवर्षतु फलत्विच्छानुरूपं मही
प्रौढामात्यनिरूपिते पथि महीपालाः पदं तन्वताम् ।
कर्णालंकृतये भवन्तु विदुषां कान्ताः कवीनां गिरो
भूयादस्य कवेश्चिरायुररुजो भक्तिश्च शैवी दृढा ॥३६॥

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे ।)

श्रीमद्भारद्वाजकुलजलधिकौस्तुभस्य श्रीनरसिंहरायमन्त्रिवरनन्दनस्य श्रीमदानन्दरायमखिनः कृतिषु जीवानन्दनं नाम नाटकं समाप्तम् ।

समाप्तोऽयं ग्रन्थः ।

तथापि यह भरत वाक्य पूरा हो—

३६—बादल समय पर वर्षा करें, पृथ्वी इच्छानुकूल फल देवे, बुद्धिशाली मंत्रियों से बनाये मार्ग में राजा लोग चलें, कवियों की सुन्दर वाणियाँ विद्वानो के कानों को शोभित करें, इस कवि की रोग रहित लम्बी आयु हो और शिवभक्ति दृढ़ हो।

(यह कहकर सब चले गये)

वक्तव्य—पृथ्वी अन्न से भरे और बादल समय पर बरसे—इसकी झलक गीता में भी है—

अन्नाद् भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसंभवः ।
यज्ञाद् भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्म समुदभवम् ॥३।१४

उपनिषद में अन्न का बहुत महत्त्व कहा है । यथा—

अन्नं न निन्द्यात् , तद् व्रतम् । प्राणोवा अन्नम् , शरीरमन्नादम् । प्राणे शरीरं प्रतिष्ठितम् । शरीरे प्राणः प्रतिष्ठितः तदेतदन्नमन्ने प्रतिष्ठितम् । स य एतदन्नमन्नेप्रतिष्ठितं वेद प्रतितिष्ठति । अन्नवानन्नादो भवति । महानभवति प्रजया पशुभिः ब्रह्मवर्चसेन । महान् कीर्त्या ॥ तैत्तरीयं भृगुवल्ली ७ ।

अन्नं न परिचक्षीत ।। अन्नं बहुकुर्वीत । तैत्तरिय. भृगुवल्ली ८।९ बादलों से अन्न होता है, अन्न से पुरुष, पुरुष से यज्ञ, यज्ञ से फिर पर्जन्य होता है, इस प्रकार से एक चक्र घूम रहा है, इसी से शाङ्कर भाष्य में—जगतश्चक्रं तदावर्त्तताम्—ऐसा कहा है, यही जगतचक्र प्रवृत्ति का कारण है। यथा—

एवं प्रवर्त्तितं चक्रं नानुवर्त्तयतीह यः ।
अघायुरिन्द्रियारामो मोघंपार्थ स जीवति ।।

इसी चक्र के अनुसार सृष्टि क्रम चले; यही कवि की प्रार्थना है।

॥ सातवाँ अंक समाप्त ॥

श्रीमद्भारद्वाज कुल समुद्र की कौस्तुभमणि, श्रीनरसिंहराय मंत्रीवर के पुत्र, श्रीमदानन्दरायमखि से बनाया जीवानन्दन नामक यह नाटक समाप्त हुआ।



अत्रिदेव विद्यालंकार द्वारा प्रस्तुत

आयुर्वेद साहित्य

अनुवाद—

चरकसंहिता, सुश्रुतसंहिता, अष्टांगसंग्रह, अष्टांगहृदयम्, प्रत्यक्षशारीरम् जीवानन्दनम्—(आयुर्वेद-तत्त्व को प्रकट करनेवाला प्राचीन नाटक)

पाठ्यक्रम के लिये—

संस्कृत काव्यों में आयुर्वेद, क्लिनिकल मैडिसिन (दो भागों में), शल्यतंत्र, न्यायवैद्यक और विषतंत्र, धात्रीशिक्षा, शिशु-पालन, भैषज्यकल्पना, आयुर्वेद का इतिहास, भारतीय रस पद्धति, योग चिकित्सा, चरकसंहिता का अनुशीलन

सामान्य जनता के लिये—

घर का वैद्य, स्वास्थ्य विज्ञान, स्वास्थ्य और सद्वृत्त, हमारे भोजन की समस्या, स्त्रियों का स्वास्थ्य और रोग, संस्कारविधि विमर्श।

सम्पादित—

[illegible]न्द्रसारसंग्रह, रसरत्नसमुच्चय।

शीघ्र प्रकाशित होनेवाली पुस्तक—

न्याय कुसुमाञ्जलि की हिन्दी गद्य व्याख्या।

उपर्युक्त पुस्तकों से अपने संग्रह को पूर्ण बनाइये



